

आर्यिका श्री विशालमति माता जी के जीवन पर आधारित

# विशाल व्यक्तित्व

लेखिका

आर्यिका विज्ञानमति

प्रकाशक

श्रावक संस्कार साहित्य केन्द्र

भोपाल (मध्यप्रदेश)

आर्यिका श्री विशालमति माता जी के जीवन पर आधारित

## विशाल व्यक्तित्व

लेखिका : आर्यिका विज्ञानमति

सम्पादन : ब्र० (डॉ०) भरत जैन

संस्करण : चतुर्थ, अक्टूबर, २०२३

आवृत्ति : ११००

प्राप्तिस्थान : श्रावक संस्कार साहित्य केन्द्र  
तीर्थधाम श्री नन्दीश्वर द्वीप जिनालय  
जैन नगर, लालघाटी, भोपाल - ४६२०३२  
९४२५३-७४८९७

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स  
भोपाल (मध्यप्रदेश)

## जीवन देता सम्बल

पंच-परावर्तन रूप संसार में यह जीव अनन्त-पर्यायों को प्राप्त करके अनंतकाल व्यतीत कर चुका है, पर इसके आत्मकल्याण के अभाव में न तो आज तक पर्यायों की इति हुई है, न ही सुख की प्राप्ति हो पायी है। जब हम तीर्थकर-भगवन्तों के जीवन-चक्र पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि उन्होंने सद्-पुरुषार्थ के माध्यम से ही पर्यायों को विराम दिया है। वह सद्-पुरुषार्थ और कोई वस्तु नहीं है, वरन् वह रत्नत्रय रूप समीचीन मार्ग, जिस पर चलकर ही हम परमात्म-पद को प्राप्त कर सकते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है, इसी मार्ग पर चलकर हम सिद्धालय में अपना स्थान बना सकते हैं, शाश्वत चैतन्य चिदानंद को प्राप्त कर सकते हैं। अनन्त पर्यायों का अन्त भी इसी से होगा। कषाय से कलुषित चेतना काले धुएँ के समान सभी को काला ही करती है, वह कभी भी धवलता प्रदान नहीं कर सकती है और कषाय से रहित परिष्कृत, परिमार्जित रत्नत्रयमयी उन्नत चेतना आलोक की पर्यायवाची बनकर निज स्वरूप को ज्योतित करती है। ऐसी धारणा बनाकर तदनु रूप आचरण करके अनेकानेक भव्य-आत्माओं ने परमात्म-पद पाया है, पा रहे हैं आगे भी पायेंगे...।

वर्तमान में भव्य जीवों को बन्धु के समान, सम्यक्त्व रूप अद्वितीय विधि के ज्ञाता आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की परम्परा में चैतन्य सरोवर में स्नान करने वाले चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज, उनके पट्ट शिष्य आचार्य वीरसागर जी महाराज, उनके पट्ट शिष्य आचार्य शिवसागर जी महाराज, उनके प्रथम शिष्य जिनवचनों में अत्यन्त रुचि रखने वाले आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज, उनके प्रथम शिष्य पंचेन्द्रिय के विषयों की आसक्ति से कोसों दूर, आत्म-तत्त्व से जिनका हृदय सदैव सुशोभित होता है, ऐसे आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज एवं उनके गुरु भाई आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज जिनकी छत्रच्छाया पाकर मेवाड़ी बालिका कुसुम चौरड़िया श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जन्म लेने पर दिगम्बर धर्म को ग्रहण कर सन्मार्ग पर चली और यथानाम तथागुण वाली

आर्यिका विशालमति जी बनकर ब्राह्मी- सुन्दरी, सीता-अंजना, चेलना-मनोरमा आदि आर्यिकाओं की पंक्ति में अपना स्थान बनाया। सच है- जिसके पास परिश्रम, साहस, धैर्य, आत्मबल, बुद्धि-विवेक है, वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करता ही है, उसे अपने लक्ष्य पाने में देव भी व्यवधान नहीं कर पाते हैं।

प्रस्तुत कृति 'विशाल व्यक्तित्व' आर्यिका विशालमति माता जी की दुरुह पर समीचीन पुरुषार्थ की गाथा गा रही है। चतुर्थकालीन चर्या की धनी, ज्ञान-सरिता की अजस्र-प्रवाहिता, जिनागम आराधिका पूज्य आर्यिका श्री विज्ञानमति माता जी ने अपने जीवन की संजीवनी स्वरूप माँ कहें या बहन, सखी कहें या निर्देशिका ब्र.कुसुम दीदी से लेकर आर्यिका विशालमति जी तक की सारी जीवन यात्रा को अपनी श्रद्धा-आस्था-समर्पण की लेखनी से अतीत को वर्तमान में सँजोया है। ठीक ही है संतों की महिमा निराली होती है, प्रायः वे तो आत्मा-परमात्मा के ध्यान में ही निरत रहते हैं परन्तु जब निज चिन्तन से उनकी चेतना बाहर की ओर प्रवाहमान होती है, तब वे परोपकार, लोकोपकार की चिन्ता करते हैं। यद्यपि हर साधक का अन्तिम ध्येय स्वकल्याण ही होता है। जब अपने शरीर के प्रति कुछ करते हैं, करवाते हैं तो परोपकार की भावना; जनकल्याण की भावना सहज ही निःसृत हो उठती है, उसी जनकल्याण की भावना से ही पूज्य आर्यिकाश्री ने प्रस्तुत कृति का सृजन किया है, क्योंकि महापुरुषों की जीवन गाथा पतित को पावन बनने में सशक्त हस्ताक्षर का कार्य करती है। उनके जीवन-चित्रण को पढ़कर भव्य-जीव अपने जीवन में आयी आपत्ति-विपत्तियों को समता से सहन करते ही हैं, साथ ही पापात्मक कार्यों को छोड़कर धर्म कार्य में संलग्न हो जाते हैं, सुख प्राप्ति का उपाय पापों से बचना है और पापों से कैसे बचा जा सकता है तो इसकी विधि हम महापुरुषों के जीवन से सीखते हैं... इसी भावना से पूज्य आर्यिकाश्री ने आदर्श आर्यिका श्री विशालमति माता जी के समूचे जीवन को स्वयं तो जिया ही है और हम सभी को भी वैसा बनने के लिए प्रस्तुत कृति का सृजन किया। उन्होंने यह कार्य मान-सम्मान वृद्धि को प्राप्त हो, इसलिए नहीं किया है, वरन् अपनी सहृदय के

प्रति वात्सल्य से भरकर उपकारी के उपकार को स्मृत करते हुए अपने हृदय में उनके प्रति उमड़ती भक्ति-श्रद्धा को अंतस् में समाहित नहीं कर पा रही थी, सो ही उसे शब्दों का सहारा लेकर पृष्ठों पर अंकित किया है।

मुझे विश्वास है पूज्य आर्यिकाश्री की यह कृति भी पूर्व कृतियों (मारवाड़ का मार्तण्ड, राणोली रत्नाकर) की भाँति सभी के संयम-पथ में पाथेय का काम करेगी। सहनशीलता, धैर्य, आत्मबल और गुरुभक्ति, सेवा आदि अनेक गुणों की प्रदात्री बनकर इस जीवन में सुख, शांति, विवेक भरेगी और परलोक में दुर्गतियों से बचायेगी।

ब्र.भरत भैया ने साधुभक्ति से भरकर कृति का सम्पादन / संयोजन किया है, हे भगवन्! उनके अंदर भी आत्म-कल्याणार्थ साहस संबल प्रसूत हो। इसी भावना से गुरुवर्योँ का शुभाशीष...।

अंत में पूज्य आर्यिकाओं के चरणारविन्द में कोटि-कोटिशः वंदामि करते हुए यही प्रार्थना है, कि आगे भी हमें आदर्श-पुरुषों की जीवन गीतिका पढ़ने मिले और आपकी संयम-साधना, त्याग-तपस्या, ज्ञानाराधना से सारा जहान आलोकित होता रहे। आप अपने लक्ष्य को प्राप्त करें, साथ में हम सभी भी आपके जैसे बनें...।

इन्हीं भावनाओं से युगल-चरण में कोटिशः नमन-नमन-नमन...।

संघस्था

आर्यिका आदित्यमति

## सम्पादकीय

पंचम काल में चतुर्थ काल की चर्या पालन करने वाले श्रमण मनीषियों की परम्परा से प्राप्त दर्शन-ज्ञान और आचरण की त्रिवेणी से दैदीप्यमान आचार्य परम्परा में परम पूज्य आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी महाराज इस वसुधा पर प्रतिष्ठित हुए हैं। जिनकी चर्या को देखकर लोग दाँतों तले अँगुली दबा लेते थे, आज उनकी साधना की चर्चा सुनकर ही हम विस्मित हुए बिना नहीं रहते। उन्होंने अपने पूरे मुनि-दीक्षा काल में बहुत कम ही दीक्षा दी हैं, लेकिन जितनी दीक्षाएँ दी हैं, वे हजारों दीक्षाओं के बराबर हैं, क्योंकि संसार में बहुमूल्य रत्न कम ही पाये जाते हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जन्मी आर्यिका-रत्न श्री विशालमति माता जी भी बहुमूल्य रत्न थीं। आर्यिका विज्ञानमति माता जी ने उनके व्यक्तित्व को लिखकर अपने विशाल हृदय का परिचय दिया है, अपने उपकारी के उपकार को पाठकों के समक्ष रखा है, जिससे उनके संघर्षमयी जीवन से श्रावकों को प्रेरणा मिले।

वैसे तो प्रस्तुत कृति में सम्पादन करने जैसा कुछ नहीं था, परन्तु माता जी का बड़प्पन ही है कि कृति को सम्पादन करने का दायित्व मुझे सौंपा, क्योंकि माता जी के लेखन शैली का कोई जवाब नहीं, उनकी जितनी भी कृतियाँ हैं, सभी को सकल जैन समाज से समादर प्राप्त है।

ज्ञान हो और तद्रूप आचरण न हो तो वह ज्ञान मात्र भार स्वरूप है। विशालमति माता जी का ज्ञान आचरण से मँजा हुआ था, इसलिए वे जब-जब उपदेश देतीं, उसका सीधा असर श्रावकों के अंतस्थल तक सहज ही पहुँच जाता था। उनकी प्रेरणा पाकर अनेक श्रावकों ने अपने जीवन को कल्याण मार्ग को प्रशस्त किया। कहा भी है—विद्वान् तो बहुत होते हैं, लेकिन विद्या के साथ जीवन का आचरण करने वाले कम ही होते हैं।

किसी विचारक ने कहा है—अशुद्ध हृदय लेकर अपनी पुस्तकों या अपने शिक्षकों के पास मत जाइए। शुद्ध हृदय लेकर उनके पास जाइए तभी आपको जो कुछ आप चाहते हैं, वह प्राप्त होगा। ब्र. कुसुम दीदी भी अपने गुरु के समीप अपने हृदय को शुद्ध करके गयीं, अनेक व्यवधान आये, अनेक संकटों का सामना करना पड़ा लेकिन गुरु-सामीप्य से सब ठीक होता गया, उन्हें जो

चाहिए था वह मिला नारियों का सर्वोच्च आर्यिका पद ।

संघर्षमयी जीवन गाथा पढ़ते समय मेरे नेत्र कई बार सजल हुए, प्रथमानुयोग में चरणानुयोग को समाहित करने की आचार्यों की इस कला को भलीभाँति इस कृति में अनुसरित किया गया है । श्रावक-चर्या में कहाँ-कहाँ स्वलन की संभावना होती है, उसका ज्ञान इस कृति में बहुत हद तक हो जाता है । या यूँ कहूँ कि श्रावकाचार को बड़ी कुशलता से सूक्ष्म दृष्टि से परोसा गया है । जिसे कुछ बिन्दुओं को बानगी के तौर पर यहाँ पर रख रहा हूँ—

१. विवेकपूर्वक कार्य करने से गन्दगी में उत्पन्न होने वाले जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है, जिससे गन्दगी को साफ करते समय होने वाले हिंसा पाप का बंध नहीं होता है । यह प्रसंग कुसुम के बचपन का है, जो माता जी ने पाठकों को भलीभाँति बताया ।

२. माँ कभी सभ्यतापूर्वक बोलना सिखाती थीं तो कभी सभ्यतापूर्वक एक स्थान पर बैठकर खाना, कभी पुरुष वर्ग से बातचीत करना सिखातीं तो कभी पुरुष की दृष्टि को पहचानना सिखाती थी । बचपन में ही पुरुष की दृष्टि को पहचानना सिखाकर तो मानो उन्होंने अपनी लाडली को शीलरूपी आभूषण ही पहना दिए थे । इस प्रसंग को लिखकर पाठकों को शील की सुरक्षा का उपाय बता दिया ।

३. जल को छानकर जीवानी को उसी स्थान पर पहुँचाना चाहिए । जहाँ से पानी भरकर लाए हैं अथवा भरा है, उसी स्थान पर पहुँचाने से जल छानने के बाद छत्रे पर निकले हुए लाखों-करोड़ों द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवों की रक्षा होती है, अन्य स्थान पर डालने से वे सब मरण को प्राप्त हो जाते हैं । इस प्रसंग को लिखकर श्रावकाचार का हार्द ही रख दिया है ।

इसी तरह अनेक प्रसंगों को लिखकर आर्यिका माँ विशालमति जी के विशाल व्यक्तित्व के साथ-साथ श्रावकाचार की सूक्ष्म बातों को परोसने में पूज्य विज्ञानमति माता जी सफल रहे हैं ।

पूज्य माता जी अपनी कठोर साधना के साथ-साथ इसी तरह साहित्य सृजन के महत्त्वपूर्ण कार्य को करते रहें, इसी मंगल भावना के साथ कोटिशः वंदामि निवेदित करता हूँ ।

**ब्र. (डॉ.) भरत जैन**

## आठ दिन के जमीकंद त्याग से शुरू हुई धर्मयात्रा

सोचती हूँ किस रथ पर बिठाऊँ, साधना के मार्ग की कौन-सी चुनरी उड़ाऊँ।

सोच में पड़ रही हूँ तुम्हारे बंधनों को देखकर, कैसे तुम्हें बंधनों से छुड़ाऊँ।

आर्यिका श्री १०५ विशालमति माता जी यथा-नाम तथा-चर्या के व्यक्तित्व की धनी पूज्य जगत्-जननी माँ के चरणों में कोटि-कोटिशः वंदामि।

मृदुभाषी और श्रेष्ठता का सरलतम उदाहरण मेरी गुरु माँ विशालमति माता जी वात्सल्यता की ऐसी जीवन्त-मूर्ति के दर्शन पाने का सौभाग्य सातिशय पुण्य के उदय से इस जीवन में मिला और जैसे वही जीने का उद्देश्य बन गया। जन्मदात्री माँ से जीवन मिला किन्तु जीवन जीने की कला, संस्कारों का आरोपण करने वाली पूज्य गुरु माँ से मिली।

धर्म के मार्ग पर अँगुली पकड़कर चलना सिखाया, आठ दिन के जमीकंद त्याग से धर्म-यात्रा शुरू करायी और बातों ही बातों में छोटे-छोटे सूत्रों के माध्यम से सही गलत का ज्ञान करा दिया। आपने सिखाया कि “देने की प्रवृत्ति रखो, लेने की नहीं।” आपने सिखाया कि “वीतराग भगवान् की आराधना ही सुख पाने का एकमात्र उपाय है।” “संसार में संयम ही सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, जिसके लिए जीव को प्रतिसमय पुरुषार्थ करना चाहिए।” और क्या कहें क्या न कहें। इतने विशाल व्यक्तित्व की व्याख्या करने में शब्द और ये शिष्या, दोनों ही असक्षम हैं। फिर भी कहे बिना रहा भी नहीं जाता।

आपने जो संस्कार दिये हैं, उनका अनुसरण करते-करते मेरा जीवन धन्य हो गया है। आपसे असंख्य उपकारों के लिए आपकी ये शिष्या सदैव आपकी ऋणी रहेगी। यद्यपि वर्तमान में आप हमारे बीच में नहीं हैं, लेकिन हमारी हर श्वास में आप हैं और जब आपकी ही सहचारिणी, शिव-पथगामिनी, आगमोक्त-चर्या से अलंकृत, ऐसी पूज्य गुरु माँ श्री विज्ञानमति माता जी के श्रीमुख से सुना कि ‘विशाल व्यक्तित्व’ पुस्तक का प्रकाशन होना है, तो भावना हुई कि अपने द्रव्य का सदुपयोग करके प्रभावना में सहयोग देने का इससे अच्छा अवसर और दूसरा नहीं हो सकता, इसलिए ये मेरी ओर से गुरु माँ के चरणों में सविनय भेंट। वंदामि माता जी।

-मंजू जैन



## ॥श्री वीतरागाय नमः॥

संसार में प्रतिदिन अनन्त जीव जन्म लेते हैं और अनन्त जीव मरण को प्राप्त होते हैं, लेकिन उनका जन्म-मरण कोई मौलिक नहीं होता है, क्योंकि वे यहाँ आकर कोई विशेष कार्य नहीं कर पाते हैं, किन्तु जो जन्म लेकर पुरुषार्थ के माध्यम से कुछ ऐसे कार्य करते हैं, जिनको सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाता है, उनका जीवन सार्थक होता है, वे ही यहाँ विशेष व्यक्ति कहलाते हैं। यद्यपि ऐसे विशेष व्यक्ति कोई विरले ही होते हैं। वैसे तो मनुष्य पर्याय प्राप्त करना ही दुर्लभ है, क्योंकि अनन्तानन्त जीवों में से मात्र २९ अंक प्रमाण पर्याप्त मनुष्यों की संख्या है, उनमें से भी लाखों जीव गर्भ के बाहर अर्थात् जन्म होने के पहले ही माँ के द्वारा मरवा दिये जाते हैं अथवा माँ की असावधानी से मरण को प्राप्त हो जाते हैं, उनका तो मनुष्य जन्म प्राप्त करना, नहीं करना बराबर हो जाता है। जन्म लेने वालों में से कोई नीच कुल में जन्म लेता है तो कोई उच्च कुल में, कोई संस्कार रहित परिवार में जन्म लेता है तो कोई संस्कारित परिवार में। संस्कारित परिवार में जन्म लेने के उपरान्त भी धर्म को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। इसलिए कोई सत्कुल/जैन कुल में जन्म लेकर भी वीतराग प्रभु के स्वरूप को नहीं समझ पाने के कारण सरागी देवों का भक्त बनकर संसार-भ्रमण को बढ़ा लेता है। कोई-कोई तो मारीचि के समान मिथ्यामत की स्थापना करके युगों-युगों तक जीवों को मिथ्यात्व में फँसाने का रास्ता बना देते हैं और कोई असंस्कारित अर्थात् जैन-कुल के बाहर गृहीत मिथ्यादृष्टि के यहाँ उत्पन्न होकर भी वज्रकुमार मुनि के समान सन्मार्ग-जैनधर्म की प्रभावना करने में सफल हो जाते हैं। भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी के समान अपने पक्ष का व्यामोह तथा अपने पक्ष से मिलने वाली यशस्कीर्ति, मान-सम्मान आदि को छोड़कर स्वयं ही नहीं अपने दोनों भाई तथा तीनों के ५००-५०० शिष्यों के साथ सच्चे देव श्री महावीर स्वामी के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर देते हैं और गणधर जैसे परम यशस्वी पद को प्राप्त कर लेते हैं तथा जिस कार्य को समवसरण में विराजमान अनेक मुनिराज नहीं कर पा रहे थे, उन जिनेन्द्र भगवान् की

दिव्यध्वनि को ग्रहण करके द्वादशांग में गुम्फित करने रूप दुष्कर कार्य को अंतर्मुहूर्त मात्र में सम्पन्न करके इस अवसर्पिणी काल के अन्त तक जैनधर्म के ध्वज को फहरा देते हैं। धन्य हो ऐसे पूज्यवर गणधरदेव को, जिनके माध्यम से प्राप्त जिनवाणी को आधार बनाकर हम आज तक मोक्षमार्ग में चल पा रहे हैं और भविष्य में भी भव्य जीव इस मार्ग पर चलने में समर्थ हो पायेंगे। उनके चरणद्वय में मेरा अनन्त-अनन्तशः नमोऽस्तु-नमोऽस्तु।

इसी प्रकार आचार्य शिवकोटि स्वामी राज्यावस्था में अपनी प्रजा सहित शिव के भक्त थे, फिर भी वे जैनधर्म के रहस्य को समझ कर सत्यधर्म को प्राप्त करने के लिए अपनी प्रजा सहित जिनधर्मानुयायी बने और जैनेश्वरी दीक्षा लेकर भगवती आराधना जैसे मौलिक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें जीवन भर की गयी साधनारूपी मंदिर पर समाधिमरणरूपी कलश चढ़ाने की विधि बतायी गयी है। इस ग्रन्थ में आराधक क्या करे ? कैसे अपने तन और मन को प्रशस्त बनाए ? जिससे मरण के समय उसके परिणामों में दुर्ध्यान उत्पन्न नहीं हो। समाधि के समय किस प्रकार क्या-क्या करना चाहिए? समाधि के समय कितने और कैसे मुनियों की आवश्यकता होती है? क्षपक / समाधि करने वाले के परिणामों को सम्हालने के लिए निर्यापकाचार्य में कैसे, क्या-क्या गुण होने चाहिए तथा समाधि का फल क्या होता है आदि-आदि का क्रमिक एवं सुव्यवस्थित वर्णन किया गया है, यह ग्रन्थ प्रत्येक समाधिपूर्वक मरण करने की इच्छा रखने वालों को जीवन में अवश्य ही पढ़ना चाहिए।

वर्तमान में भी लगभग ३०-३५ वर्ष पहले कलकत्ता के एक श्रेष्ठी ने जो श्वेताम्बर कुल में जन्मे थे, अपनी धर्मपत्नी और पुत्री सहित गृहस्थी के जंजाल को छोड़कर जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार की और जिनागम के रहस्य को समझकर सभी के सामने करणानुयोग प्रस्तुत करने वाले मूर्धन्य विद्वानों में अग्रणी बने। अन्त में सल्लेखना धारण करके जहाजपुर (राजस्थान) में समाधिपूर्वक मरण करके हम सभी के लिए आदर्श बने। वे थे **परम पूज्य आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज**। इसी शृंखला में मेवाड़ी वसुन्धरा को गौरवान्वित करने वाली निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़, राजस्थान) नगरी में

एक बालिका जिसने श्वेताम्बर कुल के चौरङ्गिया परिवार में जन्म लिया। फिर भी दिगम्बर जैनधर्म को अपनाकर आर्यिका विशालमति बनकर **यथानाम तथागुण** की सूक्ति को सार्थक किया था। उसी महान् भव्यात्मा के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के संदर्भ में, मैं कुछ लिखना चाहती हूँ। यद्यपि मेरे में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि मैं अपने उपकारी के उपकार को कह पाऊँ, क्योंकि वे अनन्त हैं, फिर भी इस नीति के अनुसार कि जिसने हमारा एक बार भी उपकार किया हो, उसको कभी भूलना नहीं चाहिए, उनके उपकारों का ऋण चुकाना दुष्कर होता है, फिर जिसने अनन्त उपकार किए हों, वे भी यदि पारलौकिक हों तो फिर कहना ही क्या है? उनके तो जीवन के अन्तिम क्षण तक भी गुण गाए जाएँ तो भी उपकार नहीं चुका पाएँगे, मैं इतना तो नहीं कह पाऊँगी अर्थात् शब्दों के माध्यम से इतना नहीं कह पाऊँगी, फिर भी थोड़ा तो कह ही सकती हूँ, इसीलिए मैंने उपकारी आर्यिका विशालमति माता जी के बारे में कुछ लिखने का विचार बनाया है।

कहा भी है—“हमारे साहस को बढ़ाने वाली बड़े व्यक्तियों की गौरव गाथा हमें हमेशा गाते रहना चाहिए, उनके गुणों का स्मरण करने से हमें पथ पर आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त होती है।”

आर्यिका विशालमति माता जी से तो शायद मेरा भवों-भवों का नाता था, तब तो वे कुसुम दीदी की अवस्था से लेकर अपने अन्तिम समय तक मुझे अपनी अंगुलि पकड़ा कर आगे बढ़ाती रही थीं। यद्यपि यह काम मुझे बहुत पहले ही कर लेना था, लेकिन प्रमत्तवृत्ति के कारण मैं अब तक इस कार्य को नहीं कर पायी, इसका मुझे खेद है। पर अब भगवान् की कृपा और गुरु-प्रसाद से मुझमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो गई कि मैं अपने उपकारी के बारे में कुछ लिखूँ, इसकी मुझे प्रसन्नता है कि देर भले ही हो गयी, अँधेर तो नहीं हुई। इसलिए मैं अपनी क्षमता के अनुसार आर्यिका माता जी के गुण उनकी जीवनी लिखकर गाऊँगी। ठीक ही है—“जितनी चादर हो उतने पैर तो पसार ही लेना चाहिए।” मैं आर्यिका माता जी के बारे में कुछ लिखने के पहले अपने कार्य की सम्पूर्ति के लिए सर्वप्रथम पंचपरमेष्ठी भगवान् को अष्टांग नमस्कार करती हूँ। वर्तमान शासन नायक देवाधिदेव १००८ श्री

महति वर्द्धमान महावीरस्वामी के चरण-कमलों की वन्दना करती हूँ, उनके प्रसाद से मेरा कार्य सानन्द सम्पन्न होगा, यह मुझे विश्वास है। बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज, उनके पट्ट शिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, उनके पट्ट शिष्य आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज, उनके प्रथम शिष्य राणोली रत्नाकर आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज, उनके पट्टाचार्य संत शिरोमणि १०८ आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज के चरणारविन्द में सिद्ध, श्रुत तथा आचार्य भक्तिपूर्वक कोटि-कोटिशः नमोऽस्तु करती हूँ। इसी परम्परा में ज्ञानपुञ्ज महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के द्वितीय शिष्य मम दीक्षा गुरु मारवाड़ के मार्तण्ड परम तपस्वी-तेजस्वी, ध्यान-साधना में अहर्निश संलीन रहने वाले आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी महाराज के पदपंकज में, मैं अनन्त नमन करती हूँ। उन्होंने मेरा जो उपकार किया, वह इस जीवन में शायद कोई नहीं कर पाएगा। गृहस्थी के कीचड़ में फँसी हुई मुझे हस्तावलम्बन देकर बाहर निकाला और दीक्षित करके मुझे नारी-पर्याय का सर्वोत्तम आर्यिका-पद भी प्रदान किया। जो पद आदिम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान् ने सर्वप्रथम ब्राह्मी-सुन्दरी को दिया था, इसलिए वे ही मेरे आराध्य हैं, पूज्य हैं, उनकी मैं पुनः-पुनः वन्दना करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि ऐसे परमोपकारी गुरुवरों का समागम मुझे हमेशा मिलता रहे तथा भावना भाती हूँ कि जब तक मैं सिद्धशिला की स्थायी निवासी न बन जाऊँ, तब तक गुरु महाराज का सान्निध्य मिलता रहे।

अन्त में, मैं माँ विशालमति माता जी को भी वन्दामि करती हूँ, उनके चरण की धूल शिर पर चढ़ाती हूँ, उन्हीं ने मुझे परम पूज्य गुरुवर के चरणों में ले जाकर दीक्षा ग्रहण जैसा परमोत्तम कार्य सम्पन्न करवाया था। दीक्षा के पहले और दीक्षा के बाद उन्होंने मुझे पढ़ाया और साधना करने की विधि सिखलायी। आज मेरे पास जो कुछ भी है, वह गुरुवर के शुभाशीष एवं आर्यिकाश्री के पुरुषार्थ का ही फल है। माँ जिनवाणी जिसकी कृपा से हम अज्ञान अन्धकार से निकलकर ज्योतिर्मय प्रकाशित जीवन जी रहे हैं, उनको भी मैं अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमन करती हूँ और भावना भाती हूँ कि अंतिम क्षण तक हे माँ! आपके द्वारा बताए गए मंत्र मेरे मुख से उच्चारित होते रहें।

## विशाल व्यक्तित्व

श्रेष्ठी श्री बापूलाल जी चौरड़िया के घर में आज पाँचवी संतान के रूप में चतुर्थ पुत्री का जन्म हुआ था। निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़, राजस्थान) के इस श्रेष्ठी को कोई बेटे का इंतजार नहीं था और न ही वे कन्या स्तन की ही राह देख रहे थे। मात्र संतान प्राप्ति की आकांक्षा उनके मन में थी, सो आज कुँवार कृष्णा अमावस्या को पूरी हुई थी। संभव है बन्धु-बान्धव, परिजनों को कन्या का जन्म सुनकर खेद हुआ हो, लेकिन उन्हें न कोई खेद था और न ही प्रसन्नता थी। हाँ, जच्चा और बच्चा के सुरक्षित होने की खुशी अवश्य थी। चौथी कन्या के रूप में जन्म लेकर मानो उसने संकेत दिया हो कि मैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप रूप चारों आराधनाओं की सिद्धि के लिए मोक्षमार्ग पर बढ़ूँगी। कन्या का रंग साँवला था, फिर भी वह सलौनी और सुन्दर लगती थी। संसार में लोग प्रायः साँवले /काले रंग को अच्छा नहीं मानते हैं, किन्तु यह उनका बड़ा भ्रम है, क्योंकि काला रंग भी सुन्दर, प्रशस्त और मनोहारी होता है। भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी तथा भगवान् नेमिनाथ स्वामी का वर्ण काला था, फिर भी वे सभी को आकर्षित करते थे। आचार्य महाराज उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे भगवन्! आपके समान सुन्दर काला रंग संसार में कहीं नहीं मिल सकता है। आपके रूप को देखकर तो इन्द्र और अहमिन्द्र भी लज्जित हो जाते हैं। काला रंग प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार का होता है, ऐसा आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रन्थ में बताया है। वास्तव में देखा जाए तो यह अनुभव में भी आता है। जैसे—जामुन, पके करोंदा, काले अंगूर आदि काले रंग के होकर भी दूर से ही चित्त को आकर्षित करने वाले होते हैं, ठीक इसी प्रकार इस बालिका का रंग काला होकर भी चित्ताकर्षक मनोज्ञ था, इसलिए नयनाभिराम इस कन्या को सभी अपने हाथ में उठाना चाहते थे और उसे गोद में उठाकर खिलाकर अपने आपको सौभाग्यशाली मानते थे।

जन्म लेते ही दादा उदयचन्द जी ने जन्म का समय देखकर ज्योतिष के पास जाकर कन्या की जन्मकुण्डली बनवायी। ज्योतिष ने कन्या का

नाम 'कुसुम' रखा था। वह वास्तव में कुसुम के समान कोमल हृदय वाली एवं मृदु परिणामी थी। भविष्य में वह अपने व्यक्तित्व से सहज ही फूल के समान सबको अपनी ओर खींच लेगी, शायद यही सोचकर घर वालों ने भी ज्योतिष के द्वारा बताए गए इस सुन्दर नाम को स्वीकार किया था। अपने नाम के अनुसार यह समूचे जगत् को कुसुम की भाँति ही सुरभित करती थी। बचपन से ही दया, करुणा, अहिंसा उनके रग-रग में भरी हुई थी। इसलिए वे किसी की पीड़ा को देख नहीं सकती थीं। दूसरे को दुखी देखते ही तत्काल उसे दूर करने का उपाय ढूँढ़ना, सोचना और कार्यान्वित करना उनका स्वाभाविक गुण था, वे प्रकृति से ही धर्मात्मा थीं। बिना किसी के उपदेश, प्रेरणा के धार्मिक कार्यों में भाग लेना उनका स्वभाव था। वे श्वेताम्बर कुल में जन्मी थी, इसलिए सरागी देवों को ही अपना इष्ट मानती थी, अपना कल्याण करने का मार्ग मानती थीं। वे उनकी और उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलने वाले वस्त्रधारी साधुओं को ही अपना गुरु मानकर उन देव और गुरुओं की सेवा में जी-जान से लगी रहती थीं, फिर भी धर्म के मर्म को जानने / समझने की जिज्ञासा उनके कोमल हृदय में हमेशा बनी रहती थी। वे अपनी खोजशील बुद्धि से गाँव, घर, परिचित-अपरिचित सभी के बीच में धर्म और धार्मिक क्रियाओं का अन्वेषण करती रहती थीं।

सौभाग्यवती माँ श्रीमती मोहिनी देवी जी एक सुसंस्कारित, सभ्य, शिष्ट तथा व्यवहारकुशल नारी थीं, वे गृहस्थी के कार्यों को करने में दक्ष थीं, इसलिए वे घर के सभी कार्यों को सुव्यस्थित, सुचारु ढंग से यथासमय सम्पन्न करती थीं। साथ ही अपने बच्चों को भी संस्कारित करते हुए अनुशासित ढंग से कार्य करना सिखाती थीं। बच्चों की छोटी-सी गलती को भी सहन कर लेना उनके स्वभाव में नहीं था। उनकी धारणा थी कि एक बार बच्चे की गलत आदत को सहन कर लेना या माफ कर देने का अर्थ जिन्दगी भर के लिए बच्चे को उस गलत आदत से ग्रसित रखना है और पग-पग पर उस गलती के कारण तिरस्कार के कष्ट सहन करने के लिए मजबूर करना है, इसकी अपेक्षा गलती को तत्काल सुधार देना चाहिए, चाहे

उसको सुधारने के लिए दण्ड की व्यवस्था ही क्यों न करनी पड़े ? एक बार गलती सुधर जाने से वे भविष्य में कभी तिरस्कार के पात्र बनकर घुटते नहीं रहेंगे और उनके निमित्त से माता-पिता की प्रतिष्ठा भी धूमिल नहीं होगी, कुल की अपकीर्ति नहीं होगी तथा कोई उस पर अंगुलि नहीं उठाएगा। यही सोचकर वे बच्चों से गलती होते ही उसका सुधार करती थीं। इसी विधि से उन्होंने अपने बच्चों को संस्कारित किया था और कुसुम को भी वे इसी विधि से संस्कारित कर रही थीं। जब कुसुम कभी बर्तन साफ करती तो वे एक-एक बर्तन को उठाकर देखती थीं, यदि किसी बर्तन में थोड़ी-सी भी जूठन नजर आती तो वे तत्काल उसी से उसी समय साफ करवाती थीं। जब तक पूरे बर्तन अच्छी तरह से साफ नहीं हो जाते, तब तक चाहे एक ही बर्तन को चार-पाँच बार भी साफ क्यों न करवाना पड़े, वे वहीं खड़ी-खड़ी साफ करवाती रहती थीं। यही कारण था कि उन्हें कभी अपनी बेटियों के ससुराल वालों के ताने-बाने नहीं सुनने पड़े थे, कभी ये उलाहने नहीं सुनने पड़े कि तुम्हें बर्तन साफ करना किसने सिखाया है या क्या तुम्हारी माँ ने बर्तन साफ करना तक भी अच्छी तरह नहीं सिखाया आदि-आदि। इसी प्रकार उन्होंने कपड़े धोना, घर की साफ-सफाई करना, झाड़ू-पौछा करना, पानी छानना आदि सभी कार्यों को अच्छी तरह सिखाया था। विवेकपूर्वक कार्य करने से गन्दगी में उत्पन्न होने वाले जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है, जिससे गन्दगी को साफ करते समय होने वाले पाप का बंध नहीं होता है। उस समय उनका उद्देश्य अहिंसा धर्म का भले ही नहीं रहा हो, फिर भी हिंसा से होने वाले पापाम्रव से तो वे बच ही जाती थीं। माँ मोहिनी जी अपने घर को साफ सुथरा रखती थीं, उनके घर में कोई भी चीज इधर-उधर जहाँ-कहीं रखी हुई नहीं मिलती थी, आधी रात में भी आवश्यकता पड़ने पर बिना प्रकाश के भी वे वस्तु उठाकर ले आती थीं, क्योंकि उनके घर में प्रत्येक वस्तु को रखने का स्थान नियत था, वे वस्तु का उपयोग करते ही उसे यथास्थान रखती थीं, जिससे उनके घर में न कोई अनर्थक पाप होता था और न ही अपव्यय होता था। ऐसे ही संस्कार उन्होंने अपनी पुत्री विमला, सुशीला, शान्ता और चौथी पुत्री हमारी कथा नायिका सुश्री कुसुम जी तथा

अन्तिम पुत्री पुखराज को भी दिये थे। प्रथम पुत्र श्री हस्तिमल जी तथा अन्तिम पुत्र श्री अनिलकुमार जी को भी उन्होंने बेटे के योग्य सभी सुसंस्कारों से संस्कारित किया था। उनकी सभी संतानों ने उनके द्वारा दिए गए संस्कारों का अपने जीवन में प्रयोग किया था, इसलिए वे सभी व्यसनों एवं पाप कर्मों से बचे रहे थे। उनकी लाड़ली पुत्री कुसुम ने तो उनके द्वारा दिए गए सभी संस्कारों को धर्म में परिणत करके स्व-पर कल्याण में उनका प्रयोग किया था, जिससे वे स्वयं पापास्रव से बची थीं और हजारों-हजारों भव्यात्माओं को पापों से बचाते हुए मोक्षमार्ग में लगाया था। इन्हीं सत्संस्कारों के कारण वे भव्य जीवों को संसार से पार उतारने में तरणि (नौका) के समान अहिंसा परमो धर्म का उपदेश देकर जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग को वृद्धिगत करने में एक सशक्त साधन बनी थीं।

माँ अपनी कुसुम को कभी सभ्यतापूर्वक बोलना सिखाती थीं तो कभी सभ्यतापूर्वक एक स्थान पर बैठकर खाना, कभी पुरुष वर्ग से बातचीत करना सिखातीं तो कभी पुरुष की दृष्टि को पहचानना सिखाती थी। बचपन में ही पुरुष की दृष्टि को पहचानना सिखाकर तो मानो उन्होंने अपनी लाड़ली को शीलरूपी आभूषण ही पहना दिए थे। वे कुसुम से कहती थी बेटा पुरुष की आँखों को देखते ही हमें समझ में आ जाना चाहिए कि उसकी दृष्टि में वासना है या वात्सल्य, उसके हँसी-मजाक करने के, बोलने के ढंग में कामुकता है या कमनीयता। ये सब बातें उन्होंने अपनी बेटा को इसलिए सिखाई थी कि इस पंचमकाल में भौतिकता की चकाचौंध में व्यक्ति इतना भ्रमित हो गया है कि वह कब और किस प्रकार से लड़कियों के शील को भ्रष्ट करने के लिए उतारू हो जाएगा, यह कहा नहीं जा सकता है। वास्तव में स्त्री के शील पर धावा बोलने वाले कोई दूर-दराज के या अनजान व्यक्ति नहीं होते हैं अपितु उनमें से ९९ प्रतिशत तो अपने वाले अर्थात् काका, मामा, मौसी, बुआ आदि के बेटे ही होते हैं। अथवा स्वयं के अपने जीजा जी और काका, मामा आदि होते हैं। जिनके यहाँ हम अपनी बेटा को सहज ही भेज देते हैं और बेटा भी बेहिचक उनके यहाँ चली जाती है, इस बात को वह संस्कारित माँ बहुत अच्छी तरह से जानती थी। उनकी



बुद्धि तीक्ष्ण थी, उनमें इशारे में ही बहुत कुछ समझने की क्षमता थी। एक बार जब उनकी नयी-नयी शादी हुई थी, उनके घर पर एक भिक्षु भिक्षा लेने आया था। सासू माँ ने बहु को सहज ही भिक्षा देने के लिए भेज दिया। जब बहु भिक्षा लेकर दरवाजे पर पहुँची तो भिक्षु वहाँ नहीं था, न जाने उसके मन में क्या विकार उत्पन्न हुआ, सो वह दरवाजे के पीछे छुपकर खड़ा होकर भिक्षा लेकर आने वाली नयी बहु का इंतजार करने लगा। जब बहू ने दरवाजे पर किसी को नहीं देखा तो उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि को ढूँढ़ने के लिए चारों तरफ फैलाया तो उसे दरवाजे के पास एक पुरुषाकार परछाईं नजर आयी। वह तत्काल समझ गई कि भिक्षु दरवाजे के पीछे छुपा हुआ है, इसका अर्थ उसके मन में कोई न कोई गलत भावनाएँ अवश्य जागृत हुई हैं, इसलिए वह उलटे पैर लौट आयी। इसी अपने अनुभव से उन्होंने अपनी पुत्रियों को ये सब बातें विशेष रूप से समझायी थीं, ताकि उनका शील हमेशा सुरक्षित रहे। न सही वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ब्रह्मचारिणी बनें पर कम से कम अपने पति में संतुष्ट रहने वाली सती के समान स्वदार संतोषी तो बन ही जायें।

माँ मोहनी ने अपने सभी बच्चों में से बेटी कुसुम को विशेष संस्कारित किया था। यह भी पूर्वोपार्जित कर्मों का खेल है कि माँ अपनी स्वयं की संतानों में भी किसी एक से विशेष प्रेम रखती है तो किसी एक से सामान्य वात्सल्य रखती है और किसी एक में तो उसके दिल में द्वेष परिणाम ही उत्पन्न होते रहते हैं। उनको भी कुसुम से विशेष लगाव था, वह उसे अच्छे से अच्छे मिष्ठान्न, फल, काजू-किसमिस आदि खिलाना चाहती थीं, एक से एक अच्छे वस्त्राभूषण पहनाना चाहती थीं, लेकिन बेटी कुसुम ठीक इससे विपरीत प्रकृति वाली थी। उसे न अच्छा खाना पसंद था और न ही वस्त्राभूषणों से शृंगारित होना पसंद था और न ही उसे मौज-मस्ती पसंद थी, उसे तो सादा जीवन जीते हुए उच्च विचार बनाए रखना अच्छा लगता था। उसमें विषय-भोगों के प्रति किंचित् भी आकर्षण नहीं था। जब घर में सभी को एक साथ वस्त्र खरीदे जाते तो कुसुम को भी कहा जाता कि तू भी अपनी इच्छा के अनुसार वस्त्र पसंद करके खरीद ले, तब कुसुम का उत्तर

रहता था कि भाभी, जीजी आदि आप लोग ही मेरे लिए पसंद कर लो जो आप लायेंगी, वही मैं पहन लूँगी। मेरे लिए वे ही सबसे अच्छे रहेंगे। इसी प्रकार भोजन में भी वह कहती आप सभी खा लीजिए। खट्टा-मीठा, ठण्डा-गरम, आगे-पीछे का जो बचेगा वही मैं खा लूँगी। मुझे अभी भूख नहीं लगी है। इन सब क्रियाओं से लगता था कि मानों कुसुम पूर्व भव से ही आर्यिका बनने का संकल्प करके आयी हो। सो किसी भी भोग सामग्री में उसका मन नहीं रीझता था। माँ को जब कभी कुसुम के ऊपर गुस्सा आता था तो मात्र इन्हीं बातों को लेकर शेष तो कुसुम कभी ऐसा कोई काम नहीं करती थी कि माँ उसको डाँट लगाए या डाँटकर समझाये। कुसुम की बुद्धि प्रखर थी। जब कभी माँ बड़ी बहनों को या भाभी को कोई काम करना सिखाती थीं तो वह उन्हें देखकर ही काम करना सीख लेती थी, इसलिए उससे किसी काम को करने में गलती नहीं होती थी। वह किसी काम में आलस नहीं करती थी, क्योंकि वह जानती थी कि आलस मदिरा के समान है, जो हमें हमारे हर कार्य में मद / प्रमाद उत्पन्न करके असफलता प्रदान करता है, इसीलिए वह किसी भी काम को करने में आनाकानी नहीं करती थी, न ही जी चुराती थीं, इसी से उसको कभी माँ-पिता जी या बड़े भाई-बहनों की डाँट नहीं खानी पड़ती थी। कुसुम की भोगों में जितनी अरुचि थी, उतनी ही धार्मिक कार्यों में रुचि थी। धार्मिक-स्थलों पर जाना, साधु-संतों की सेवा करना, उनकी आवश्यक सामग्रियों को ले जाकर देना, साधर्मि के मिलने पर उन्हें अपने घर बुलाना, भोजन आदि करवा करके उनकी आवभगत करना उनका स्वभाव था।

वह अभी बहुत छोटी थी, उसमें बचपना था वे किशोर अवस्था को भी पार नहीं कर पायी थी, फिर भी उसमें ब्रह्मचर्य धारण करने की उग्र भावना थी। यद्यपि उसने अभी अपने भविष्य के मार्ग का निर्णय नहीं किया था और न उसमें अभी वह क्षमता ही थी कि किस मार्ग पर जाने में मेरा हित होगा, मेरा भावी जीवन सुख-शान्तिपूर्वक व्यतीत होगा, इसका निर्णय करे, फिर भी शादी के बाद होने वाली झंझटों को वह अपनी बड़ी बहनों, भाभी तथा अड़ोस-पड़ोस की काकी आदि में देखती रहती थी, सुनती रहती

थी, इसलिए वे शादी करके जबरन उन सब झंझटों को मौल नहीं लेना चाहती थीं। इन झंझटों में फँसने की अपेक्षा वे कुँवारी रहकर ही आनन्द से जीवन बिताना अच्छा मानती थीं। भले ही वे अभी तक ब्रह्मचर्य क्या होता है, ब्रह्मचर्य का पालन किस प्रकार किया जाता है, ब्रह्मचर्य का पालन करने से क्या फल मिलता है, अब्रह्म क्या है? कुशील पाप किसे कहते हैं, कुशील पाप का फल क्या होता है आदि-आदि के बारे में कुछ भी नहीं जानती होंगी ऐसा मेरा अनुमान है, क्योंकि उस समय न तो पाठशालाओं में पठन-पाठन होता था और न ही स्वाध्याय की परम्परा ही थी। न ही कोई पण्डित वर्ग इस बात को समझाने वाले थे और न ही जगह-जगह विद्वानों के माध्यम से धर्म का स्वरूप सुनने को मिलता था, फिर भी भावनात्मक ज्ञान तो निरक्षर अर्थात् कोई साक्षर भी न हो उसको भी होता ही है। मानव की तो बात क्या गाय-भैंसादि पशुओं में भी भावात्मक ज्ञान होता ही है, कुसुम में भी ब्रह्मचर्य पालन का भावनात्मक ज्ञान था। वह ८-१० वर्ष की उम्र से ही सोचने लगी थी कि मुझे शादी नहीं करना है, क्योंकि उनकी धारणा थी कि “शादी का अर्थ अपनी स्वतंत्र जिंदगी को किसी एक पुरुष के हाथों में बेचना है इसलिए मैं अपनी जिन्दगी को स्वतंत्र ही जीना चाहती हूँ।” इसी धारणा ने उनको भोगों से बहुत दूर रहने के लिए प्रेरित किया था। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी उनके परमाराध्य थे। उनके ऊपर कभी भी कोई भी आपद-विपदा आती तो वे पार्श्वनाथ भगवान् का ही नाम रटती थीं। पार्श्वनाथ भगवान् आदर्श होने के कारण उन्हें आने वाले संकटों से कभी भय नहीं लगता था। धार्मिक कार्यों को करने में किसी की सलाह या आज्ञा लेने की आवश्यकता वे नहीं समझती थीं, उन्हें पता था कि वह माँ-पिता जी, भाई, दीदी से यदि कोई त्याग-तपस्या करने के लिए पूछेंगी तो शायद ही कोई उन्हें स्वीकृति दे अर्थात् सभी मना ही करेंगे। वे कभी शारीरिक असमर्थता बताएँगे तो कभी अल्पवय की बात करेंगे। कभी समय की तो कभी लौकिक रीति-रिवाजों को बताते हुए त्याग-तपस्या करने से रोक देंगे। इसलिए वे किसी भी वस्तु का त्याग करने के लिए किसी से पूछती ही नहीं थीं। जब वे कुछ त्याग कर देती और उसका पता घर वालों

को लगता था तो वे चारों तरफ से उन्हें डाँटने लगते थे, सब लोग उन्हें त्याग तोड़ने के लिए मजबूर करते थे, लेकिन उनमें अपूर्व आत्मविश्वास एवं आत्मबल होने के कारण वे अपने नियम को किसी भी हालत में तोड़ने के लिए तैयार नहीं होती थीं और न ही तोड़ती ही थीं। उन्होंने अपने आत्मिक बल पर लगभग १३-१४ वर्ष की उम्र में ही शाश्वत तीर्थक्षेत्र सम्मदशिखर जी के स्वर्णभद्र कूट पर १००८ उपसर्ग विजेता देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ भगवान् के चरणों में आजीवन ब्रह्मचर्य अर्थात् असिधारा व्रत का संकल्प कर लिया था। उन्होंने कभी किसी के सामने यह बात प्रकट नहीं की थी क्योंकि उन्हें पता था कि इस व्रत के लिए माँ स्वप्न में भी स्वीकृति नहीं दे सकती हैं। उन्हें यह भी पता था कि यद्यपि माँ ब्रह्मचर्य से बहुत प्रेम रखती हैं, लेकिन वह मात्र स्वदार संतोष व्रत तक ही सीमित है।

□

व्रत लेते ही कुसुम का लक्ष्य बदल गया था। उनमें विरति के भाव निरन्तर वृद्धिगत हो रहे थे, किन्तु उन्हें सच्चे देव क्या होते हैं, कैसे होते हैं, मोक्षमार्ग क्या होता है, मोक्ष की प्राप्ति कौन-से मार्ग पर चलने से हो सकती है, आदि-आदि कुछ भी पता नहीं था, क्योंकि उन्होंने अपने जन्म से मात्र सराग धर्म की ही आराधना की थी, उसको ही करते देखा था एवं वह जिन गुरुओं के चरणों में जाती थीं, वे गुरु भी सराग धर्म को ही मोक्ष प्रदायक मानते थे, इसलिए उनके हृदय में भी उसी धर्म के प्रति आस्था बैठी हुई थी। वो अपने भगवान् को कभी इत्र लगातीं तो कभी वस्त्र पहनाती थीं। कभी उन्हें आभूषणों से अलंकृत करती थीं तो कभी उनके शिर पर मुकुट बाँधकर उनकी सुन्दरता को निहारती थी। अहो! विस्मय की बात है कि वह इतनी बुद्धिमती होकर भी यह नहीं समझ पायी थीं कि जो हमारे समान ही वस्त्राभूषण पहनते हैं, वे भगवान्/हमारे आराध्य कैसे हो सकते हैं? यदि उन्हें भी अपने जैसी लज्जा आती है अथवा वे भी हमारे समान विषय-वासनाओं से ग्रसित होकर वस्त्रों को धारण करते हैं तो हम उनकी शरण में जाकर उनकी पूजा-आराधना करके कैसे काम-वासना को जीत पाएँगे? यदि वे भी हमारे द्वारा चढ़ाई गयी सामग्रियों का भोग करते हैं तो वे हमारी

क्षुधा वेदना को कैसे मिटा पाएँगे? आदि-आदि बातों के विकल्प ही उनके अन्दर उत्पन्न नहीं हुए थे, क्योंकि उनमें बुद्धि तो बहुत थी, पर विवेक नहीं था। वास्तव में बुद्धि ऊपर-ऊपर की बातों को ग्रहण करने वाली होती है और विवेक हेय क्या है, उपादेय क्या है, किस कार्य को करने में मेरा हित है और किसमें अहित है, किन कार्यों से मुझे सुख मिलेगा और किन कार्यों के करने से मैं दुखों के गर्त में गिर जाऊँगा आदि बातों पर प्रकाश डालने वाला होता है। विवेकवान व्यक्ति ही हंस के समान दूध को दूध और पानी को पानी अर्थात् सत्य को सत्य और असत्य को असत्य समझ सकता है। जिसमें विवेक नहीं होता है, वह असत्य को भी सत्य मानकर उसका पोषण करता जाता है और सत्य को भी असत्य मानकर उससे दूर हटने की कोशिश करता रहता है, फलतः उसे दुख ही भोगने पड़ते हैं। कुसुम भी सत्य धर्म से बहुत दूर थी, उसने कभी सत्य की खोज ही नहीं की थी इसलिए वे उन्हीं अपनी कुल-परम्परा से प्राप्त सरागियों/वस्त्रधारी देवों की पूजा करते हुए अपने आपको मोक्षमार्ग में स्थित मान रही थीं। वे विपरीत दिशा में चलकर भी अपने आपको सही दिशा में चलना समझ रही थी लेकिन क्या कभी किसी ने विपरीत दिशा में कदम बढ़ाकर भी अपनी मंजिल को प्राप्त किया है नहीं, कभी नहीं / ऐसा होना असंभव है। चाहे अनजान पथिक हो या जानकार विपरीत मार्ग में चलने से तो भटकन बढ़ती ही जाएगी। कहा भी है—चालक (द्राइवर) गाड़ी बहुत अच्छी चलाता हो किन्तु वह शराबी हो तो उसको खतरा निश्चित है, उसी प्रकार चाहे गति अच्छी हो, व्यक्ति रफ्तार से चल रहा हो किन्तु यदि विवेक नहीं हो अर्थात् मार्ग का निर्णय सही नहीं हो तो चलने वाले को खतरा बना ही रहता है। कुसुम भी उसी रास्ते पर चल रही थी, जो संसार को बढ़ाने वाला था वास्तव में वह कर भी क्या सकती थी, उसे तो पता ही नहीं था कि वह गलत रास्ते पर चल रही है अथवा यह रास्ता गलत भी हो सकता है अथवा संसार में इसके अलावा और भी कोई मोक्ष का रास्ता हो सकता है आदि। कहा भी है—बाल्यावस्था में विवेक होता ही कहाँ है, जिससे वह सही निर्णय कर पावे। घर वाले उसकी धार्मिक रुचि से खुश थे, वे समय-समय

पर उसे धार्मिक क्रियाओं की अनुकूल सामग्रियाँ बिना माँगे ही उपलब्ध करा देते थे, उन्हें भी पता नहीं था कि जिस धर्म को हम स्वर्ण समझ कर ग्रहण कर रहे हैं वह स्वर्ण नहीं, वह तो पीतल है, अरे वह सोना जैसा दिखता है सोना है नहीं। यह छलावा है, भव दुखों की वृद्धि करने वाला है। कुसुम भी अपनी कुल-परम्परा से चले आ रहे, उसी धर्म को भेड़िये की चाल के समान निर्विकल्प होकर अपनाती जा रही थी। अभी तक कुसुम के ब्रह्मचर्य व्रत का किसी को भी पता नहीं था, लेकिन अब धीरे-धीरे उसकी क्रियाओं और चर्याओं से घर वालों को कुछ-कुछ समझ में आने लगा था। जब कभी रात्रि हो जाने पर कुसुम भोजन नहीं करती थी, रात भर भूखी ही करवटें बदलती रहती थी तो माँ उसे रात्रिभोजन करने का आग्रह करती थीं। अतिआग्रह के बाद भी जब कुसुम रात्रि में भोजन नहीं करती तो वह बहुत दुखित होकर कभी रोकर के और कभी करुणा भरी बातें करके कुसुम के हृदय को दया से द्रवित करना चाहती थीं, किन्तु कुसुम के ऊपर इसका जब कोई प्रभाव नहीं पड़ता था तो माँ की ममता उसे डाँटने के लिए मजबूर कर देती थी। डाँट को भी जब कुसुम बिना कुछ बोले मौन पूर्वक सुन लेती तो माँ मात्र हैरान होकर रह जाती थीं। इन सभी क्रियाओं से ही परिवारजन समझ गए थे कि कुसुम ने शायद आजीवन रात्रिभोजन का त्याग कर दिया है, इसलिए वह अब रात्रि में भोजन नहीं कर सकती। इसलिए इसको बार-बार परेशान करने से कोई मतलब नहीं है और यही सोचकर माँ मोहनी जी भी शांत हो गयी थी। अब कुसुम की नियमावली दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, इस कारण उसको कई बार बड़ी बहन की भी डाँट पड़ जाती थी, लेकिन पलट कर जवाब देना उसके स्वभाव में नहीं था, यह संस्कार माँ ने उसमें बचपन से ही डाला था, इसलिए उसने कभी अपने बड़े भाई-बहनों तक को जवाब नहीं दिया था। माता-पिता आदि बड़े लोगों को जवाब देने का तो वह कभी विचार ही नहीं कर सकती थी। कभी किसी बात का बुरा मानने पर माँ उसे कहती थी कि बड़े भाई-बहन ने यदि तुझे कुछ कह दिया हो तो इसमें बुरा मानने की क्या बात है बड़ों के लिए तो छोटे लोगों को डाँटने का अधिकार रहता है इसलिए तुम्हें इसका

बुरा नहीं मानना चाहिए। यदि कभी छोटे भाई-बहन उसे कुछ कहते तो वह कहती थी कि बेटी वे तो छोटे हैं, नासमझ हैं उनका क्या बुरा मानना, बड़े तो वैसे ही क्षमावान होते हैं। इन श्रेष्ठ संस्कारों के कारण ही कुसुम सबकी बातों को सहज ही सुन लेती थी, इसलिए उनकी अपने भाई-बहन, भाभी आदि के साथ कभी खटपट होने की बात तो दूर मनमुटाव भी नहीं हुआ था। ये ही संस्कार हम लोगों ने उनमें अन्तिम क्षण तक देखे थे अर्थात् संघ में ८-१० सदस्य होने के बाद भी किसी के साथ उनकी बुराई नहीं होती थी और न ही कोई उनको पलट कर जवाब ही देता था।



श्वेताम्बर कुल में उत्पन्न होने पर भी उनकी किस्मत बहुत अच्छी थी सो उनके घर से ही दिगम्बर जैन मंदिर का शिखर दिखता था और मंदिर में होने वाले कार्यक्रम भी छत पर चले जाओ तो दिख जाते थे इसलिए घर के लोगों की दृष्टि २-४ बार तो मंदिर के शिखर पर चली ही जाती थी लेकिन आज तक किसी के ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, किसी में जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने का भाव उत्पन्न नहीं हुआ था, क्योंकि उन्हें मंदिर दिखता था, वे कभी जिनालय को देखते नहीं थे। जब मिथ्यात्व का प्रबल उदय होता है तब अनुकूलताएँ मिलने के बाद भी जीव में सच्चे देव के प्रति आस्था जाग्रत नहीं होती है, वह जातिगत और रूढ़ि से प्राप्त हुए धर्म को मिथ्या / झूठा स्वीकार नहीं कर पाता है। कुसुम के साथ भी यही सब कुछ था, किन्तु उसके मिथ्यात्व का उदय कुछ मंद हुआ, जिससे उसके मन में जिनेन्द्र भगवान् का मंदिर तथा उसमें विराजमान जिनबिम्ब को देखने/दर्शन करने के भाव उत्पन्न होते थे। वह कई बार बालकनी में खड़ी होकर जिनालय को देखती रहती थी तो कभी बिना किसी निमंत्रण के वहाँ पर होने वाले कार्यक्रमों में पहुँच जाती थी। उसे वहाँ होने वाले कार्यक्रमों को देखने में बड़ा आनन्द आता था। उसके आस-पास दिगम्बर जैन समाज के कई घर थे, उनके साथ उसके माता-पिता आदि का घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्ध था। उनके बच्चों के साथ खाना, खेलना, आना-जाना आदि कार्य तो कुसुम की दैनिक क्रियाओं में सम्मिलित था, इसलिए वह

उनके यहाँ दिन में कई बार आया-जाया करती थी। वह अपनी पड़ोसन काकी की भी बहुत लाडली थी, पड़ोसन काकी जब कभी कुछ नई मिठाई, नमकीन आदि बनाती तो कुसुम को बुलाकर जरूर खिलाती थी और खिलाते-खिलाते वह उसे दिगम्बर साधु-सन्तों के बारे में तथा उनकी कठोर-चर्या से संदर्भित प्रसंग सुनाती रहती थी। कुसुम, काकी के मुख से मुनिवर्यो की आहार-चर्या के बारे में सुनकर तो सिर से पैर तक काँप जाती थी। उनके ज्येष्ठ माह में होने वाले अंतराय और उसके बाद भी पूरे दिन में पानी की एक बूँद भी ग्रहण नहीं करना, उसके दिल को हिला देता था। ग्रीष्मकाल में भी पैदल-पैदल तपती भूमि पर चलते समय उनके नग्न शरीर में लगने वाली लू-लपटों की बातें भी उसके किसी तरह गले नहीं उतरती थी, उसे ऐसा होना असंभव-सा लगता था, फिर भी दिगम्बर काकी, भाभी, दादी आदि पर उसको विश्वास था कि वे उसे कोई गलत बातें न सिखाएँगी और न ही बताएँगी। इसलिए उसे उनकी इस प्रकार की साधु-संतों की बातें बहुत अच्छी लगती थी। उनके मुख से जैन साधुओं की कठोर-चर्या की बातें सुनकर उसका हृदय जैन साधु-सन्तों के प्रति बड़े सम्मान से भर जाता था। वे मन ही मन उन्हें बारम्बार प्रणाम करती थी, धीरे-धीरे उसके अन्दर जैन साधुओं के प्रति बहुमान बढ़ने लगा और उनके दर्शन एवं समागम प्राप्त करने की भावनाएँ उत्पन्न होने लगी। उसको लगने लगा कि मनुष्य पर्याय प्राप्त करके यदि ऐसे संतों के दर्शन नहीं किए तो इसको पाना व्यर्थ ही रहा। मैं कुछ भी हो एक बार तो उनके दर्शन अवश्य करूँगी। उसे आत्मविश्वास था कि मुझे कभी न कभी तो दिगम्बर संतों के दर्शन मिलेंगे इसी विश्वास से वह बार-बार अपने घर की छत पर जाकर दिगम्बर मंदिर की तरफ देखती रहती थी कि शायद कोई निर्ग्रन्थ मुनिराज का आगमन हुआ हो। कई बार उनकी खोज में वह दिगम्बर मंदिर में घंटों बैठी रहती थी मुनिराज के पदार्पण का इंतजार करती हुई, वह कभी थकती नहीं थी लेकिन वर्षों निकल गए उसे मुनिराज के दर्शन नहीं हो पाए थे। निम्बाहेड़ा में दिगम्बर जैन समाज के थोड़े से घर थे और मुनिराज के रुकने के योग्य वसतिका भी उनके यहाँ नहीं थी इसलिए पहले तो कोई साधु आते नहीं



थे, कभी रास्ते में निकलते समय आ गए तो एक-आध दिन रुककर चले जाते थे, तब तक तो कुसुम को मालूम ही नहीं हो पाता था कि जिनमंदिर में मुनिराज का आगमन हुआ भी था।

मुनिराज की चर्चाओं की चर्चा सुनते-सुनते उसके दिमाग में एक अलग ही वीतरागी सौम्य छवि आकार ले रही थी। दिगम्बर संत के शरीर पर मल के पटल कैसे जमे रहते होंगे, उनकी काया से किस प्रकार का तेज टपकता रहता होगा, वे पाणिपात्र में पानी, दूध आदि तरल पेय वस्तुएँ कैसे और कितनी-सी ले पाते होंगे, गर्मी के मौसम में इतने से पानी से किस प्रकार उनका पूरा दिन निकलता होगा। वे कैसे बिना स्वेटर पहने, कम्बल आदि ओढ़े पौष-माघ की सर्दी में रात्रि व्यतीत करते होंगे। क्या ऐसे मौसम में एक गाँव से दूसरे गाँव विहार करते समय नग्न दिगम्बर शरीर वाले उन महाराज को बिल्कुल सर्दी नहीं लगती होगी नहीं, नहीं सर्दी तो अवश्य लगती होगी, उसे वे क्या सोच करके और कैसे सहन करते होंगे। क्या इतनी सर्दी में वे बीमार नहीं हो जाते होंगे! फिर उनकी औषधि कौन करता होगा आदि-आदि अनेक प्रकार की कल्पनाओं की शृंखला उसके दिमाग में जमती जा रही थी। इन्हीं कल्पनाओं के कारण उसकी उत्कंठाएँ बढ़ती जा रही थी, वह प्रतिदिन प्रतिपल उन निर्ग्रन्थ मुनीश्वरों के दर्शन पाने का इंतजार करने लगी।

□

समय रूपी हवा बहती जा रही थी और एक दिन उसी बहती हुई हवा ने मानो कुसुम को समाचार दिया कि तुझे अब उन साधु भगवन्त के दर्शन होने वाले हैं, जिनका तू पलक-पावड़े बिछाकर इंतजार कर रही है और तभी एक दिन वह अपने घर की छत पर खड़ी-खड़ी जिनालय की तरफ देख रही थी कि अचानक उसे उस जिनालय के आँगन में नग्न दिगम्बर मुद्रा में एक छवि दिखाई दी। उन्हें देखते ही वह समझ गई कि पड़ोसन काकी जी और भाभी जी के द्वारा बतायी गई दिगम्बर मुद्रा अर्थात् मुनिराज ये ही होने चाहिए। वह तत्काल बिना पूछे और बिना किसी को बताए जैन मंदिर की ओर दौड़ पड़ी। जबकि वह आज तक बिना बताए

कभी घर के बाहर नहीं गयी थी। जब कभी दो-तीन मिनट के लिए भी वह पड़ोस में जाती तो माँ, भाभी या दीदी आदि को बताकर ही जाती थी। बचपन से माँ ने उसे बताकर जाने की शिक्षा दी थी। उसकी माँ का कहना था कि यदि तुम बिना बताए कहीं आवश्यक कार्य से भी चली गयी उसी समय भैया, पिता जी आदि ने अथवा अन्य किसी ने आकर पूछ लिया कि कुसुम कहाँ गयी है तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगी और सही उत्तर नहीं पाकर वे क्या सोचेंगे कि वे अपनी बेटी का इतना भी ख्याल नहीं रखती है कि वह कहाँ गई है, क्यों गई है, इतना भी इन्हें पता नहीं है मतलब इनकी बेटी बिना कहे जहाँ-कहीं घूमती रहती होगी। दूसरी बात यदि अचानक कुछ आवश्यकता पड़ गई तो हम तुम्हें कहाँ ढूँढ़ते रहेंगे आदि-आदि इसलिए वह कभी भी बिना बताए नहीं जाती थी पर आज तो वह सब कुछ भूल गयी थी माँ का डर भी उसका रफूचक्कर हो गया था। वह जितनी जल्दी से जिनालय में पहुँच सकती थी उतनी द्रुतगति से जिनालय में पहुँच चुकी थी। मुनिवर को देखते ही उसके हाथ जुड़ गए उसका मस्तक सहज ही श्रद्धा से झुक गया वह अपनी कल्पना से भी परे उस वीतराग मुद्रा को अपलक निहारती रही ऐसा लग रहा था मानो उसे चक्रवर्ती की नव निधियों का खजाना ही मिल गया हो। वह अन्दर ही अन्दर आह्लादित थी उस समय वह अपनी सुध-बुध ही भूल गयी थी कि वह कहाँ है यहीं मनुष्य लोक में है या किसी अन्य लोक में ही पहुँच गयी है। उसे यह भी भान नहीं था कि वह कहाँ किसके सामने खड़ी है। कुछ भी विकल्प नहीं, कोई मान-मर्यादा का भान नहीं बस देखती जा रही थी हाथ जोड़े उन पाप रहित महाव्रतधारी अलौकिक अद्वितीय यथाजात रूप धारी मुनिराज को। थोड़ी देर बाद उसे समझ में आया कि मेरे हृदय में राज्य करने रूप स्थापित मुनिमुद्रा जिसके बारे में मैंने वर्षों से सुन रखा था, उस दिव्य मूर्ति के बारे में जैसा मैंने सुना था, उससे भी कई गुनी निर्मल मुद्रा के दर्शन मुझे आज हुए हैं, मैं आज धन्य हो गई हूँ, आज मेरे ये नेत्र सफल हो गए हैं, आज मेरी मन की मुराद पूरी हुई है इस प्रकार सोचते-सोचते उसने तीन बार झुक-झुककर मुनिवर को नमस्कार किया और उनके चरणों में प्रणिपात हो गयी। उसने पुनः-पुनः पूज्यवर को

नमस्कार किया तथा भक्तिपूर्वक बच्चों के समूह में जाकर बैठ गई और इक-टक मुनिवर की मुद्रा को देखती रही। उसका मन मुनिवर के अनेक बार दर्शन करके भी तृप्त नहीं हो रहा था। मुनिवर बच्चों को शिक्षाप्रद बातें बता रहे थे, वह हाथ जोड़कर मुनिवर की अमृतमय वाणी का कर्णयुगल से पान करने लगी। जिस प्रकार ज्येष्ठ माह के सूर्य के ताप से संतप्त भूमि आषाढ़ माह में बरसने वाली वर्षा की बौछारों को अपने अन्दर समाहित कर लेती हैं। उसी प्रकार वह भी गुरुवर की एक-एक बात को दिल और दिमाग में बैठाती जा रही थी। मुनिवर ने बाल-बच्चों को संस्कारित करने के उद्देश्य से एक कथा कहना प्रारम्भ किया, क्योंकि वे जानते थे कि बच्चों को दृष्टान्त, कथा-कहानी और युक्तियों के माध्यम से जितना जल्दी और सहज रूप से समझाया जा सकता है, उतना और किसी के माध्यम से नहीं समझाया जा सकता है।

पूज्य १०८ मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज यथानाम तथागुणी थे। वे भव्य जीवों के कल्याण की इच्छा से छोटे-बड़े कोई भी आवे उन्हें कहानी आदि सुनाकर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते थे। किसी वक्ता के वक्तव्य को सुनकर १००-५० में से एक श्रोता भी संस्कारित हो जाए तो वक्ता का पुरुषार्थ सफल ही माना जाता है। यहाँ निम्बाहेड़ा में भी मुनिवर ने बच्चों को कहानी सुनाते हुए कहा—

एक राजा था। वह अपनी प्रजा को संस्कारित करने के उद्देश्य से जब कभी कोई नया प्रश्न पूछ लेता था। प्रजा तथा सभासद भी राजा के प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर राजा से पुरस्कार प्राप्त करते रहते थे, इससे राजा तथा प्रजा का आन्तरिक वात्सल्य परिणाम बढ़ता रहता था। कभी-कभी प्रश्नों के उत्तर सुनकर उसे अपनी प्रजा की बुद्धि पर गौरव की अनुभूति होती थी, वह अपनी संस्कारित प्रजा को देखकर बहुत प्रसन्न होता था। एक दिन उसने अपनी राजसभा में एक प्रश्न पूछा—प्रश्न बहुत छोटा था और सरल भी था, किन्तु राजा किसके, कौन से उत्तर से संतुष्ट होगा, यह जानना बड़ा कठिन काम है, इसलिए सभासद अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा के प्रश्न का उत्तर देकर संतुष्ट करना चाह रहे थे, लेकिन पता नहीं

आज राजा को क्या हो गया था ? वह किसी के भी उत्तर से संतुष्ट नहीं हो रहा था। राजा को संतुष्ट करने के लिए कोई पुनः विचार करके तर्क दे रहा था तो कोई युक्ति बता रहा था, कोई दृष्टान्त देकर तो कोई किसी घटना के माध्यम से प्रश्न के उत्तर को सही सिद्ध करना चाह रहा था, किन्तु अनेकानेक उत्तर सुनने के बाद भी राजा को किसी का भी उत्तर पूरा नहीं लग रहा था अर्थात् सभी उत्तरों में उसे अधूरापन ही अनुभव में आ रहा था, इसलिए उसे किसी भी उत्तर से संतुष्ट नहीं हुई थी। मुनिराज की बात सुनकर बच्चों ने हाथ जोड़कर पूछा—गुरुवर ! आखिर वह प्रश्न कौन-सा था जिसके उत्तर से राजा संतुष्ट नहीं हो पा रहा था। बच्चों की बात सुनकर मुनिवर उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—शाबास बेटो, तुम लोग मेरी बात को अच्छी तरह एकाग्रता से सुन रहे हो, यह तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य का चिह्न है। उन बच्चों में कुसुम भी थी, जो—कि चुपचाप बैठी-बैठी महाराज की बात सुनते हुए ऐसी लग रही थी मानो कहानी सुनने वाली मुख्य श्रोता वो ही हो। मुनिवर ने प्रश्न बताते हुए कहा—बच्चों सुनो वह प्रश्न था—“सबसे बड़ा पाप कौन-सा है।” प्रश्न सुनते ही बच्चे बोले—महाराज इसका उत्तर तो हमें भी आता है, क्या इतने छोटे से प्रश्न का उत्तर राजा के सभासदों को नहीं आता था? अरे सभासदों को भी इस प्रश्न का उत्तर अच्छी तरह से आता था, किन्तु राजा को उनका उत्तर सही नहीं लग रहा था। बच्चे बोले तो गुरुवर इसका उत्तर हम लोग ही राजा को बता देंगे, राजा संतुष्ट होकर अवश्य ही हमें इनाम देगा। बच्चों की बात सुनकर मुनिवर बोले—अच्छा, बोलो कौन इस प्रश्न का क्या उत्तर बताएगा ?

प्रथम बच्चा—मुनिवर झूठ बोलना सबसे बड़ा पाप है।

दूसरा बच्चा—महाराज, मेरी दादी ने बताया था कि किसी को सताना, मारना आदि सबसे बड़ा पाप है।

तीसरा बच्चा—महाराज, हमें अध्यापक जी ने पाठशाला में पढ़ाया है कि किसी की गिरी हुई, रखी हुई अथवा भूली हुई वस्तु बिना पूछे उठा लेना चोरी है, इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है।

चौथा बच्चा—गुरुवर, मैं बताऊँ मेरी माँ ने सिखाया है कि बहुत सारा

परिग्रह इकट्ठा करना अनावश्यक वस्तुएँ खरीदते रहना परिग्रह नाम का महापाप है।

पाँचवाँ बच्चा—महाराज, लड़कियों को छेड़-छाड़ करना सबसे बड़ा पाप है, इसी पाप से रावण नरक में गया था, क्योंकि उसने सीता जी के साथ छेड़कानी की थी।

सबकी बातें सुनकर एक किशोर बोला—महाराज, “लोभ पाप को पाप बखानो” यह कहावत है, इसलिए सबसे बड़ा पाप तो लोभ ही है।

इस प्रकार बहुत सारे बच्चों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कई उत्तर दिए। कुसुम सबकी बातें सुनती रही, उसको कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर इस प्रश्न का क्या उत्तर हो सकता है, जो अपने आप में पूर्ण हो इसलिए वह चुपचाप ही बैठी रही थी, वह सोच रही थी कि संत महाराज इसका जो उत्तर बताएँगे वो ही सही होगा, वह हाथ जोड़कर मुनिराज के मुखारविन्द से ही प्रश्न का उत्तर सुनने को लालायित थी। सब बच्चों के उत्तर सुनकर मुनिवर बोले—बच्चों तुम्हारा किसी का भी उत्तर गलत नहीं है, क्योंकि जैन-शास्त्रों में ही नहीं, सभी धर्मों में चाहे वह हिन्दू धर्म हो या इस्लाम, वैष्णव धर्म हो या शैव धर्म; सर्वत्र इन पाँच दुष्कार्यों को ही पाप माना है अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पाँच पाप ही जीव का अहित करने वाले हैं, इनसे ही जीव नरक-तिर्यच आदि दुर्गतियों में जाकर अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन करता है। ये ही जीव को भवों-भवों तक दुख के गर्तों में पटकने वाले हैं, उन लोगों ने अर्थात् राजा के सभासदों ने भी ये ही सब उत्तर दिए थे, किन्तु आश्चर्य की बात थी कि आज राजा पहली बार विद्वानों के सटीक उत्तरों से भी संतुष्ट नहीं हुआ था। उस छोटे से प्रश्न का उत्तर सुनते-सुनते संध्या हो गई, सभा विसर्जन का समय आ गया, तब राजा ने मुख्यमंत्री को आदेश दे दिया कि—यदि सात दिन के अन्दर तुम इसका संतोषप्रद उत्तर नहीं दे पाए तो तुम्हें शूली पर चढ़ा दिया जाएगा। राजा के इस कठोर आदेश को सुनकर मंत्री हक्का-बक्का रह गया, उसके होश उड़ गए, पूरी सभा में सन्नाटा छा गया। मंत्री का दिमाग चक्कर खाने लगा उसके सामने मौत नाचने लगी। फिर भी

वह साहस बटोर कर डरते-डरते बोला-महाराज, इतनी अल्प अवधि में मैं आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाऊँगा, कृपा करके कम से कम छह महीने का समय दीजिए, ताकि मैं आपके प्रश्न का समुचित उत्तर दे पाऊँ। राजा ने मंत्री की बात को स्वीकार करते हुए प्रश्न का उत्तर ढूँढने के लिए छह माह का समय दे दिया।

यद्यपि मंत्री वृद्ध था, बुद्धिमान था, अनुभवी था, उसने राजा के यहाँ होने वाले अनेक उलझे हुए फैसलों में सलाह देकर न्याय-नीति का पोषण किया था। राजा की कीर्ति फैलाई थी, उसके बाल उम्र के साथ-साथ अनेक अनुभवों से सफेद हुए थे, वह अपनी जिन्दगी में कभी हताश नहीं हुआ था। वह अनेक बार ऐसी-ऐसी ही विपत्तियों में फँसकर सुरक्षित निकल आया था। उसने कभी अपने आप में पराजित होने की कल्पना ही नहीं की थी और न वह कभी पराजित हुआ ही था, फिर भी आज उसको मौत के भय ने घेर लिया था, वह चाहते हुए भी अपने आपको नहीं समझा पा रहा था, उसका मन उदास हो गया था। फिर भी कितनी और कैसी भी विपत्ति आ जाए व्यक्ति भूखा नहीं रह सकता है। पेट की पूर्ति तो उसे करनी ही पड़ती है। यद्यपि आज के मानसिक तनाव से उसकी भूख भाग गयी थी, किन्तु उसके उदरपुरी की सेना रह-रहकर भोजन की माँग कर रही थी। वह उसकी पूर्ति के लिए उदासी के साथ घर पहुँचा। उसने हाथ-पैर धोए और विश्राम करने के लिए थोड़ी देर लेट गया, किन्तु उसे नींद आने की बात तो बहुत दूर एक क्षण भी शांति की अनुभूति नहीं हो रही थी, कोमल बिस्तर पर भी उसे चैन नहीं पड़ रही थी, वह बिस्तर भी मानो उसे काट रहा था। सच है जिसके सामने मौत का यमदूत खड़ा दिखाई देने लगे, उसे नींद कैसे आ सकती है, वह बिस्तर पर करवटें बदल रहा था, तभी उसकी बेटी जो न ज्यादा बड़ी थी और न ही बहुत छोटी ही थी अर्थात् वह किशोरावस्था से यौवन की दहलीज पर कदम रख रही थी वह आ पहुँची। उसने पिता जी को जय जिनेन्द्र किया, दिनभर की कुशलता पूछी और दिन भर में हुई नयी-पुरानी घटना के संदर्भ सुनाने के लिए कहा। यह उनका प्रतिदिन का कार्य था, जब भी मंत्री घर आता था, अपनी लाड़ली बेटी को दिनभर की आप

बीती और नयी पुरानी बातें जरूर सुनाता था, पर आज मंत्री ने अपनी बेटी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया था? बेटी ने पिता जी से बातें बताने और करने की बहुत कोशिश की, किन्तु जब उसकी सभी युक्तियाँ असफल हो गई अर्थात् मंत्री ने उसकी बातों में कोई रुचि नहीं ली तो वह गंभीर होकर बोली—पिता जी, आज आप इतने उदास क्यों हैं, क्या आज आपके साथ कोई विशेष घटना घटी है ? मंत्री—(उदासीनता से) बेटी! क्या बताऊँ आज राजा ने सभा में एक प्रश्न पूछा था, उस प्रश्न का उत्तर सभा में बैठा हुआ कोई भी सदस्य नहीं दे पाया अर्थात् राजा किसी के भी उत्तर से संतुष्ट नहीं हो पाया तो उसने मुझे आदेश दिया कि यदि तुम मेरे प्रश्न का सही उत्तर नहीं दे पाए तो तुम्हें शूली पर चढ़ा दिया जाएगा।

बेटी—पिता जी, वह प्रश्न क्या था ? आप मुझे बताइये।

मंत्री—बेटी, राजा ने पूछा था कि सबसे बड़ा पाप क्या है ?

बेटी—इसका उत्तर किसने क्या-क्या दिया?

मंत्री ने जितने उत्तर सभासदों ने दिए थे, वे सभी बेटी को बता दिए। बेटी पिता जी के उत्तरों को सुनकर बोली—

बेटी—पिता जी, आप बिल्कुल चिंता न करें। इस प्रश्न का उत्तर छह महीने के अन्दर-अन्दर मैं दे दूँगी।

मंत्री—बेटी, तुम अभी छोटी हो। इसीलिए ऐसा कह रही हो अन्यथा तुम ऐसा कौन-सा अच्छा, सटीक और युक्तिसंगत उत्तर दे सकती हो, जिससे राजा संतुष्ट हो जावे।

बेटी—पिता जी आप निश्चिन्त रहें, मैं ऐसा ही उत्तर दूँगी, जिससे राजा सन्तुष्ट हो जाएगा अर्थात् मैं ऐसा प्रयोग करके इस प्रश्न का उत्तर बताऊँगी, जिसको राजा सहज रूप से स्वीकार कर लेगा। बेटी से आश्वासन पाकर मंत्री को कुछ संतोष हुआ, उसका मानसिक तनाव कम हो गया। कुछ दिनों के बाद बेटी की माँ अर्थात् (मंत्री की धर्मपत्नी) घर की मालकिन का कुछ दिनों के लिए अपने पीहर जाना हुआ। मालकिन के पीहर चले जाने पर घर में पिता तथा पुत्री दो ही सदस्य बचे। बेटी पिता जी को समय

पर दूध-नाश्ता देना, नहाने-धोने, खाने-पीने आदि की व्यवस्था अनुशासित तरीके से करने लगी। पिता-पुत्री दोनों निर्विकल्प थे, दोनों में आत्मिक प्रेम था, इसलिए दोनों में विशेष विपरीत परिणाम उत्पन्न नहीं हुआ। कुछ दिनों के बाद माँ लौट आयी। घर में पूर्ववत् सब कुछ चलता रहा। फिर भी मंत्री की आत्मा उस प्रश्न के उत्तर को पाने के लिए उत्साहित थी और राजा को उत्तर देने के लिए चिन्तित थी। १५-२० दिनों के बाद पुनः माँ को कहीं बाहर जाने का प्रसंग आया। माँ निश्चिन्त होकर चली गयी, क्योंकि उसे विश्वास था कि घर की व्यवस्थाएँ बेटी अच्छी तरह कर लेती है और वह अपने पिता जी की आवश्यकताओं का भी ख्याल रखना जानती है अर्थात् जिम्मेदारी से उनकी व्यवस्थाएँ कर ही देती हैं। अहो! उसने घर की व्यवस्था आदि लौकिक कार्यों के बारे में तो सोच लिया, लेकिन यह नहीं सोचा कि अकेली बेटी को अकेले पुरुष (चाहे वे उसके पिता हों) के साथ छोड़ना कितना खतरनाक है, यही आश्चर्य है! बेटी प्रतिदिन के समान प्रातः उठते ही पिता जी को नहाने के लिए गर्म पानी करके देना, नहाने के बाद तोलिया, पहनने के लिए वस्त्रादि देना, उनके मनपसंद का नास्ता, मिठाई आदि तैयार करना, समय पर भोजन परोसना, पंखा झलना आदि सभी कार्य जो माँ करती थी, उन सब को सुचारु ढंग से करने लगी। इसी प्रकार से ५-६ महीने में माँ को ४-५ बार घर से बाहर जाने का काम पड़ गया अथवा बेटी ने ऐसे प्रसंग बना दिए, जिससे माँ को घर से बाहर जाना ही पड़ा। अंतिम बार जब माँ घर में नहीं थी, बेटी पिता जी को भोजन परोस रही थी, तभी अचानक पिता जी ने उसका हाथ पकड़ने की कोशिश की। जैसे ही बेटी ने पिता जी की खोटी करतूत देखी तो वह पीछे हटते हुए बोली—पिता जी, थोड़ा रुकिये, पहले आप राजा के पास जाकर प्रश्न का उत्तर देकर आए उसके बाद...। मंत्री बेटी की बात सुनकर सकपका गया, उसका सिर लज्जा से नीचा हो गया, फिर भी वह यह नहीं समझ पा रहा था कि आखिर इस बात का उस प्रश्न के उत्तर से क्या सम्बन्ध है और मैं राजा को क्या उत्तर दे दूँ। थोड़ी देर के बाद उसने बेटी से पूछा बेटी आखिर मैं राजा को क्या उत्तर दूँ, जिससे राजा सन्तुष्ट हो जाएगा। बेटी बोली—पिता जी आप राजा



को यही उत्तर दे कि—स्त्री और पुरुष चाहे वे पिता-पुत्री, भाई-बहन, देवर-भाभी हो अथवा ससुर-बहु आदि घनिष्ठ निश्छल प्रेम वाले स्त्री-पुरुष हो अथवा गुरु-शिष्या या गुरु (स्त्री-संत)-शिष्य (भक्त) ही क्यों न हो उनका एकान्त में मिलना ही सबसे बड़ा पाप है, राजा निश्चित रूप से सन्तुष्ट हो जाएगा। बेटी की बात सुनकर मंत्री के ऊपर मानों सौ-सौ पानी के घड़े उलट गए हो, उसे लगने लगा अब तो मुझे मर जाना चाहिए, अब मैं बेटी को अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा आदि-आदि अनेक विकल्प-जाल उसके दिमाग में कौंध रहे थे, लेकिन उस समय उसके पास कोई चारा नहीं था। उसकी अपनी छोटी-सी बेटी ने राजा के प्रश्न का उत्तर चर्चा करके शब्दों से नहीं चर्या में ढाल कर दिया था। वह चुपचाप उठा और राजदरबार में जाकर राजा को अपनी बेटी के द्वारा बताया गया उत्तर बता दिया। राजा मंत्री के मुख से प्रामाणिक उत्तर सुनकर संतुष्ट हो गया। इस प्रकार मुनिवर ने कहानी सुनायी और अन्त में कहानी का सार बताते हुए बोले—हमें स्वदार संतोष व्रत का पालन करने के लिए स्त्रियों को कभी किसी भी पुरुष के साथ चाहे वह भाई, पिता या मामा ही क्यों न हो और पुरुषों को कभी किसी पर स्त्री के साथ चाहे वह वृद्धा हो, युवती हो, बच्ची हो, भाभी हो, काकी-दादी, नानी हो, सुन्दर या काली-कुबड़ी हो एकांत में अर्थात् पुरुष भी अकेला हो और स्त्री भी अकेली हो उसके साथ बैठना, खाना-पीना, बातें करना आदि कोई भी कार्य नहीं करने चाहिए, क्योंकि एकांत में स्त्री-पुरुष के मिलने से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। हमारे आचार्य गुरुवर्यो ने जिनश्रुत-आगम में कहा है कि—“स्त्री अग्नि के समान तथा पुरुष घी के समान है।” जिस प्रकार अग्नि के पास रखा हुआ घी शीघ्र पिघल जाता है, उसी प्रकार स्त्री रूपी अग्नि के पास बैठा हुआ पुरुष रूपी घी भी शीघ्र ही वासना ग्रस्त हो पाप कर लेता है।

पूज्य मुनिवर के मुखारविन्द से चन्द्र-चाँदनी के समान शीतल वाणी सुनकर कुसुम की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। उसे मुनिवर की बात सुनकर माँ के द्वारा दिए गए संस्कार अर्थात् माँ के द्वारा बतायी गई ब्रह्मचर्य सम्बन्धी बातें याद आ गयी। माँ, पड़ोस में भी कभी अकेला जाने

को मना करती थी, जब कभी वह कहीं जाती तो माँ उसके साथ छोटी बहन या भैया को अवश्य भेजती थी अथवा बड़ी बहन या स्वयं अपने साथ ले जाती थी। वे मामा, बुआ, मौसी, दीदी आदि के यहाँ पर भी उसे कभी अकेली नहीं भेजती थी। भाई-बहनों के साथ भेजते समय भी सीख देती थी कि मामा, बुआ आदि के बेटे दीदी के देवर आदि के साथ अकेले न खेलना है और न ही अकेले में उनसे बातें करना, खाना-पीना, सोना आदि कार्य ही करना है। उस समय मुझे माँ का वह कड़ा अनुशासन अच्छा नहीं लगता था, लेकिन आज मुनिवर के मुखारविन्द से यह घटना सुनकर माँ की बातें उसे पूरी सच्ची लगने लगीं। वह मन ही मन में माँ के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त कर रही थी। वे उस कहानी और माँ के द्वारा प्रदत्त संस्कारों में खोई थी, उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे, तब तक लगभग सभी बच्चे अपने-अपने घर की तरफ जा चुके थे। महाराज के समीप ५-७ बच्चे ही बचे थे। जब मुनिवर ने कुसुम की आँखों से बहते हुए आँसू देखे थे, तब उनके मन में बार-बार यह विकल्प उत्पन्न हो रहा था कि यह कोई होनहार बालिका है, यह भविष्य में अवश्य ही उच्च पद पर आसीन होगी। इसे कुछ विशेष शिक्षा अवश्य देना चाहिए। इसलिए वे कुसुम को इंगित करते हुए बोले-बेटी, क्या तुम्हें मेरी बातें अच्छी नहीं लगी अथवा तुम्हें मेरी बातें कुछ समझ में नहीं आई हैं, इसलिए तुम रो रही हो। कुसुम मुनिवर की बातें सुनती रही, उसने उनके प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया। वो क्या उत्तर देती, एक तो वह कम बोलती थीं। दूसरी बात वे इतने बड़े पूज्य गुरुवर के इन प्रश्नों का क्या उत्तर दे, उसे कुछ भी सूझ नहीं रहा था, वह जब बिना उत्तर दिए ही उठकर जाने लगी, तो मुनिवर बोले-बेटी जाने के पहले एक नियम लेकर जाओ तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। कुसुम विनम्रता के साथ हाथ जोड़कर मुनिवर के सामने बैठ गयी। मानो मौन पूर्वक मुनिवर से निवेदन कर रही हो कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, आप नियम दे दीजिए। उसकी नियम ग्रहण करने की मुद्रा को देखकर मुनिवर बोले-बेटी तुम संकल्प कर लो कि मैं आर्यिका दीक्षा ग्रहण करूँगी। मुनिवर के मुख से आर्यिका शब्द सुनकर वह मुनिवर की तरफ इस तरह देखने लगी जैसे

उसको कुछ समझ में ही नहीं आया हो, क्योंकि उसने आज तक आर्यिका शब्द ही नहीं सुना था। उसे पता ही नहीं था, कि आर्यिका किस जंगल की चिड़िया का नाम है। उसने तो अब तक श्वेताम्बर धर्म में होने वाले साधु-साध्वियों को देखा था, जिन्हें पुरुष साधु हो या स्त्री साधु सबको सामान्य रूप से एक महाराज साहब ही सम्बोधन होता है अथवा स्त्री साधु को साध्वी जी कहते हैं। उसने पड़ोसियों के मुख से भी महाराज और माता जी ये शब्द तो सुने थे, किन्तु ये आर्यिका क्या होती है ? कैसी होती है ? कैसे रहती है ? कहाँ रहती हैं ? कैसी उनकी दिनचर्या और वेषभूषा होती है ? आदि-आदि के बारे में कभी सुना ही नहीं था, इसीलिए वह आश्चर्यचकित हो मुनिवर की तरफ देख रही थी, कुछ क्षणों के बाद वह बोली-पूज्यवर, हम लोग तो श्वेताम्बर हैं, हमारे यहाँ तो महाराज साहब और साध्वी जी होती हैं, ये आर्यिका क्या होती है, हम इसके बारे में कुछ नहीं जानते हैं। कुसुम का निश्चल प्रश्नात्मक उत्तर सुनकर मुनिवर बोले-बेटी, जिस प्रकार तुम्हारे श्वेताम्बर धर्म में दीक्षित स्त्री को महाराज साहब या साध्वी जी कहते हैं, उसी प्रकार दिगम्बर धर्म में दीक्षित स्त्री को आर्यिका कहते हैं। सबका हित करने वाली होने से उन्हें जनमानस माँ, माता जी भी कहते हैं। मैं तुम्हें वही आर्यिका बनने के लिए कह रहा हूँ, क्योंकि सच्चा तो दिगम्बर धर्म ही है। परिग्रह वालों को कभी मोक्ष नहीं हो सकता है, क्योंकि जहाँ परिग्रह होता है, वहाँ रौद्रध्यान अवश्य ही होता है, चाहे वह एक लंगोटी मात्र भी क्यों न हो ? वास्तव में तुम ही सोचो वस्त्राभूषण कौन धारण करता है, वही जो स्वयं अपने आप में कुरूपता की अनुभूति करता है। जो स्वयं सुन्दर होता है अथवा जिसको शरीर से कोई वास्ता ही नहीं है। उसे वस्त्राभूषण धारण करने की आवश्यकता ही कहाँ है ? इसी बात को आचार्य वादिराज मुनिवर ने एकीभाव स्तोत्र में कहा है-

आहार्य्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः,  
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।  
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,  
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किञ्च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥

हे भगवन्! जो स्वभाव से ही अमनोज्ञ-कुरूप होता है, वह ही वस्त्राभूषणों को धारण करके शरीर को सुन्दर दिखाने की इच्छा करता है और जो शत्रुओं के द्वारा जीतने योग्य है अर्थात् जो शत्रुओं से भयभीत है उसे ही शस्त्र, त्रिशूल, गदा, भाला, तलवार आदि की आवश्यकता पड़ती है। हे भगवन्! आप सर्वांग सुन्दर हैं (संसार में आपसे ज्यादा सुन्दर कोई नहीं है क्योंकि तीर्थंकर से सुन्दर कोई नहीं होता है) और न ही आप किसी से जीते जा सकते हो (आपने मोह रूपी शत्रु को भी जीत लिया है तो बाह्य शत्रु आपका क्या बिगाड़ सकते हैं) इसलिए आपको वस्त्राभूषण तथा फूलों से और ऊपर उठाए हुए अस्त्र-शस्त्र से क्या प्रयोजन है ?

बेटी संसार में एक जिनेन्द्रदेव को छोड़कर और कोई भी देव नहीं है जिनके पास अस्त्र-शस्त्र या वस्त्राभूषण आदि परिग्रह नहीं हो। तुम तो समझदार हो, अतः सोच-विचार कर सच्चे दिगम्बर धर्म को स्वीकार करो। तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा। मुनिवर की परमोपकारी बात सुनकर कुसुम भौंचक्की-सी रह गयी। उसकी बुद्धि कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रही थी, कि वह क्या करे ? वह सोच रही थी कि मुनिवर की बात को टालना बड़ा पाप है मैं पूज्यवर की बात कैसे टालूँ और यदि मैं यह नियम ले लेती हूँ तो भविष्य में इसका पालन करना मेरे लिए कैसे सम्भव होगा और नियम लेकर तोड़ना तो उससे भी बड़ा महापाप है, अब मैं क्या करूँ ? इस प्रकार सोचते-सोचते वह उठकर घर की ओर चल दी। उसने न मुनिवर की बात टाली अर्थात् नियम लेने के लिए मना नहीं किया और न ही नियम लिया उसने बिना बोले ही अपने आपको बचा लिया था। समझदार और बुद्धिमान लोग ऐसी ही युक्ति से काम करते हैं, जिसमें न साँप मरता है और न ही लाठी टूटती है। यद्यपि घर लौटते समय कुसुम की धड़कन तेज हो गयी थी। उसके अन्दर से आवाज आ रही थी, कि उसने मुनिवर की बात टालकर अच्छा नहीं किया है, मुनिवर कभी अहित के लिए नहीं कह सकते हैं, फिर मुनिवर ने इतने सारे बच्चों में से मात्र मुझे ही नियम लेने के लिए क्यों कहा? उन्हें अन्य बच्चों की अपेक्षा मुझमें कोई न कोई विशेषता तो नजर अवश्य आयी ही होगी, तभी तो उन्होंने मुझसे कहा। अब मैं क्या

करूँ, क्या मैं लौटकर मुनिवर से नियम लेकर आ जाऊँ, लेकिन ये नियम मेरे से कैसे पल पाएगा ? क्या माँ-पिता जी मुझे अपना धर्म छोड़कर दिगम्बर धर्म में जाने देंगे, नहीं, नहीं यह असम्भव है, मेरा नियम टूट जाएगा। मैं नियम नहीं तोड़ सकती इसलिए मैं नियम नहीं लूँगी आदि-आदि ऊहापोह रूप विचारों में उलझी वह अपने घर पहुँच गयी। घर पर पहुँचने के बाद भी उसकी धड़कन बढ़ना बन्द नहीं हुई थी। घर पहुँचते ही माँ ने पूछ ही लिया—बेटी कुसुम इतनी देर कहाँ गयी थी? कुसुम कुछ सम्हलती-सी मुस्कुरा कर बोली—माँ! जैन मंदिर में नग्न दिगम्बर मुनिराज आए हैं, मैं उनके ही दर्शन करने गई थी। मैंने सोचा कहीं महाराज चले जाएँगे तो मुझे दर्शन नहीं हो पाएँगे, इसलिए मैं आपको बिना बताए ही जल्दी-जल्दी चली गई। कुसुम के अपनी गलती को स्वीकार कर लेने से माँ का गुस्सा सहज ही शांत हो गया, वह बोली—बेटी मुझे भी लेती जाती तो मैं भी महाराज के दर्शन कर लेती। सच है—गलती स्वीकार कर लेने से २५ प्रतिशत पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसा जो आचार्य महाराज ने कहा है, वह यहाँ सिद्ध हो गया था अर्थात् बिना कहे जाने पर भी कुसुम को डाँट नहीं पड़ी थी।

दूसरे दिन ही महाराज निम्बाहेड़ा से विहार कर गए। कुसुम दूसरी बार उनके दर्शन नहीं कर पाई थी। उनकी वीतराग छवि उसके मन-मस्तिष्क में समा गई थी और उनकी वह बात और मधुरतम आत्मीक सम्बोधन—“बेटी तुम आर्यिका बनने का संकल्प कर लो, तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा।” उसके दिमाग में चक्कर लगा रहा था। कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे वह उन सब बातों को भूल गई या यूँ कहो कि भूलने लगी। संसारी जीवों का भूलना भी एक स्वभाव-सा है, यह पुरानी बातें भूलता जाता है और नयी बातें सुनने, जानने की ताक लगाए रहता है। कुछ नया होने पर थोड़े दिन उसकी स्मृतियाँ तरोताजा रहती हैं, फिर उनको भूल जाता है। इसी प्रकार करते-करते अनन्तकाल बीत गया। मोक्ष पुरुषार्थ के अभाव में सभी पुरुषार्थ शून्य ही रहे। मैं सोचती हूँ कि ये भूलने की आदत भी कितनी अच्छी है, जिसमें आदमी शांति से जीवन जीता रहता है, अन्यथा

संसार में शायद ही कोई मानसिक तनाव से रहित हो पाता, सभी मानसिक तनाव के मरीज ही मिलते। वास्तव में काल के अन्तराल से सुख-दुख समाप्त होते ही हैं। कुसुम का जीवन भी पूर्ववत् सरागी देवों की आराधना को ही सच्चा और अच्छा मानते हुए बीतने लगा। कभी-कभी कुसुम को मुनिवर की बात याद आ जाती थी और उनके वे शब्द भी याद आ जाते थे कि सच्चा तो दिगम्बर धर्म ही है, परिग्रह वालों को कभी मोक्ष नहीं मिल सकता है। कहा भी है—सब कुछ भूल जाना लेकिन गुरु के वचन मत भूलना वरन् जीवन में सफलता प्राप्त नहीं हो पाएगी। गुरु के वचन हमारी जीवन रूपी गाड़ी को चलाने में पेट्रोल के समान है। थोड़ी देरी के लिए इनका मंथन चलता फिर सब कुछ पूर्ववत् हो जाता था। कभी रात्रि में नींद खुल जाती और ये बातें याद आ जाती तो वह सोचती कि यदि परिग्रह वालों को मोक्ष नहीं मिल सकता है तो हमारे (श्वेताम्बर) भगवान् भी मोक्ष नहीं जा सकते क्योंकि उनके पास भी तो वस्त्र हैं और हमारे महाराज साहब के पास तो वस्त्रों के साथ पात्र, मटकी, कम्बल, लाठी आदि-आदि अनेक वस्तुएँ हैं उन्हें तो फिर कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं होगा आदि-आदि विचार करते-करते सुबह हो जाती थी, पुनः नींद उसकी तरफ झाँकती तक नहीं थी। इस प्रकार दिन पर दिन बीतते जा रहे थे, कुसुम कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रही थी।



एक बार कुसुम किसी कार्य से निम्बाहेड़ा से नीमच गई। जहाँ उसकी सबसे बड़ी बहन श्रीमति सौभाग्यवती विमला जी रहती थीं। जिसका विवाह मंदसौर निवासी श्रीमान् राजमल जी मारु के साथ हुआ था। वे नीमच में सरकारी ऑफीसर थे। कुसुम उनके यहीं गई थी। नीमच में दिगम्बर जैन समाज का भी १००८ श्री पार्श्वनाथ भगवान् का विशाल मनोहारी भव्य जिनालय है। वहाँ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों ही समाज के लोग निवास करते हैं। कुसुम अपनी दीदी के यहाँ पहुँची वहाँ भी उसके भाग्य से किसी ने बताया कि जैन मंदिर में परम पूज्य मुनिवर विराजमान हैं। महाराज की बात सुनते ही उसके रोम-रोम पुलकित हो उठे। उसने जब

से भव्यसागर जी महाराज के दर्शन किए थे, तभी से उनमें दिगम्बर गुरुओं के दर्शन और उनकी समीपता पाने की ललक उत्पन्न हो गई थी। उसे वह वीतरागी-मुद्रा अति ही सुहावनी-लुभावनी लगती थी। उनके उपदेश सुनने के लिए उसके कान आतुर रहते थे, उसे उनकी वाणी सुनने से असीम शांति मिलती थी। उसे श्वेताम्बर साधु की अपेक्षा दिगम्बर साधु सच्चे तपस्वी एवं हितकारक लगते थे, इसलिए वह यहाँ पर भी मुनिवर के पास जाने का मन बनाने लगी। वह चुपचाप जैन मंदिर की खोज करने लगी। उसका भाग्य अच्छा था और होनहार भी अच्छी थी, सो उसको सभी अनुकूलताएँ मिलती जा रही थी। एक जैनी श्रावक ने जिनालय का रास्ता, मुनिवर की वसतिका तथा घर से मंदिर की दूरी भी बता दी। उसका मन योजनाबद्ध काम कर रहा था। एक दिन उसने अपनी दीदी से मुनिवर के दर्शन करने की बात कही। उसकी दीदी ने उसे बच्ची समझ कर सहज ही मुनि-दर्शन की अनुमति दे दी। वह भले ही धर्म का स्वरूप नहीं समझती थी, फिर भी थोड़ा धर्म करती ही थी, उसे दिगम्बर धर्म के प्रति विशेष बहुमान था, इसलिए उसने कुसुम को दिगम्बर गुरुवर के दर्शन के लिए मना नहीं किया था। दीदी की अनुमति पाते ही कुसुम जल्दी से दिगम्बर मंदिर पहुँच गई। वहाँ उसने पहले जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन किए और महाराज के चरणों में पहुँच गई। उस समय लगभग ग्यारह/साढ़े ग्यारह बज रहे होंगे। मुनिराज की आहारचर्या सम्पन्न कराकर आहार-दाता मुनिवर के साथ कुछ धर्म की बातें सुनने के लिए मंदिर में आए थे, वे गुरु-चरणों में नम्रता-पूर्वक हाथ जोड़े बैठे थे। वह भी मुनिवर को नमोऽस्तु करके उन्हीं के साथ बैठ गई। दर्शन करते ही वह उन्हें पहचान गई, कि ये वे ही मुनिवर हैं, जिनके दर्शन उसने अपनी जन्मभूमि निम्बाहेड़ा में किए थे। मुनिवर की भी दृष्टि जब उसके ऊपर पड़ी तो वे भी पहचान गए थे, कि यह शायद वो ही लड़की है, जिसको मैंने आर्यिका बनने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने उसको शुभाशीष दिया और मुस्करा कर मानो मौन से ही उसे नियम लेने की याद दिलायी। कुसुम भी मुनिराज की मुस्कराहट का अर्थ समझ गई कि गुरुवर मुझे नियम लेने की प्रेरणा दे रहे हैं। उसके मन में भी नियम लेने के संदर्भ में द्वन्द्व तो

उसी दिन से चल रहा था। जिस दिन से उसने प्रथम बार निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा के दर्शन किए थे, पर वह चुपचाप बैठी रही।

कुछ देर में ही मुनिवर के चरणों में बैठे सभी लोग गुरुवर की चरण वन्दना करके चले गए। २-४ बच्चे ही गुरु चरणों की सेवा में लगे थे तभी मुनिवर कुसुम की तरफ देखकर बोले—बेटी, मैंने निम्बाहेड़ा में तुझे नियम लेने के लिए कहा था तुम वो ही हो ना? कुसुम ने हाथ जोड़ते हुए हाँ भर दी। गुरुवर पुनः उसको सम्बोधन करते हुए बोले—बेटी, तुम उस दिन तो उठकर चली गई थी, लेकिन आज तो तुझे नियम लेना ही पड़ेगा। मैं आज तुझे नियम लिए बिना नहीं जाने दूँगा। कुसुम गुरुवर की बात सुनकर द्विविधा में पड़ गई। उसको लग रहा था कि अब उसका क्या होगा ? उसे इस समय क्या करना चाहिए ? इस प्रकार विचार करती हुई वह कुछ गम्भीर हो गई, उसने अपनी गर्दन नीची कर ली। उसमें अब मुनिवर की तरफ देखने का साहस भी नहीं बचा था। उसकी आँखों में आँसू भर आए। अश्रुपूरित आँखों से युक्त वह थोड़ा साहस जुटाकर गुरुवर के सामने देखकर बोली—गुरुवर, मैं साधु बनने का नियम ले सकती हूँ, लेकिन आर्यिका बनने का नहीं, क्योंकि मैं न आर्यिका बनने के बारे में कुछ जानती हूँ और न ही मुझे आर्यिका बनने के योग्य वातावरण ही मिल पाएगा, इसलिए कृपा करके मुझे क्षमा कर दीजिए। मुनिवर बोले—बेटी, श्वेताम्बर साध्वी बनने की अपेक्षा तो तुम कुछ भी नहीं बनो तो भी अच्छा है, क्योंकि सरागी धर्म की आराधना करने की अपेक्षा तो धर्म नहीं करना ही ज्यादा उचित है। विपरीत मार्ग पर चलने की अपेक्षा तो एक जगह बैठे रहना ही ज्यादा अच्छा है, ताकि सही मार्ग की दूरी तो नहीं बढ़ेगी। यह सब सुनकर भी कुसुम के मन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वह मौनपूर्वक गुरुवर की बात सुनती रही। मुनिवर फिर बोले—बेटी, तुम जल्दी से नियम ले लो मुझे सामायिक करनी है, नियम तो तुम्हें लेना ही पड़ेगा भले ही अभी लो या थोड़ी देर के बाद लो। इतना सुनकर भी कुसुम का मन नियम लेने के लिए तैयार नहीं हुआ। फिर भी सामायिक का नाम सुनकर वह कुछ विचार करने के लिए मजबूर अवश्य हो गई थी, क्योंकि उसने सामायिक के बारे में बहुत



कुछ सुन रखा था। श्वेताम्बर धर्म में सामायिक को अमूल्य माना है, उनका कहना है कि दुनिया के सभी धर्मों को एक पलड़े में रख दिया जाए और एक पलड़े में सामायिक का फल रखें तो सामायिक रूप धर्म का पलड़ा भारी ही होगा। आदि-आदि अनेक प्रकार के सामायिक के उत्तमोत्तम फल उसने सुन रखे थे, इसलिए जब मुनिराज ने सामायिक का नाम लिया तो उसको लगा कि मुझे नियम तो लेना चाहिए, लेकिन यदि मैंने नियम ले लिया और वह आगे भविष्य में टूट गया तो क्या होगा ? मैं इस पाप के फल को कैसे भोगूँगी ? कुसुम यह सब सोच ही रही थी कि तभी मुनिवर पुनः बोले—बेटी तुम्हें नियम तो लेना ही है, क्योंकि तुम भविष्य में दिगम्बर धर्म की ध्वजा को फहराने वाली होगी और सुनो यदि तुमने आज नियम नहीं लिया तो मैं सामायिक नहीं करूँगा, उस सामायिक नहीं करने का पाप और उसका फल भी तुम्हें ही मिलेगा। पाप की बात सुनकर कुसुम तो अन्दर से हिल गई, उसके रोम-रोम काँप गए। पाप-भीरु कुसुम ने यह सोचकर कि जो होना होगा, हो जाएगा और गुरुवर के आशीर्वाद से सब कुछ अच्छा ही होगा, लेकिन मैं गुरुवर के सामायिक नहीं करने का पाप अपने सिर पर नहीं ले सकती। इस नियम को पालने के लिए चाहे मुझे कितने ही संघर्ष करने पड़े मैं नियम नहीं तोड़ूँगी। इस प्रकार ऊहापोह करते हुए अपने मन को नियम लेने के लिए तैयार किया और हाथ जोड़कर बोली—हे गुरुवर मैं आपकी आज्ञा को नहीं टाल सकती, इसलिए मैं यह नियम लेती हूँ कि यदि मैं साधु बनी तो दिगम्बर जैनधर्म में दीक्षित आर्यिका ही बनूँगी और कहीं नहीं। गुरुवर कुसुम की इस भीष्म-प्रतिज्ञा को सुनकर प्रसन्न हो गए, उन्होंने उसका नियम अच्छी तरह पालन हो इसके लिए अपने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और उसको नियम में सफलता मिले इस प्रकार की मन ही मन में भगवान् से प्रार्थना की। कुसुम पुनः गुरुवर से प्रार्थना करती हुई बोली हे गुरुवर! आप मुझे ऐसा शुभाशीष दीजिए और ऐसा साहस तथा संबल दीजिए जिससे मेरा नियम अच्छी तरह पालन हो सके। गुरुवर ने उसको पुनः—पुनः आशीर्वाद दिया।

वक्ता वास्तव में वही होता है, जो करुणा से ओतप्रोत हो। कहा भी

है—“करुणा के बिना वक्ता का स्वभाव सही नहीं माना जाता है, क्योंकि करुणा से भीगे शब्द असरकारक हुआ करते हैं।” परम पूज्य मुनिवर के हृदय में भी कुसुम के प्रति दया का स्रोत बह रहा था, इसलिए उनके वचन कुसुम के ऊपर असर कर गए थे और भी कहा है—गरजने वाले और बरसने वाले बादल बहुत होते हैं, लेकिन भीतर से आर्द्र पानी बरसाने वाले दुर्लभ होते हैं, उसी प्रकार उपदेश सभी लोग देते हैं, परन्तु कल्याण का उपदेश देने वाले संसार में दुर्लभ हैं या यूँ कहो कि अनुभूति की कड़ाई में से तलकर आ रहे शब्दों में उपदेश देने वाले कम ही होते हैं। गुरुवर ने भी अपने अन्दर की अनुभूति से कुसुम को ये वचन कहे थे, उसी का फल था कि कुसुम के भाव नियम लेने के हो गए थे। कुसुम नियम लेकर अपने घर चली गई।



लोक में ऐसा कहा जाता है, कि यद्यपि बलात् दिलाया गया नियम सही ढंग से निभ नहीं पाता है, यह सत्य भी है, फिर भी यदि कोई साधु आत्म-विकास के लिए कोई नियम लेने की प्रेरणा देते हैं, दे रहे हैं तो समझना चाहिए कि वह बहुत ही किस्मत वाला है, गुरुवर को उसका भविष्य में कुछ न कुछ अच्छा होना नजर आ ही रहा होगा। तब तो वह उसे विशेष प्रेरणा दे रहे हैं और किसी को तो वे प्रेरणा नहीं दे रहे हैं इसलिए हो सके तो गुरु की बात टालने में नहीं पालने में ही लाभ अधिक है। इसी का एक उदाहरण कुसुम बनी थी। कुसुम को महाराज ने विशेष प्रेरणा देकर नियम दिलवाया था। उसके फल में जैन जगत् को एक महान् आर्यिका-रत्न विशालमति माता जी मिलीं। जिनके माध्यम से अनेकानेक भव्यजनों का कल्याण हुआ। अतः मजबूर करके जबरदस्ती दिलवाया गया नियम भी वरदान सिद्ध हो सकता है/हो जाता है।

कुसुम घर आ गई, लेकिन मन तो मुनिवर के चरणों में ही था। उसके कानों में मुनिवर का उपदेश रह-रहकर गूँज रहा था। अब उसका मार्ग और लक्ष्य भी बदल गया। पहले वह किसी श्वेताम्बर साधु के चरणों में रहकर अपना कल्याण करने का विचार बना रही थी। अब उसे किसी पूज्य दिगम्बर मुनिवर अथवा किसी आर्यिका संघ में रहकर अपना कल्याण करने

का विचार बनाना था। उसे पहले सरागी देवों की ही आराधना करनी थी लेकिन अब तो उसे वस्त्र-आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, पत्नी-भोग, संस्कार और श्रृंगार से रहित वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी प्रभु की आराधना करके उन्हीं के समान बनने का पुरुषार्थ प्रारम्भ करना था। पहले वह साधुओं को अपने घर बुलाकर उनका इच्छित भक्ष्याभक्ष्य विवेक से रहित भोजन देती थी। अब मुनिवर को उनकी इच्छा से नहीं अपनी इच्छानुसार उनकी कराञ्जुलि में शुद्ध, सात्विक, प्रासुक आहार देना था। जो नीरस हो या सरस, नमक सहित हो या बिना नमक का, जिसको वे बिना किसी संकेत के नाक-मुख सिकोड़े ही सहज रूप से ग्रहण कर लेते हैं। वे भोजन नहीं आहार करते हैं अर्थात् उन्हें भोजन नहीं आहार दिया जाता है, आज तक वो अपने साधुओं को भोजन करते नहीं देख पाई थी, लेकिन अब तो पचासों लोगों के बीच में सबके सामने आहार देना था, उनका आहार देखकर सिंह और सूअर जैसे जीव भी भोग-प्रधान भोगभूमि में जा सकते हैं, गए हैं जहाँ कल्पवृक्षों के माध्यम से चौबीस घंटों की आवश्यक सुख सामग्रियाँ सहज ही मिल जाती है। जहाँ रोग-शोक, मृत्यु, भय, इष्ट-वियोग आदि कोई भी तकलीफ नहीं हो सकती। ऐसे परमपूज्य मुनिवर के साथ रहने के लिए उनकी खोज करनी थी। उनकी खोज करने में उसका कोई सहायक नहीं था। न ही कोई उसका पक्ष लेकर उसको सम्बल देने वाला था। अब उसे मात्र अकेले ही सब कुछ करना था। इन सब बातों के संदर्भ में अनेकानेक विविध भाँति के विचार उसके दिमाग में घूम रहे थे। वह चिन्तित थी, लेकिन अपनी चिन्ता को किसी के सामने व्यक्त नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसके दिग्म्बर धर्म को धारण करने की बात सुनते ही परिवार वालों का पारा आसमान को छू जाएगा। वे सब एक साथ उसके ऊपर टूट पड़ेंगे और वे उन मुनिवर के बारे में क्या-क्या कहेंगे, कैसा-कैसा कहेंगे, कहा नहीं जा सकता है, वह उसको कैसे सहन कर पाएगी ? अन्दर ही अन्दर उसके ये सब द्वन्द्व चल रहे थे, किन्तु ऊपर से कुसुम प्रसन्न ही नजर आती थी। कोई भी अन्दर का एक भी विकल्प उसके चेहरे से समझ नहीं सकता था। सभी अपनी लाड़ली कुसुम की तरफ से निश्चिंत थे, क्योंकि सभी को विश्वास

था कि वह किसी भी गलत रास्ते पर नहीं जा सकती, वह जो भी करेगी अच्छा और सही ही करेगी। नीमच में सभी कार्य सानन्द सम्पन्न हो गया था। यह नियम लेने का कार्य तो बीच में एक विशेष ही हो गया था, जो न किसी की कल्पना में था और न ही उस कार्य को करने का किसी को विकल्प ही था।

अब कुसुम की दिन-चर्या में काफी अन्तर आ गया था। यद्यपि उसने अभी तक किसी से अपने धर्म-परिवर्तन की बात नहीं कही थी, फिर भी उसके दिगम्बर जैन मंदिर में आने-जाने और उसके प्रति विशेष रुझान को देखकर घर वालों को कुछ संशय होने लगा था। कई बार माँ, भैया आदि ने कुसुम से इसके बारे में पूछा था, लेकिन कुसुम ने कभी भी कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप रही थी या उनकी बात को टालकर अन्य बात छेड़ देती थी, जिससे उसे अपने मन की बात बताने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। वह छिप-छिपकर दिगम्बर मंदिर जाने लगी। वह श्वेताम्बर मंदिर में जाने का बहाना बनाकर दिगम्बर मंदिर में चली जाती थी। वहाँ वह जैन शास्त्रों को खोलकर पढ़ती उन्हें समझने की कोशिश करती थी। उस समय उसे एक-दो बातें ही समझ में आती थीं, फिर भी उसे कुछ जानकारियाँ तो मिल ही रही थी। कभी वहाँ पूजन करने वालों की थाली देखती थी तो कभी पूजा सुनती थी, उसने कभी अष्ट-द्रव्य देखा ही नहीं था, इसलिए उसे वह सब नया-नया-सा लगता था। धीरे-धीरे दिगम्बर जैन समाज से उसका परिचय बढ़ने लगा था। वे उसे मंदिर में की जाने वाली जैनधर्म की क्रियाओं को समझाने लगे थे, जिससे उसे जैनधर्म की महिमा समझ में आने लगी थी। उसे मार्ग के सहयोगी मिलने की आशा भी जगने लगी थी। कभी माँ पूछ लेती कि बेटा इतनी देर कैसे लग गई तो वह सच बता देती थी कि मैं दिगम्बर मंदिर गई थी, वहाँ बहुत अच्छा लगता है, वीतरागी भगवान् के दर्शन करके आत्म-शान्ति मिलती है। माँ आप भी कभी-कभी वहाँ दर्शन करने जाया करो न। अब कुसुम को दिगम्बर जैनधर्म का पालन करने के लिए अपनी चर्या में किस प्रकार परिवर्तन करना है, इसकी जानकारी भी लेनी थी। इसलिए वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों से सम्पर्क

बढ़ाने लगी थी। अपनी पाठ्य-पुस्तकों के बीच में जैनधर्म की पुस्तकें रखकर पढ़ने लगी थी। उसके भोजन में भी परिवर्तन हो गया। बाजार की अभक्ष्य वस्तुएँ खाने के प्रसंगों से वह बचने लगी थी। घर में जब कभी बाजार की जलेबी, नमकीन, कलाकन्द आदि सामग्रियाँ आती तो वो कोई न कोई बहाना बनाकर अपने आपको बचा लेती थी। एक दिन उनके पिता जी आँवले के मुरब्बे का एक पैक डिब्बा लेकर आए। बच्चे उसमें से आँवले निकाल-निकाल कर जब कभी खाते रहते थे। एक दिन माँ ने कुसुम से कहा-बेटी, डिब्बे में से एक-दो आँवले निकालकर मुझे परोस दे। कुसुम ने माँ को परोसने के लिए जैसे ही आँवले के डिब्बे में हाथ डाला उसके हाथ में आँवले के स्थान पर एक छोटी-सी चुहिया आ गई। चुहिया को देखकर कुसुम का दिल काँप गया। उसने तत्काल बाजार की वस्तुएँ खाने का त्याग कह दिया। इस समय त्याग करने के लिए माँ भी कुछ नहीं कर पाई थीं, क्योंकि “हाथ-कंगन को आरसी की” आवश्यकता नहीं थी अर्थात् बाजार की वस्तुएँ कितनी अशुद्ध और अभक्ष्य होती हैं, यह प्रत्यक्ष ही समझ में आ गया था। पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा बाजार की वस्तुओं में सहज ही हो जाती है तो उनमें कितने चींटी, मच्छर, मक्खी आदि गिरते होंगे मरते होंगे उनका अनुमान तक नहीं लगाया जा सकता है। यही सब कुछ सोचकर कुसुम ने इन सबका त्याग कर दिया था। अब वह रात्रि में पेय अर्थात् दूध, पानी आदि भी छोड़ने का विचार कर रही थी। रात्रि में भोजन तो उसके घर में पहले से ही नहीं चलता था, लेकिन त्याग के बारे में माँ के सामने कुछ कहना एक समस्या खड़ी करना था अथवा माँ के मन में कषाय को प्रज्वलित करना था। माँ का कुसुम के प्रति विशेष ही प्रेम होने से वह उसे बहुत कुछ खिलाना चाहती थीं। अच्छा-अच्छा नया-नया भोजन, माल-मिष्ठान्न, नमकीन आदि खिलाकर पुष्ट करना चाहती, अच्छे नए-नए वस्त्र पहनकर उसकी सुन्दरता को देखना चाहती थीं। वह चाहती थी, कि मेरी बेटी अच्छा स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन करके हृष्ट-पुष्ट हो जावे। इसलिए वे कभी उसे डाँट-डपट कर तो कभी डरा-धमकाकर खिलाने की कोशिश करती थीं। कुसुम भी कभी माँ को संतुष्ट करने के लिए

कुछ खा लेती थी तो कभी स्वास्थ्य आदि का बहाना बनाकर छोड़ देती थी। वह जानती थी कि पञ्चेन्द्रिय सुख से आत्मा कभी तृप्त नहीं होती, बल्कि संतृप्त होती है। इन पञ्चेन्द्रिय विषयों को बार-बार भोग-भोग कर भी अज्ञानता के कारण मुझे अब तक विश्वास नहीं हुआ कि मैंने इन विषयों को अनन्त बार भोग-भोग कर छोड़ा है, इसीलिए मैं इनको अब तक छोड़ नहीं पाई हूँ। अब मुझे पुरुषार्थ-पूर्वक इन विषयों से विरक्त होकर अपना कल्याण कर लेना चाहिए। कुसुम की परीक्षा पर परीक्षा होती जा रही थी और वह सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होती जा रही थीं। कहा भी है—“स्वर्ण की परीक्षा तोड़कर, तपाकर और घिस-घिसकर ही की जाती है।” १६ बार परीक्षा देने के बाद ही सोना संसार में पूज्य और सबके द्वारा सम्मानित होता है। कई बार माँ कुसुम जहाँ बैठकर पढ़ती थी, वहीं जाकर दूध का गिलास पकड़ा आती थी। कुसुम भी माँ की ममता का सम्मान करती, गिलास ले कर कह देती माँ मैं अभी थोड़ी देर में दूध पी लूँगी क्योंकि उसको भी अपनी माँ से बहुत प्रेम था, इसलिए वह उसका दिल नहीं दुखा सकती थी, किन्तु वह रात्रि में दूध पीती नहीं थी, जब घर वाले सब सो जाते थे, तब वह चुपचाप उठकर दूध को दूध की भगोनी में डाल आती थी। इस प्रकार कई बार नहीं चाहते हुए भी उसे छल करना पड़ता था, उस समय ऐसा करना आवश्यक लगता था। यद्यपि उसको पता था छल से किया गया धर्म कब तक चलेगा, फिर भी इष्ट कार्य की सिद्धि के लिए तात्कालिक कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। वे यह जानती थीं कि अचानक किसी बात की जानकारी लगने पर व्यक्ति के दिल पर विशेष आघात पहुँचता है। दूसरी बात जल्दी-जल्दी काम करने वालों को सफलता मिलने में संशय रहता है, इसलिए धीरे-धीरे दिगम्बर जैनधर्म पालन करने की बात को वह अपनी चर्चाओं से माँ के पास पहुँचाना चाहती थीं, उसे इसमें सफलता भी मिल रही थी।

□

धीरे-धीरे श्वेताम्बर समाज में यह चर्चा फैलने लगी कि श्रेष्ठी श्रीमान बापूलाल जी चौरड़िया की बेटी सुश्री कुसुम चौरड़िया अपना

श्वेताम्बर धर्म छोड़कर दिगम्बर धर्म अपनाने वाली है। समाज के घर-घर में जोर-शोर से यह चर्चा होने लगी। इन बातों को सुनकर कई वरिष्ठ लोग बापूलाल जी से इसके बारे में पूछने आने लगे तो कई लोग उन्हें समझाने के लिए कि वे अपनी बेटी को इस कार्य के लिए सक्रियता से रोके। इसी तरह कई महिलाएँ भी माँ मोहनी देवी से इधर-उधर की अनेक बातें कहने लगी थीं। कुसुम के पिता जी को अपने बच्चों से बहुत प्रेम था, वे कभी अपने बच्चों को उदास नहीं देख सकते थे, इसलिए माँ के मना करने पर भी वे अपने बच्चों की हठ / इच्छा की पूर्ति कर ही देते थे। उन्होंने अपने बच्चों को न कभी डाँटा था और न ही कभी बच्चों की पिटाई ही की थी। ठीक ही है, माँ और पिता दोनों ही बच्चों को डाँटने लगे तो आखिर बच्चा कहाँ जाएगा ? बापूलाल जी के घर में माँ मोहनी जी का अनुशासन चलता था और उसके साथ अब उनकी बड़ी बेटी श्रीमति विमला जी का अनुशासन भी लागू हो गया था।

कुसुम का दिगम्बर धर्म के प्रति रुझान और समाज के व्यक्तियों के द्वारा दिए जाने वाले उलाहनों के कारण माँ एवं विमला जी ने कुसुम पर सख्ती से दिगम्बर जैन मंदिर जाने पर रोक लगा दी। कुसुम को तो कुछ बोले बिना ही अर्थात् किसी का प्रतिकार नहीं करते हुए अपने लक्ष्य की पूर्ति करनी थी, सो वह उसी में लगी थी उनसे श्वेताम्बर मंदिर में जाना कम कर दिया था। अब सख्ती के कारण वह दिगम्बर मंदिर में भी कम ही जाती थी, वह कुछ ऐसा काम नहीं करना चाहती थीं, कि घर में क्लेश हो, घर वालों को विकल्प-जालों में डूबना पड़े। इसलिए वह अपने घर की बाथरूम में बैठे-बैठे ही जिनालय में होने वाले पूजा-पाठ आदि धार्मिक चर्चाओं को सुनती रहती थी। पुराने जमाने में जिनालयों में सामूहिक पूजाएँ होती थीं। जिसमें जो कोई पढ़े-लिखे नहीं होते थे अथवा जिनको पूजा-पाठ करना नहीं आता था, वे समय पर मंदिर में आकर पूजा-पाठ सुनकर अपनी देवपूजा का आवश्यक पूरा कर लेते थे। कई वृद्ध बुजुर्ग लोग जो असमर्थ होते थे, वे भी मंदिर में तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर स्तोत्र आदि का पाठ सुनकर सातिशय फल प्राप्त करते थे। वही पूजा-पाठ कुसुम के घर तक सुनाई देते

थे, कुसुम उन्हीं को नहाने, कपड़े धोने आदि के बहाने बाथरूम में बैठे-बैठे सुनती रहती थी। वह कभी अपनी पड़ोसन काकी, भाभी आदि के यहाँ जाकर स्वाध्याय करती थी। कभी वह प्रातः सब लोगों के उठने के पहले ही अपने आवश्यक कार्य पूरे कर लेती थी। इन सब बातों की जानकारी सामान्य रूप से माँ को भी रहती थी, लेकिन उनकी माँ बहुत समझदार और संस्कारित थी, इसलिए वह बच्चों की ज्यादा नुक्ता-चीनी करना अर्थात् उनके कार्यों की पल-पल में जानकारी लेते रहना उचित नहीं मानती थीं उनको पता था, कि सी.आई.डी. (जासूस) बनकर बच्चों के पीछे लग जाने से बच्चों के बिगड़ने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। महीने दो महीनों में बच्चों को एक-दो बार डाँटने और उनके कार्यों का ध्यान रखने से बच्चे स्वयं अनुशासित रहते हैं। फिर कुसुम तो उनके सारे बंधु-बाँधवों के बच्चों में सबसे अधिक समझदार, सभ्य और विनयवती बिटिया मानी जाती थी। उसको डाँटने या जोर से कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि वह कभी कोई गलत कदम उठाती ही नहीं थी। कुसुम की इस शालीनता के कारण दूर-दराज के परिचित-अपरिचित रिश्तेदार भी उसे अच्छी तरह जानते थे और उसके प्रति प्रेम भी रखते थे। उन सभी के पास भी कुसुम के दिगम्बर धर्म के प्रति बढ़ते हुए कदम के समाचार पहुँचने लगे थे। जो भी सुनता, सुनते ही विस्मय से चौंक जाता था। सभी के मानस में एक ही बात चक्कर काटने लगती थी कि आखिर कुसुम के धर्म परिवर्तन का कारण क्या है ? ऐसी कौन-सी वजह है, जिससे कुसुम का श्वेताम्बर धर्म के प्रति आकर्षण समाप्त होकर दिगम्बर धर्म के प्रति आस्था जागृत हो गई। क्या अपना धर्म अच्छा नहीं है, क्या हमारा धर्म सच्चा नहीं है, क्या कुसुम दिगम्बर साधुओं की कठोर चर्चा के बारे में कुछ नहीं जानती है, आखिर उसे दिगम्बर धर्म में ऐसी कौन-सी सरलता और सहजता नजर आ गई, जो वह उसे अपनाने का विचार बनाने लगी। इस प्रकार की चर्चाएँ मामा, मौसी, चाचा, बुआ आदि सभी के घरों में होने लगी थी। अब तो जब कभी मामा, चाचा अपनी लाड़ली भांजी/भतीजी को समझाने के लिए आने लगे। दिगम्बर धर्म में शिक्षित और दीक्षित होने से रोकने के लिए अनेक प्रकार



की युक्तियाँ सोचकर निम्बाहेड़ा में रुकने लगे थे। कुसुम को श्वेताम्बर धर्म की महिमा, विशेषता, सच्चाई को बताते हुए दिगम्बर धर्म में नहीं जाने की प्रेरणा देने लगे थे। कुसुम सबकी बातें सुनती रहती थी और कभी-कभी कुछ युक्ति एवं तर्क से दिगम्बर धर्म की महिमा एवं वीतरागता से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। निर्ग्रन्थता ही सिद्धावस्था प्राप्त करने का अचूक उपाय है, यह सब उन सभी के सामने प्रस्तुत करती। कभी-कभी तो ४-४ घंटे तक यह सब चर्चाएँ चलती रहतीं, लेकिन न आने वाला दिगम्बरत्व को स्वीकार करता और न ही कुसुम उनकी बातों में आकर श्वेताम्बर धर्म की तरफ झुकती थी।

कभी कोई श्वेताम्बर धर्म की प्रामाणिकता बताते तो कोई उसे दिगम्बर धर्म से भी प्राचीन सिद्ध करने की कोशिश करते, कोई दिगम्बर धर्म की कठिन चर्या को पालना असंभव-सा बताते हुए, उसे कपोल-कल्पित बताते और श्वेताम्बर धर्म की सरलता को बताते हुए कुसुम को उसी धर्म में दीक्षित होने को प्रेरित करते। इस प्रकार वर्षों निकल गए। कुसुम दिगम्बर गुरुओं की खोज करती रही। गुरु की खोज करने के लिए उसे निम्बाहेड़ा को छोड़कर और कहीं जाने का तो सख्त निषेध था। निम्बाहेड़ा में भी वह स्वतंत्रता से गुरु की खोज नहीं कर सकती थी। फिर भी अपने घर से ही दिखने वाले दिगम्बर मंदिर में कब, कौन साधु या त्यागी-व्रती वहाँ आ रहे हैं, उसकी जानकारी हो ही जाती थी। घर वाले धीरे-धीरे कुसुम की चर्याओं से उसके विचार समझते जा रहे थे, कि अब यह घर में भी नहीं रहेगी और श्वेताम्बर साध्वी भी नहीं बनेगी। माता-पिता, अग्रज आदि गाँव में और समाज में होने वाली चर्चाओं से बड़े परेशान थे। पर वे उन्हें कुछ भी सटीक उत्तर नहीं दे पाते थे। उसके पिता जी भी यही चाहते थे कि आखिर इतनी कठोर चर्या वाले दिगम्बर धर्म में मैं अपनी फूल-सी कोमल कुसुम को कैसे भेज दूँ। फिर सोचते गुलाब जैसे खुशबूदार और लोकप्रिय फूल का विकास कठोर एवं अनचाहे काँटों के बीच में ही होता है। जो जितनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हँसता रहता है, वह लोक में प्रतिष्ठा पाकर अंत में मोक्षसुख को भी प्राप्त कर लेता है, इसलिए कुसुम यदि दिगम्बर साध्वी/

आर्थिका बनती है तो क्या दुख की बात है, मुझे उसे जाने देना चाहिए, लेकिन मैंने उसे आर्थिका बनने की अनुमति दे दी तो समाज में मेरी प्रतिष्ठा पर धब्बा लगेगा। आगे फिर दूसरे बच्चों की शादी आदि में प्रतिकूलता आवेगी तो क्या होगा आदि-आदि अनेक विकल्पों की झड़ी उनके मानस को झकझोर रही थीं। वे इन्हीं विचारों में उलझे कभी-कभी तो रात भर सो ही नहीं पाते थे। करवटें बदलते-बदलते ही सुबह हो जाती थी, किन्तु एक पल के लिए भी उन्हें नींद नहीं आती थी। इन्हीं विचारों में उलझे-उलझे एक दिन उन्हें एक उपाय सूझा कि क्यों न मैं अपनी समाज में मान्य साध्वी श्री विचक्षणाश्री जी से इस संदर्भ में परामर्श कर लूँ। वे मुझे कुछ न कुछ अच्छा और सही मार्गदर्शन अवश्य देगीं। सही कहा है—“व्यक्ति जब किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है, तब वह गुरु की शरण में जाकर ही अपनी समस्याओं का समाधान पाता है।” इसी धारणा से वे एक दिन उनके पास अर्थात् जहाँ वे विराज रही थी, उसी गाँव में पहुँचे। उनकी वसतिका में पहुँचकर देखा तो साध्वी जी अपनी शिष्याओं के साथ अध्ययन-अध्यापन में लीन थीं। वे उन सबकी वंदना करके वहीं बैठ गए और अध्ययन पूर्ण होने का इंतजार करने लगे। अध्ययन पूरा होते ही उन्होंने उनकी पुनः वन्दना की और उन सभी को सुख-साता पूछते हुए बोले—महाराज साहब सुख साता है अर्थात् आपकी साधना अच्छी तरह से चल रही है और आपका स्वास्थ्य/शारीरिक स्थिति तो ठीक है।

साध्वी जी ने (मुस्कराते हुए) हाँ, सुख-साता है इस प्रकार कहते हुए उन्हें शुभाशीष दिया। इस प्रकार शुभाशीष प्राप्त कर वे थोड़ी दूर हाथ जोड़कर बैठ गए। (उनके उदास चेहरे को देखकर)

साध्वी जी—सेठ जी, आज तो आप बड़े उदास नजर आ रहे हैं, क्या अकेले ही आए हो?

बापूलाल जी—जी महाराज साहब! मैं आज अकेला ही आया हूँ।

साध्वी जी—क्या किसी विषम परिस्थिति में उलझ गये हो, सो अचानक अकेले ही हमारे पास आये हो।

बापूलाल जी—हाँ महाराज साहब! ऐसी कोई विषम परिस्थिति तो नहीं है, लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ।

साध्वी जी—ऐसी कौन-सी समस्या है, जिसको सुलझाने का तुम कुछ निर्णय नहीं ले पा रहे हो?

बापूलाल जी—महाराज साहब, क्या बताऊँ मेरी बेटी कुसुम जिसने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया है। वह अब धर्म परिवर्तन करना चाहती है अर्थात् वह अपने श्वेताम्बर धर्म को छोड़कर दिगम्बर धर्म में दीक्षित होना चाहती है। बहुत बार और बहुत प्रकार से समझाए जाने पर भी वह अपनी जिद छोड़ने को तैयार नहीं है, मैं इसी के बारे में कुछ निर्णय नहीं कर पा रहा है, इसलिए मैं आपसे इसी संदर्भ में कुछ चर्चा करने के लिए आया हूँ।

साध्वी जी—सेठ जी, आपकी बेटी का मन दिगम्बर धर्म में दीक्षित होने का कब से और कैसे बन गया?

बापूलाल जी—महाराज साहब! एक दिन हमारे गाँव (निम्बाहेड़ा) में परम पूज्य भव्यसागर जी दिगम्बर मुनिमहाराज का आगमन हुआ। कुसुम उनके दर्शन के लिए पहुँच गई। उन्होंने उसे दिगम्बर जैनधर्म की सच्चाई और महिमा बतायी। कुसुम को उनकी पारमार्थिक बातें समझ में आ गईं। इसलिए उसने उनसे आर्यिका अर्थात् दिगम्बर धर्म में दीक्षित होने का नियम ले लिया। वह छोटी होकर भी नियम की पक्की होने से अब उसी मार्ग में जाने की हठ कर रही है।

साध्वी जी थोड़ी देर उनकी बातों पर सोचती रही उनके दिमाग में दो विकल्प चक्कर लगाने लगे। पहला अपने धर्म का पक्ष और दूसरा धर्म की वास्तविकता का समर्थन। विचार करते-करते उन्हें लगा कि पक्ष-व्यामोह में पड़कर सच्चे धर्म को झुठलाना भी महा पाप है। यदि मैं परम्परागत प्राप्त श्वेताम्बर धर्म की पुष्टि करते हुए दिगम्बर धर्म को गलत बताती हूँ तो निश्चित मेरी दुर्गति होगी। इनकी बेटी तो मेरे मना करने पर या श्वेताम्बर धर्म को ही सच्चा साबित करने के बाद भी दिगम्बर धर्म में दीक्षित होकर

अपना कल्याण कर लेगी, क्योंकि उसने नियम लिया है वह नियम की पक्की भी है और मेरा संसार-भ्रमण ही बढ़ जाएगा आदि-आदि अनेक प्रकार से विचार करने के बाद वे बोली—

बापूलाल जी—तुम्हारी बेटी क्या गलत कर रही है, संसार में सच्चा-अच्छा और सर्वोच्चतम धर्म तो दिगम्बर धर्म ही है। निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा जो यथाजात रूप है, जिसमें अस्त्र, वस्त्र, शस्त्र तथा शरीर के संस्कार और श्रृंगार का कहीं कोई काम नहीं है। जो साक्षात् धर्म की मूर्ति है, वही मुद्रा दिगम्बर जैनधर्म में मान्य है। वही जिनलिंग राग-द्वेष का नाश करके वीतरागता प्रकट करने में समर्थ है।

बापूलाल जी—महाराज साहब! तो क्या मैं अपनी बेटी कुसुम को दिगम्बर धर्म में आर्थिका बनने की अनुमति दे दूँ।

साध्वी जी—हाँ, हाँ! दे दो इसमें कोई बुरी बात नहीं है। तुम्हारी बेटी बड़ी किस्मत वाली है, सो उसके श्वेताम्बर धर्मारोहक के घर में जन्म लेकर भी दिगम्बर धर्म धारण करने के भाव उत्पन्न हुए हैं, उसको त्रैलोक्यपूज्य परम दिगम्बर संत के दर्शन मिले हैं और उनके मुखारविन्द से सत्य धर्म का स्वरूप सुनने को मिला है। इसमें भी विशेष बात तो यह है कि धर्म का स्वरूप सुनकर वह अपने जीवन में आचरित करने के लिए उत्सुक है, धन्य है वह। आप उसको अनुमति देकर सत्य धर्म की अनुमोदना करें।

साध्वी जी की बात सुनकर बापूलाल जी को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी जिन्दगी में पहली बार ऐसा व्यक्तित्व देखा था, जो निष्पक्ष न्याय करने वाला था। जो स्वयं जिस धर्म में दीक्षित होकर यश को प्राप्त कर रहीं हैं, उस धर्म को छोड़कर सही धर्म की व्याख्या करते हुए उसी (दिगम्बर धर्म) को मोक्ष प्राप्ति का सच्चा उपाय बता रही हैं। अन्यथा बड़े-से बड़े ज्ञानी/प्राज्ञ पुरुष भी चाहे यह झूठा है, ऐसा जानते हो तो भी अपने ही धर्म की पुष्टि करते हैं, वे जानबूझ कर भी अपने पक्ष का व्यामोह नहीं छोड़ पाते हैं और जानबूझ कर कुँए में गिरने वाली कहावत को चरितार्थ करते रहते हैं। वे स्वयं उसी मार्ग पर चलते रहते हैं और अन्य लोगों को भी उसी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं, उनकी गति क्या होगी यह

तो भगवान् ही जान सकता है। आज उन्होंने अपने कुल-धर्म की आस्था के केन्द्र के माध्यम से सही धर्म को सुना था। वे सोच रहे थे कि यदि दिगम्बर धर्म ही सच्चा और प्रामाणिक है, मोक्ष सुख को देने में समर्थ है तो ये मेरे गुरु साध्वी जी स्वयं उस मार्ग पर क्यों नहीं चलती हैं, उनके मन में यह उलझन चल ही रही थी कि साध्वी जी उन्हें सम्बोधित करती हुई बोली—

बापूलाल जी तुम्हारी बेटी ने पूर्व में कोई भारी पुण्य कमाया है, जिसके फल में उसे अल्प उम्र में ही सच्चे तत्त्व का स्वरूप समझ में आ गया है। उसको मार्ग पर चलने के पहले ही सही रास्ता दिखाने वाला मार्गदर्शक मिल गया। मील के पत्थर की भाँति रास्ता प्रशस्त करने वाले गुरु का संयोग भी मिल गया। वह धन्य हो गई, उसका कल्याण निश्चित हो ही जाएगा और सुनो मैं भी चाहती हूँ कि दिगम्बर धर्म को अपनाऊँ लेकिन यदि मैंने वह धर्म अपना लिया तो अपना यह श्वेताम्बर धर्म नष्ट प्रायः हो जाएगा, क्योंकि मेरे पीछे कितने सारे शिष्य-शिष्याएँ हैं, भक्तजनों की टोलियाँ हैं, वे सब उधर ही चली जाएँगी। दूसरी बात समाज में धर्मात्मा लोग और मेरे गुरु क्या इस बात के लिए सहमत हो पाएँगे, कदापि नहीं।

एक बार गुरु जी ने भी धर्म सभा में जब उनका दिगम्बराचार्य के साथ व्याख्यान हो रहा था, तब कहा था कि—“अरे श्वेताम्बरों सुनो मैं तुम्हें सच्चाई बताता हूँ, यदि तुम्हें सही आत्म-स्वरूप के/सच्चे भगवान् के दर्शन करना हो तो यहाँ (दिगम्बर मंदिर की तरफ संकेत करते हुए) आकर देखो तुमने तो अपने भगवान् को दूल्हा बना दिया है दूल्हा।” इसलिए तुम इस बात की चिंता मत करो कि मैं अपनी बेटी को दिगम्बर धर्म में दीक्षित हो जाने की अनुमति दे दूँगा तो समाज के लोग क्या कहेंगे ? आगे क्या, कैसा-कैसा होगा ? जाओ मेरा खूब-खूब आशीर्वाद है तुम अपनी कुसुम को दिगम्बर जैनधर्म में दीक्षित होने की प्रसन्नता से आज्ञा दे दो। उसका कल्याण होगा।

साध्वी जी की बात सुनकर बापूलाल जी के तो रोम-रोम पुलकित हो गए। वे प्रसन्न मन से गद्गद् होते हुए उनकी पुनः वन्दना करके

निम्बाहेड़ा लौट आए। उन्होंने घर आकर अपनी धर्मपत्नी और बड़ी बेटी विमला के सामने महाराज साहब विचक्षणाश्री के साथ हुई पूरी चर्चा को बताते हुए अपना निर्णय भी सुना दिया कि अब वे बेटी कुसुम को शीघ्र ही दिगम्बर साधुओं के संघ में छोड़ आएँगे ताकि वह अपने लक्ष्य की पूर्ति कर सके। उनका निर्णय सुनकर उन दोनों ने भी यही निर्णय ले लिया। अब वे कुसुम की सपक्षी बनने लगीं थी। अब वे भी दिगम्बर साधुओं के बारे में जानकारियाँ लेने लगीं थी। जिससे उचित स्थान पर अपनी लाडली कुसुम को कल्याण करने के लिए अर्पित कर सकें।

कुसुम को भी महाराज साहब के साथ हुए वार्तालाप का पता चल चुका था तथा माँ-पिता और बड़ी बहन के निर्णय को भी वह उनकी क्रियाओं से समझ गई थी। अपने पक्ष के निर्णय से वह अत्यन्त प्रसन्न थी, उसकी खुशियों का पार नहीं था, फिर भी समझदार और गम्भीर लोग अपनी खुशियों का प्रदर्शन नहीं करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि समय परिवर्तनशील होता है, सही निर्णय हो जाने के बाद भी कब पासा पलट जाए कहा नहीं जा सकता है इसलिए उसने परिणामों को और भी निर्मल बनाना शुरू कर दिया। उसके मन में विचार आने लगे कि मुझे अपने साथ-साथ इस शरीर के पालक परिजनों का भी थोड़ा उपकार तो करना ही चाहिए। उनके अंधविश्वास को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए और जो मेरी मौसी, मामा आदि मंत्र-तंत्र, हस्तरेखा दिखाना आदि में अतिविश्वास करते हैं उनको भी सही दिशाबोध देना चाहिए। इसी परोपकार की भावना से प्रेरित होकर उसने एक योजना बनाई। जिससे वह परिजनों के सामने युक्तिपूर्वक हस्तरेखा देखकर भविष्य बताने के लिए गाँव की गलियों में घूमने वाले ज्योतिषियों के प्रति श्रद्धा को तोड़ना चाहती थी, इसलिए उसने एक दिन ज्योतिषी का रूप बनाने के लिए अपने सिर पर एक केशरिया साफा बाँधा, माथे पर लम्बा-सा तिलक लगाया, गले में बड़े-बड़े मोतियों वाली रुद्राक्ष की माला धारण की और हाथ में एक पोथी लेकर काँच में देखा तो ठीक वह ज्योतिषी जैसी ही लग रही थी। उसने इसी वेशभूषा में अपनी मौसी के घर पहुँचकर खिड़की में से झाँका और आशीर्वाद देते हुए बोली—अम्मा जी,

मैं हाथ देखकर भविष्य बताना जानता हूँ, क्या आप अपना हाथ दिखाएँगी। उसकी मौसी ने दरवाजा खोला और बोली—आओ पण्डित जी बैठो मैं तो बहुत दिनों से सोच ही रही थी कि कोई ज्योतिष बाबा मिल जावे तो हाथ दिखाकर आगे होने वाले सुख-दुख की जानकारी ले लूँ। अच्छा हुआ आज आप आ ही गए लो देखो मेरे हाथ की रेखाएँ। कुसुम अपनी मौसी की हस्तरेखाएँ देखते हुए बोली—माँ आपके दो बेटे हैं, उनमें से एक बेटा तो अभी पढ़ रहा है और बड़े वाले की नौकरी लग चुकी है आदि-आदि जो-जो बातें उसको मालूम थी, वह सभी उसने बता दी। उसकी बातें सुनकर मौसी को उसके ऊपर विश्वास हो गया कि ये ज्योतिषी जी तो बड़े पहुँचे हुए हैं, इन्होंने तो सभी बातें सही-सही बता दीं। उसने दो-चार बातें और पूछीं, उनका भी सही-सही उत्तर जानकर जब वह उसको दक्षिणा देने लगी तो वह (कुसुम) अपना रूप प्रकट कर खिलखिला कर हँसने लगी। कुसुम के इस प्रयोग से घर वालों का अंधविश्वास समाप्त होने लगा था।



“**भावना भव नाशिनी**” होती है, यह कहावत अब कुसुम के जीवन में चरितार्थ होने लगी थी। उसने जो जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में दिगम्बर धर्म को जल्दी से जल्दी अपनाने की भावना भायी थी, वह अब फलीभूत होने लगी थी। घर वाले अब उसके पक्ष में होने लगे थे। सच है—ईश्वर की भक्ति जीवन रूपी घड़ी में चाबी का काम करती है। आचार्य महाराज कहते हैं जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से किस कार्य की सिद्धि नहीं होती है, जहाँ भगवान् की भक्ति से जहर भी अमृत बन जाता है, सर्प भी हार का रूप धारण कर लेता है, शूली सिंहासन बन जाती है, तो कुसुम की भगवद्भक्ति से घर के विपक्षी जन सपक्षी बन गए तो क्या विस्मय है ? कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कुसुम की भक्ति से श्वेताम्बर कुल वाले अपने परिजनों के परिणामों में परिवर्तन आ गया, फलतः वे उसे दिगम्बर धर्म में आर्यिका दीक्षा लेने की आज्ञा देने के लिए प्रसन्नता से तैयार हो गए थे। कुसुम का भाग्य अच्छा था अथवा सही दिशा में पुरुषार्थ करने वालों का भाग्य अच्छा ही होता है और पुरुषार्थहीन निष्कर्मण्य व्यक्तियों का तो

अच्छा भाग्य भी अपना फल देने में समर्थ नहीं हो पाता है। कुसुम लगभग ७-८ वर्षों से पुरुषार्थ कर रही थी। वह अपनी कुल परम्परा से चले आए असत्य धर्म को छोड़कर वास्तविक सुख के हेतुभूत सत्य धर्म की शरण में जाने की भावना भा रही थी, उसके लिए वह बाहर में सच्चे गुरु की खोज में लगी थीं। आज अचानक निम्बाहेड़ा में अतिथि नाम को सार्थक करते हुए **महाकवि परम पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज** के द्वितीय शिष्य **आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी महाराज** का आगमन हुआ। वास्तव में भाग्यशाली तो वो ही है, जिसको पुण्यकोष, महाभाग्यवान, जिनलिंग के धारण करने वाले दिगम्बर संतों का समागम मिलता है, उनके माध्यम से जीवन विकास के सूत्र मिलते हैं और साथ ही मोक्ष का मार्ग भी मिलता है। कुसुम भी उन्हीं भाग्यशालियों में थी कि ७-८ वर्ष पूर्व उसे सच्चे धर्म का परिचय कराकर निर्वाण पथ पर चलने की प्रेरणा देने वाले **परम पूज्य मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज** के दर्शन मिले थे, उन्होंने उसे मोक्षमार्ग को अपनाने के लिए प्रेरित किया था और दिगम्बर धर्म अपनाने का संकल्प देकर धर्म का एक बीज वपन किया था, अब उस बीज को अंकुरित और पुष्पित करने के लिए खाद देने वाले परम पूज्य तपस्वी गुरुवर विवेकसागर जी महाराज के दर्शन हुए थे, बीच का समय तो यों ही गुरु दर्शन के इंतजार में ही व्यतीत हो गया था। कहते हैं—“भगवान् के दरबार में देर हो सकती है किन्तु अन्धे नहीं।” कुसुम को भले ही देर से संत-समागम मिला, पर मिला तो सौ टंच शुद्ध सोने के समान भावलिंगी संत का अर्थात् उसे निःस्वार्थी संसार के पचड़ों से बहुत दूर रहने वाले मात्र आत्मकल्याण को लक्ष्य बनाकर मोक्षमार्ग में बढ़ने वाले गुरुवर मिले थे।

□

नगरागमन के पहले ही नगर से बहुत दूर तक कुसुम के माता-पिता गुरुवर के आगमन की चर्चा सुनकर ही दर्शनार्थ पहुँच गए थे, क्योंकि कुसुम के जीवन विकास के लिए उचित संत पाने की चिन्ता उन्हें तब से लगी थी जब से उन्होंने कुसुम को दिगम्बर धर्म में दीक्षित होने की आज्ञा देने का निर्णय किया था। आज उस चिन्ता को मिटाने वाले का नगरागमन होने



वाला था, इसलिए वे बहुत प्रसन्नता से गुरुवर की आगवानी के लिए गए थे। वे चाहते थे, कि उनकी बेटी जिस पथ पर जाना चाहती है, उस पथ का निर्देशक एक कुशल संत हो। यद्यपि वे यह नहीं जानते थे कि दिगम्बर संत कैसे होते हैं ? उनकी चर्याएँ कैसी होती हैं ? फिर भी वे इतना तो समझते थे, कि संतों में कषायों की उग्रता नहीं होती है, पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्ति का परिणाम उनमें नहीं हो सकता है अर्थात् पंचेन्द्रिय के विषय भोगों से वे दूर रहते हैं। वे रोटी के पीछे नहीं भागते हैं, अपितु रोटी उनके पीछे भागती है। उनके पास गृहस्थों जैसे परिग्रह का अम्बार एवं विकल्पों का जाल नहीं होता है, फिर दिगम्बर साधु तो एक लंगोटी तक नहीं रखते हैं तो दूसरे परिग्रहों की तो उनके पास होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वे मानों इन्हीं सब लक्षणों को देखने के लिए गुरुवर के पास गए थे। उन्हें अपने दिमाग में बने हुए चित्र के अनुसार ही गुरुवर की चर्या देखी थी। उन्होंने गुरुवर की आहार-चर्या भी देखी, जिसमें गुरुवर की किसी भी विशेष सामग्री में आग्रह अथवा अनाग्रह/द्वेष का परिणाम नहीं था। श्रावक जैसा उनके हाथ में रखते जा रहे थे, वैसा ही वे बिना किसी विकल्प के ग्रहण करते जा रहे थे। उन्होंने तो अपने जीवन में पहली बार किसी साधु को भोजन/आहार करते देखा था, क्योंकि उनके महाराज साहब तो कभी किसी के सामने खाते ही नहीं हैं, इसलिए उनके मन पर गुरुवर की अनासक्त आहार-चर्या पत्थर की रेखा के समान उत्कीरित हो गई थी। वे गुरुवर के घी-दूध से रहित नीरस आहार को देखकर गद्गद् हो गए थे। उन्हें भी एक क्षण के लिए दिगम्बर धर्म ही सत्य प्रतीत होने लगा था। व्यक्ति जन्म से जिस घर में रह रहा है, उसको छोड़कर दूसरे घर में जा सकता है। जन्म से जिन माता-पिता, भाई-बहनों के साथ घुलमिल कर रहा था, उन सबको छोड़कर उनसे कोशों दूर अपनी आजीविका चलाने के लिए रह सकता है। समय आने पर उन सबसे प्रेम तोड़कर अपने पत्नी-बच्चों के साथ नया परिवार बसाकर उन्हीं के साथ रहता हुआ सुख की अनुभूति कर सकता है और भी दुनियादारी के सभी कार्यों में परिवर्तन कर सकता है, लेकिन जानबूझ कर भी सत्य धर्म की शरण में नहीं जा सकता। दुख देने

वाले संसार-भ्रमण कराने वाले सरागी-धर्म को छोड़कर वीतरागी-धर्म को नहीं अपना सकता। यही बड़े आश्चर्य की बात है और यही एक चिह्न है, कि उसे सच्चा सुख प्राप्त करने की ललक नहीं है। उपर्युक्त लौकिक कार्यों में परिवर्तन करते समय उसको परिजन, समाज, रिश्तेदार आदि कोई इंकार नहीं करते, उसमें कोई रोक-टोक नहीं करते, उसको व्यंग आदि करके उस कार्य से पीछे हटाने की कोशिश नहीं करते, लेकिन धर्म-परिवर्तन में कौन बाधक नहीं बनता। हाँ, इसमें भी यदि कहीं धन-प्राप्ति या स्वार्थ की पूर्ति होती हुई दिखती है तो सब ठीक रहता है, किन्तु आत्म-कल्याण के लिए कोई धर्म-परिवर्तन करता है तो उस समय सभी लोग अपनी-अपनी शक्ति एवं बुद्धि के अनुसार कोई न कोई विघ्न अवश्य उपस्थित करते हैं। यही कारण था, कि कुसुम के माता-पिता, परिजन आदि दिगम्बर धर्म की सत्यता को समझकर भी अपने श्वेताम्बर धर्म को नहीं छोड़ पाए थे। उन्हें पूज्य गुरुवर की चर्याएँ बहुत अच्छी लग रही थीं, उचित और सत्य भी लग रही थीं, उन्हीं के साथ उन्होंने अपनी प्राण-प्यारी बेटी को समर्पित करने का निर्णय ले लिया था। फिर भी उनके अंतरंग में सत्यधर्म के प्रति आस्था का भाव जागृत नहीं हुआ था। कुसुम ने भी जब पूज्य गुरुवर के दर्शन किए तो उसे ऐसा लगा मानो मुझे भवसागर में डूबती हुई नाव के खिवैया ही मिल गए हैं। उसे पता था कि कुशल नाविक के बिना कितनी भी अच्छी नाव क्यों न हो, समुद्र को पार नहीं किया जा सकता है। उसमें सहज ही गुरुवर के प्रति भक्ति उमड़ रही थी। उसने अपने हृदयरूपी कमलासन पर उन्हें पाषाण की रेखा के समान उकेरित कर लिया था। उसे आज शास्त्र में पढ़ी हुई पंक्तियों का साक्षात्कार हो रहा था। शास्त्र जी में लिखा था कि—“जो भव्यात्मा युवती समूह को घास के समान, स्वर्ण को मिट्टी के ढेले से भी बदतर और सुन्दर उन्नत स्फटिक मणि निर्मित प्रासाद को झोंपड़ी के समान मानते हैं, वे ही महा पुण्यशाली मुनिराज संसार-समुद्र को पार करते हैं और दूसरों को भी पार कराने में समर्थ होते हैं।” ये सभी गुण उसको गुरुवर में प्रत्यक्ष नजर आ रहे थे, इसीलिए उसने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया था।

□

दो-चार दिन में ही गुरुवर का निम्बाहेड़ा से विहार हो गया था। उस समय निम्बाहेड़ा एक छोटा गाँव था। वहाँ दिगम्बर जैन समाज के घर बहुत कम थे, इसलिए गुरुवर ने वहाँ २-४ दिन ही रुकना उचित समझा था। वे विहार करते हुए नीमच पहुँच गए। वर्षायोग का समय अति निकट होने से वे इस समय अपनी समितियों के पालन करने योग्य स्थान की गवेषणा में लगे हुए थे। कई स्थानों पर गवेषणा करते हुए उन्होंने अन्त में मन्दसौर (मध्यप्रदेश) में वर्षायोग करने का निश्चय किया था। वहाँ उन्हें लगभग चार माह तक साधना के अनुकूल सामग्रियाँ समझ में आ रही थीं। यहाँ गुरुवर के वर्षायोग के समाचार सुनकर कुसुम के दिल की कलियाँ खिल उठी थीं। वह गद्गद् हो गयी थी, उसे विश्वास हो गया था अब उसे घर रूपी कारागृह से निकल कर मोक्षमार्ग पर अग्रसर होने का अवसर अवश्य मिल जाएगा, क्योंकि उसकी सबसे बड़ी दीदी श्री विमला जी की शादी इसी मंदसौर नगर में हुई थी। वर्तमान में बड़ी दीदी भले ही यहाँ नहीं रहती थी, किन्तु उसके सास-ससुर, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी तथा उनके बच्चों से भरा पूरा परिवार तो यहीं रहता था। मंदसौर नीमच से ज्यादा दूर भी नहीं था। इसलिए शनिवार-रविवार को तो दीदी मंदसौर आ ही जाती थी। बड़ी दीदी के ससुराल वालों का व्यवहार और उसके प्रति स्नेह भाव भी अच्छा होने से उनके यहाँ चार महीने रुकने में कोई संकोच वाली बात नहीं थी। यही सब सोचकर कुसुम के मन में विश्वास हो गया कि अबकी बार वह अवश्य ही चार माह तक गुरुवर के चरणों में रहकर दिगम्बर जैनधर्म की चर्चा और चर्चा को बारीकी से समझ पाएगी और उन्हीं के संकेतानुसार अपने जीवन को ढालकर लक्ष्य प्राप्त कर पाएगी। इस प्रकार की अनेक आगामी योजनाएँ उसके दिमाग में चल रही थी तभी दीदी की ससुराल मंदसौर से समाचार आ गया, कि मंदसौर में गुरुवर का वर्षायोग निश्चित हो चुका है, इसलिए कुसुम जी को मंदसौर भेज दो ताकि वह हमारे घर पर रहकर गुरुवर के सान्निध्य का लाभ प्राप्त कर सके। अब तो दीदी और घर वाले भी उसके पक्ष में थे, इसलिए उसे सहज ही मंदसौर जाने की आज्ञा मिल गई। वर्षायोग स्थापना के पहले ही अर्थात् आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के

कुछ दिन पहले ही कुसुम मंदसौर पहुँच गई। गुरुवर के समागम ने उसके जीवन में अमृत बरसाना प्रारम्भ कर दिया। वर्षायोग की स्थापना के साथ ही उसने चार माह के लिए निम्बाहेड़ा जाने का और विशेष परिस्थिति को छोड़कर मंदसौर से बाहर जाने का त्याग कर दिया ताकि पढ़ाई के बीच में बाहर जाने से अन्तराल/विघ्न न पड़े। इस प्रकार के त्याग से कई हद तक पापों से निवृत्ति भी हो जाती है, इस बात का ज्ञान कुसुम को नहीं होने पर भी माता-पिता, भाई, भतीजे आदि से मोह तोड़ने का यह उसने सबसे पहला उपक्रम किया था। उसमें वह सफल भी हुई थी, जिससे उसको मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने का साहस बढ़ गया था और आत्मविश्वास भी उत्पन्न हो गया था।



यह गुरुवर का आठवाँ वर्षायोग था, अभी १९७७ का सत्र चल रहा था, भगवान् महावीर स्वामी को मोक्ष गए २५०३ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। यहीं मंदसौर में चारों अनुयोगों में प्रवीण ‘पंडित भगवानदास जी’ रहते थे। गुरुवर ने उनके पास कुसुम की प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ करवा दी। पण्डित जी उसे जैन तत्त्व/जैनधर्म का ज्ञान करवाते थे और गुरुवर उसे प्रवचन के माध्यम से ज्ञान तथा चर्या के माध्यम से चारित्र की शिक्षा देते थे। वैसे कुसुम को पढ़ाने में पण्डित जी को ज्यादा माथा-पच्ची नहीं करनी पड़ती थी, क्योंकि उसके ज्ञान का क्षयोपशम बहुत अच्छा था। वह एक बार में ही विषय को पकड़ लेती थी। पण्डित जी उसे शाब्दिक ज्ञान कराते थे और उसका भावात्मक ज्ञान तो वह स्वयं ही समझकर अपने जीवन में उतारने लगी थी। जब पण्डित जी ने उसे आलोचना पाठ की यह पंक्तियाँ समझाई कि- **“जल मल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहु घात करायो”** अर्थात् शरीर के मल-मूत्र आदि नाली में चले जाने से नाली में रहने वाले कृमियों/कीड़ों के समूह अर्थात् करोड़ों कीड़े/जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं, यह सुनकर कुसुम ने तत्काल स्नानागार (बाथरूम) में लघुशंका जाना और शौचालय में शौच से निवृत्त होना बंद कर दिया। उस दिन से वह उसी स्थान पर लघुशंका जाती थी, जहाँ से वह बहकर नाली में नहीं जा पावे अगर

कहीं ऐसी व्यवस्था नहीं बन पाती तो छत आदि स्थानों पर पतली-पतली रेत बिछा लेती थी, ताकि लघुशंका बहकर नाली में नहीं जावे और थोड़ी ही देर में वह रेत सूख भी जावे, जिससे उसमें जीव उत्पन्न न हो सके और उस स्थान पर बदबू भी नहीं आ पावे। यह संस्कार, यह चर्या कुसुम ने कोई एक-दो महीने या वर्ष के लिए नहीं की अपितु उसकी यह चर्या उनके अंतिम क्षण तक चलती रही थी और हम लोगों में भी उन्होंने ये ही संस्कार डाले थे।

एक दिन उसने गुरुवर के प्रवचन में सुना कि जल को छानकर जीवानी को उसी स्थान पर पहुँचाना चाहिए। जहाँ से पानी भरकर लाए हैं अथवा भरा है, उसी स्थान पर पहुँचाने से जल छानने के बाद छत्रे पर निकले हुए लाखों-करोड़ों द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवों की रक्षा होती है, अन्य स्थान पर डालने से वे सब मरण को प्राप्त हो जाते हैं, उसका पाप उस पानी का प्रयोग करने वाले को लगता है। उसने यह बात पहली बार सुनी थी तो उसको थोड़ा विस्मय भी हुआ और अन्तरंग में पाप से भय भी उत्पन्न हुआ। उसने गुरुवर के पास जाकर पूछा—गुरुवर! जीवानी कैसे की जाती है और उन जीवों को किस प्रकार १००-५० फीट गहरे कुँए में पहुँचाया जा सकता है, क्या ऊपर से ही डालकर उनकी रक्षा नहीं की जा सकती है? ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न उसने निश्छलता से गुरुवर से पूछ लिए थे। गुरुवर ने उसकी सभी जिज्ञासाओं को शांत करते हुए कुँए में जीवानी को किस प्रकार कड़े वाली बाल्टी से पहुँचाया जाता है, इसकी पूरी विधि समझाई। कुसुम ने घर जाकर तत्काल उसका प्रयोग किया। जब उसने गुरुवर के द्वारा बतायी गई विधि से कुँए में जीवानी पहुँचा दी तो उसकी खुशियों का पार नहीं रहा था। “धर्मात्मा उसे ही कहते हैं, जो धर्म की विधि समझकर आनन्दित होता है।” उसने तत्काल गुरुवर के चरणों में जाकर अपनी खुशी को प्रकट किया अर्थात् जीवानी करने में मिली सफलता को बताया। गुरुवर भी एक बार में सिखाई हुई विधि को जीवन में उतारते देख अपनी शिष्या के प्रति बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसकी प्रशंसा करके प्रोत्साहित किया। उस दिन के बाद शायद ही कुसुम ने कभी बिना जीवानी

किए पानी का प्रयोग किया होगा, ऐसा मुझे विश्वास है, क्योंकि मैंने उन्हें कभी बिना जीवानी किए पानी का प्रयोग करते नहीं देखा था, उन्होंने हम लोगों को भी जीवानी करने की विधि सिखायी थी और अनेक लोगों को सिखाते हुए भी हमने उन्हें देखा था।



कुसुम जितना भी पढ़ती सारा का सारा गुरुवर को सुनाती। उसका गुरुवर से रिश्ता एक प्रकार से पिता-पुत्री के समान घनिष्ठ बनता जा रहा था। उसे धर्म की बातें सुनकर एक अलग ही आह्लाद आता था। उसके लिए तो प्रत्येक बात नई ही थी। चाहे वह पण्डित जी बताएँ या गुरुवर के उपदेश में सुनने को मिले। श्वेताम्बर कुल में जन्म होने से उसे दिगम्बर धर्म की वर्णमाला भी नहीं आती थी, इसलिए उसे ऐसा लगता था कि मैं शीघ्र ही अधिक से अधिक जैनधर्म के विषय में जानकारी प्राप्त कर लूँ और उसे समझकर-जानकर तदनुरूप आचरण भी करूँ। इसी भावना से वह भोजन छोड़ सकती थी पर गुरुवर के प्रवचन नहीं। वह स्वाध्याय सम्बन्धी चर्चाएँ या विद्वानों के साथ होने वाली तत्त्व-चर्चाएँ, शंका-समाधान भी ध्यान पूर्वक सुनती थी। वह अपना हर कार्य समय पर किया करती थी, जिससे उसको समय पर गुरुवर के उपदेशादि का लाभ मिल जाता था, उपदेश सुनकर वे तत्काल उसका जीवन में प्रयोग भी करती थीं। एक दिन रास्ते में चलते-चलते उसका पल्ला सिर से नीचे गिर गया, उसने ध्यान नहीं दिया और खुले सिर ही गुरु-चरणों में पहुँच गई। गुरुवर ने जब खुले सिर देखा तो बोले-बेटी यह पीहर नहीं है, जो तुम खुले सिर आ गई हो। देव-शास्त्र-गुरु के सामने कभी खुले सिर नहीं जाना चाहिए। तुम भारतीय संस्कृति की वेशभूषा अर्थात् साड़ी पहनती हो तो तुम्हें सिर ढककर ही आना चाहिए। उस दिन के बाद कभी उनका सिर किसी भी स्थान पर नहीं खुला अर्थात् मंदिर जी या गुरुवर के सामने ही नहीं वरन् वे सर्वत्र शालीनता के साथ सिर ढककर ही रहती थी। चाहे कितनी भी भीषण गर्मी हो या अन्य कोई विषम परिस्थिति भी हो, तो भी वे गुरु के सूत्र वाक्य का परिपालन करती थी। सच है-सही मुमुक्षु तो वही है, जो गुरु की बात को ब्रह्म वाक्य

मानकर उस पर अमल भी करता हो ।

पण्डित जी उसे रत्नकरण्डक श्रावकाचार पढ़ा रहे थे । यह **आचार्य समन्तभद्र महाराज** का अनुपम ग्रन्थ है, यह श्रावकों के आचरण को बताने वाला जैन जगत् का सर्वप्रथम ग्रन्थ है, इसमें आचार्य महाराज ने श्रावक की चर्या कैसी होनी चाहिए ? श्रावक को किस प्रकार पापों से बचने के लिए त्याग-वृत्ति अपनाना चाहिए ? किस प्रकार श्रावक भोग करते हुए भी उसके अणुव्रत-महाव्रत के समान हो जाते हैं ? दिग्व्रत, देशव्रत आदि का पालन करता हुआ वह घर की व्यवस्थाएँ बनाते हुए धन का अर्जन, भोजन बनाना, घर के सारे काम सम्हालते हुए भी भोगों से निर्लिप्त रहता हुआ, वह पापों से बचकर अंत में समाधिपूर्वक मरण करके कुछ ही भवों में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । आदि-आदि बातों का वर्णन किया गया है । पण्डित जी ने कुसुम को इसकी पूरी १५० गाथाएँ कंठस्थ करवाई थीं, वे प्रतिदिन उससे गाथाएँ एवं उनका अर्थ सुनते थे, ताकि उनके द्वारा पढ़ाया गया, यह ज्ञान कुसुम में अन्तिम समय तक बना रहे । कुसुम ने भी श्रावकाचार में बतायी गई अभक्ष्य वस्तुएँ मद्य, मांस, मधु एवं पाँच उदुम्बर फल, आलू-प्याज आदि का स्वयं ही गुरु-चरणों में आजीवन त्याग कर दिया था । इसी ग्रन्थ में गुणव्रतों का वर्णन पढ़कर उनने दशों दिशाओं में जाने-आने का परिमाण कर लिया और प्रतिदिन भोजन, वाहन, शयन, स्नान, शृंगार, फूल, ताम्बूल, वस्त्र, आभूषण, ब्रह्मचर्य, संगीत तथा गीत का परिमाण करने की बात पढ़कर इनमें से शृंगार करना, फूल सूँघना, ताम्बूल सेवन, संगीत-गीत सुनना आदि जो ब्रह्मचर्य को दूषित करने वाली चीजें थीं । उनका तो पूर्ण रूप से त्याग कर दिया तथा शेष का वह प्रतिदिन परिमाण कर लेती थी अर्थात् आज मैं दो बार से ज्यादा भोजन नहीं करूँगी, आज मैं विशेष परिस्थिति को छोड़कर किसी वाहन में नहीं बैटूँगी अथवा एक-दो वाहन में ही बैटूँगी, आज मैं एक बाल्टी पानी से ज्यादा पानी का उपयोग नहीं करूँगी, आज मैं ४ बार से ज्यादा लाइट नहीं जलाऊँगी अथवा आज लाइट-पंखा आदि का प्रयोग नहीं करूँगी आदि-आदि नियम वे स्वयं करती थी और अपने सम्पर्क में आने वाले परिचित-अपरिचित लोगों को

भी करवाती थीं। वास्तव में धर्मात्मा जीव परोपकारी होते हैं, वे स्वयं धर्म करते हैं और उन्हें लगता है कि संसार के सभी जीव पापों से बचकर धर्माचरण करें क्योंकि उन्हें धर्म करने में जो आनन्द आता है, वे अन्य सबको भी उसी आनन्द में डुबाना चाहते हैं, आर्थिका बनने के बाद भी वे अधिकतर सभी को ये नियम करवाती थी। उनके द्वारा लिखी गई इन सब के नियम लेने की विधि बताने वाली 'नियम मंजूषा' नाम की पुस्तक (पॉकेट बुक) प्रकाशित हुई थी।

गुरुवर कुसुम से अतीव प्रसन्न थे, ठीक ही है योग्य शिष्य को पाकर कौन गुरु प्रसन्न नहीं होगा!!! अहो गुरु की तो महिमा ही अलौकिक होती है, वे अपने शिष्य की क्या बात कोई श्रावक भी धर्माचरण करता है, विवेक पूर्वक अहिंसा का ख्याल रखते हुए अपने घर में रहकर व्यापार-व्यवसाय आदि करता है, ब्रह्मचर्य का पालन करता है, तो वे उससे भी प्रसन्न होते हैं, फिर अपने ही शिष्य की धार्मिक भावनाएँ एवं चर्याएँ देखकर प्रसन्न हो तो विस्मय ही क्या है ? कुसुम के दैनिक जीवन में जो भी छोटे-मोटे अच्छे-बुरे प्रसंग आते थे, उन सभी को वह बच्चों के समान निश्छलता से गुरुवर को बता देती थी गुरुवर भी उसको यथायोग्य समाधान देते थे, भविष्य के लिए मार्गदर्शन एवं निर्देशन देते थे। सुख का समय कब और कैसे निकल जाता है, पता नहीं लगता है। कुसुम के जीवन में भी यह चार महीनों का समय कैसे निकल गया, उसे समझ में ही नहीं आया, उसे तो चार माह के बाद भी ऐसा लग रहा था। मानो ४-८ दिन से ही वह गुरुवर के चरणों में रह रही है। अभी कुछ दिन पहले ही तो गुरुवर का वर्षायोग स्थापन हुआ था, क्या इतनी जल्दी वर्षायोग के समापन का समय भी आ गया, उसे विश्वास नहीं हो रहा था, फिर भी सत्य को छुपाया तो नहीं जा सकता है। वर्षायोग के निष्ठापन की क्रियाएँ दीपावली के दिन सम्पन्न हुईं। श्रावकों को सानन्द वर्षायोग के सम्पन्न होने की प्रसन्नता थी और वे गुरुवर के द्वारा दिए गए धार्मिक संस्कारों को अपने जीवन में उतारने की क्षमता प्राप्त करने के लिए गुरुवर के प्रति कृतज्ञता का निर्वाह करते हुए आशीर्वाद ले रहे थे। कुसुम ने भी गुरुवर से आशीर्वाद लिया, लेकिन उस समय भी उसकी



आँखों में हर्ष के आँसू नहीं थे, दुःख के आँसू थे, क्योंकि उसे लग रहा था कि अब गुरुवर विहार कर जाएँगे, फिर क्या भरोसा कब पुनः इनके चरणों का संयोग मिल पावे। गुरुवर के चले जाने पर मैं क्या करूँगी, मेरा पूरा दिन कैसे निकलेगा ? मुझे अब दिशा-निर्देश कौन देगा आदि-आदि विचार करते हुए उसने निर्णय किया कि मैं गुरुवर के साथ ही चली जाऊँगी ताकि मेरा जीवन विकास अवरुद्ध नहीं होगा, मेरे ब्रह्मचर्यव्रत का संकल्प भी अच्छी तरह निभ जाएगा। इस निर्णय के अनुसार ही उसने एक दिन गुरु-चरणों में अपनी बात रखी। उसके मन की बात सुनकर गुरुवर के चेहरे पर मंद-मुस्कान बिखर पड़ी, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। जब बहुत देर हो गई गुरुवर ने कुछ नहीं कहा तो कुसुम की आँखों से अश्रुधारा निकलने लगी। वह गुरुवर के मौन से समझ गई कि वे उसको अपने साथ नहीं ले जाएँगे। उसने साहस बटोर कर पुनः साथ चलने की प्रार्थना की, फिर भी गुरुवर मौन ही रहे, क्योंकि उनको पता था कि यदि मैं इसे साथ चलने को मना करूँगा तो निश्चित इसके दिल को ठेस लगेगी और हाँ कहता हूँ तो मैं अकेली स्त्री को अपने साथ (संघ में) कैसे रख सकता हूँ ? यह जैनधर्म से अधिक परिचित नहीं है, इसलिए साथ चलने का आग्रह कर रही है, किन्तु मैं इसको साथ में रखकर जिनाज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ ? जिनागम में आचार्य महाराज ने कहा है कि-जो संघ बढ़ाने के लोभ में आगम की आज्ञा का ख्याल नहीं रखता है, वह अनन्त संसारी है, मुझे तो मोक्ष प्राप्त करना है, मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ ? फिर भी अभी तत्काल में इसको कुछ उत्तर तो देना ही होगा, इस प्रकार विचार करते हुए, वे गम्भीर स्वरों में बोले-बाई, मुनियों के संघ में अकेली स्त्री कैसे रह सकती है ? यदि मैं तुम्हें साथ रखने के लिए हाँ भरता हूँ तो तुम अकेली कहाँ रहोगी ? कहाँ सोओगी और किसके साथ भोजन-पानी आदि करोगी। इन सब कार्यों में तुम्हारी जिम्मेदारी कौन लेगा, तुम्हारा ध्यान कौन रखेगा ? नए-नए गाँवों में विहार होगा, वहाँ तुम अकेली कैसे अपने शील की सुरक्षा कर पाओगी, इसलिए अभी तुम घर पर ही रहकर अपनी धर्मारामना करो। जब संघ में कोई अन्य स्त्रियाँ त्यागी, व्रती आ जावेंगे, तब तुम भी आ सकती

हो ताकि तुम दो-तीन मिलकर ब्रतों का अच्छी तरह पालन कर सको। गुरुवर का उत्तर सुनकर उसको वस्तु स्थिति समझ में आ जाने से मन में संतोष हुआ लेकिन थोड़ी ही देर में पुनः लगने लगा कि अहो अब मुझे फिर से उसी घर रूपी कारागृह में जाना पड़ेगा। बड़ी दुर्लभता से यह सुखद पुण्य संयोग मिला था, वह भी अब छूट जाएगा। गुरुवर का कहना भी पूर्ण रूप से सत्य है, अतः उनके सामने हठ करना ठीक नहीं है, अब तो एक ही उपाय है, कि मैं किसी एक साथी (स्त्री) को ढूँढ़ लूँ, जो मोक्षमार्ग में अग्रसर होना चाहती हो। अपने आत्म-कल्याण की चाह रखती हो, हे भगवन्! मुझे अब जल्दी-से-जल्दी ऐसी कोई बहन मिल जावे, जो रत्नत्रय की आराधना करने की भावना रखती हो, लेकिन मैं दिगम्बर भाई-बन्धुओं से परिचित नहीं हूँ और श्वेताम्बर समाज में से कोई इस कठिनतम दिगम्बर मार्ग पर आ सकता है, यह असंभव जैसा है आदि-आदि विचारों में वह बहुत देर तक खोई रही, फिर अन्त में निर्णय किया, कि मैं जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति करूँगी जिससे मेरी भावनाएँ बहुत जल्दी पूरी हो जावेंगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।



“जहाँ चाह होती है वहाँ राह अवश्य मिलती है” इस युक्ति के अनुसार मुझे कोई न कोई राह अवश्य मिलेगी। इस प्रकार विचार कर वह प्रतिदिन भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन्! मेरे साथ रहने वाली कोई एक लड़की/स्त्री मिल जावे, जिससे मुझे पुनः उस घर के पिंजरे में बंद नहीं होना पड़े। सद्भावनाओं का सम्प्रेषण कहो या भगवद्भक्ति का चमत्कार अथवा यूँ कहो कि भगवान् के सामने निश्छल मन से भायी गयी भावनाएँ कभी निष्फल नहीं होतीं। उनकी भावनाओं के फल में ही मानो कुछ दिन के बाद वासिम (महाराष्ट्र) से पूज्य गुरुवर के पारिवारिक सदस्य अथवा उनकी गृहस्थावस्था के पुत्र, पौत्र, बहुएँ आदि अपनी माँ (श्री रत्नमाला जी) के साथ गुरुवर के दर्शन करने को आए। श्री रत्नमाला जी की भावनाएँ जब से गुरुवर ने दीक्षा ली तब से ही मोक्षमार्ग में बढ़ने की बनने लगी थीं। वे मन में गृहस्थी के कीचड़ में से निकलकर आर्थिका बनने का निश्चय कर

चुकने के बाद भी घर छोड़ने में सफल नहीं हो पाई थीं। अनेक बार घर छोड़ने का पुरुषार्थ करने के बाद भी वे घर में रहने के लिए मजबूर थीं अर्थात् घर नहीं छोड़ पाई थीं। आज जब गुरुवर के दर्शन करने के बाद वे बहन कुसुम से मिलीं तो उसकी छोटी-सी उम्र में घर-त्याग करने की भावना को देखकर विस्मित हो गईं और उनने अपने मन की सारी व्यथा (घर से निकलने सम्बन्धी) कुसुम को सुना दी। कुसुम उनकी अन्तरंग वेदना को सुनकर सोचने लगी, यदि मैं इनको थोड़ा प्रोत्साहित करूँ तो मेरा कार्य भी सिद्ध हो जाएगा और इनकी व्यथा भी समाप्त हो जाएगी। यह सोचकर उनका मन खिल गया, उनको लगने लगा कि मानो मेरा मनोरथ सिद्ध हो चुका है। उनने अपनी अकेले संघ में रहने की आज्ञा नहीं मिलने की समस्या रत्नमाला जी के सामने रखी तो मानो एक जैसे दो पथिकों का रास्ते में एक स्थान पर मिलन हो गया हो। दोनों ने मिलकर उस दिन अपने-अपने मन की बहुत सारी बातें करके अपना दिल हल्का किया और दोनों ही एक साथ अपने पूरे आवश्यक कार्य करने लगीं। जब रत्नमाला जी के पुत्र ने घर जाने की योजना बनाई तो वे बोलीं—बेटा महावीर, बहन कुसुम पूज्य गुरुवर के संघ में रहना चाहती हैं, लेकिन अकेली होने के कारण गुरुवर उसे रहने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं, इसलिए मैं सोच रही हूँ कि कुछ दिन मैं उसके साथ रहूँ तो हम दोनों गुरुवर के पास रह लेगीं, इससे उसका सहयोग भी हो जाएगा और मेरी आत्म-कल्याण की भावना भी फलित हो जाएगी। माँ की बात सुनकर पहले तो महावीर ने मना कर दिया, पर माँ ने बार-बार मनाया तो थोड़ा-थोड़ा हाँ करके भी मना करता रहा। अंत में जब बात गुरुवर तक पहुँच गई तो फिर वह साहस करके भी माँ से कुछ भी नहीं कह पाया। उसे माँ को गुरु-चरणों में रहने के लिए छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। श्री रत्नमाला जी संघ में रहने को तैयार हो गईं तो कुसुम के जीवन में तो चार-चाँद लग गए। उसे लगा कि मानो श्री रत्नमाला जी के आने से अपने घर में ही कामधेनु मिल गई हो, उनके निमित्त से उसके सभी अरमान पूरे हो गए थे, सबसे ज्यादा प्रसन्नता तो उसे इस बात की थी कि अब उसे घर नहीं जाना पड़ेगा। अब श्री रत्नमाला जी के आ जाने से

उनका अध्ययन में भी उत्साह विशेष बढ़ गया था, साधना में भी उनके कदम आगे बढ़ने लगे थे।



कुसुम की भावना बहुत दिनों से गुरुवर को आहार देने की थी, किन्तु गुरुवर ने अभी उसे आहार देने की स्वीकृति नहीं दी थी। गुरुवर का कहना था कि तुम श्वेताम्बर कुल में जन्मी हो इसलिए यदि किसी कारणवशात् घर नहीं छोड़ पाई तो तुम्हारा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को ही पूजने/मानने का नियम अर्थात् सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को छोड़कर अन्य किसी के चरणों में सिर नहीं झुकाना है, उनके प्रति आस्था नहीं रखना, उनके यहाँ आना-जाना, उनके कार्यक्रमों में खाना-पीना, उनकी सेवा-वैय्यावृत्य आदि करने से उनके साथ सम्पर्क कैसे छूट सकता है और इस नियम के बिना मैं तुम्हारे हाथों से कैसे आहार ग्रहण कर सकता हूँ। यद्यपि कुसुम ने बहुत बार आहारदान देने के लिए गुरुवर से निवेदन किया था। वह सभी संकल्प लेने को भी तैयार थी, फिर भी जब-जब यह प्रसंग आता गुरुवर मौन रह जाते थे। वे न इसकी विधि बताते थे और न ही निषेध ही करते थे। गुरुवर दिगम्बर जैन श्रावक-श्राविकाओं से आहार लेते समय भी उन्हें कुगुरु-कुदेव-कुशास्त्र की मान्यता का त्याग अवश्य करवाते थे। यदि कोई सरागी देवों की आराधना करना नहीं छोड़ पाता तो वह चाहे प्रतिदिन अभिषेक-पूजा करने वाला हो, स्वाध्यायशील हो, मुनिभक्त हो अथवा स्वयं गुरुवर की ही दिन-रात सेवा करने वाला हो तो भी उससे आहार नहीं लेते थे। इसलिए कुसुम से आहार लेने की बात तो पहले ही समाप्त हो गई थी।

आज पुनः वह श्री रत्नमाला जी के साथ गुरु-चरणों में आहारदान देने का सौभाग्य प्राप्त करने की विनती करने गई थीं। वह गुरुवर से प्रार्थना करते हुए बोली-हे गुरुवर! अब मुझे घर नहीं जाना पड़ेगा क्योंकि माँ रत्नमाला जी आ गई हैं इसलिए मैं आज से घर जाने का त्याग करती हूँ, अब मैं जीवन भर आपके चरणों में रह सकती हूँ, क्योंकि अब हम दो हो गई हैं। अतः पूज्यवर आप मुझे कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु को मानने के त्याग का संकल्प दे दीजिए, संकल्प का आशीर्वाद देकर मेरे इंतजार की घड़ियों

को समाप्त करके जीवन का सपना साकार कीजिए अर्थात् मुझे आहार देने का सुनहरा अवसर देकर कृतार्थ कीजिए। इतना सुनकर भी पूज्य गुरुवर ने मुस्कुराते हुए मना कर दिया और बोले—अभी नहीं, जब तुम्हारे माता-पिता तुम्हें संघ में रहने की अनुमति देंगे, तब ही तो मैं तुम्हें नियम दे सकता हूँ। आज भी कुसुम की भावना पूरी नहीं हो पाई थी। वह सोचने लगी पता नहीं कितने दिन तक और इंतजार करना पड़ेगा। पिता जी अभी थोड़े दिन पहले ही तो आकर गए हैं, इसलिए अब कब आएँगे कहा नहीं जा सकता है। खैर, जो मेरी किस्मत में लिखा है, वही तो होगा। मुझे तो सही दिशा में पुरुषार्थ करते रहना चाहिए, ताकि कर्म ढीले पड़कर मेरा सहयोग देने लगे। इस प्रकार विचार कर उसने पुनः विशेष रूप से भगवान् की भक्ति करना प्रारम्भ कर दिया। उसकी भक्ति के प्रभाव से ही समझ लो २-४ दिन बाद ही निम्बाहेड़ा से उसके पिता जी उससे पुनः मिलने आ गए। गुरुवर के प्रति आस्था होने से वे गुरु-चरणों में बार-बार आने की भावना रखते थे। पिता जी को देखकर कुसुम का मन प्रसन्न हो गया। उसने गुरुवर के द्वारा कही गई सारी बातें पिता जी को बता दी। पिता जी ने भी कुसुम की भावना को पूरी करने के लिए गुरुवर से गृहत्याग और कुदेव-शास्त्र-गुरु की आराधना का आजीवन त्याग करवा दिया।

कुसुम आज बहुत खुश थी, उसे आज गुरुवर की कराञ्जलि में आहार-दान देने का अवसर मिलना है। उसने शुद्ध वस्त्र पहनकर मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक गुरुवर को आहार दिया। जब उसने गुरुवर को प्रथम बार प्रथम ग्रास दिया, तब उसके मन में कितनी विशुद्धि बढ़ी थी उसको जड़ शब्दों के द्वारा न वह कह पाई थी और न ही उसको लिखा ही जा सकता है, विशुद्ध परिणाम तो केवल अनुभूति का विषय होते हैं, उन्हें गूंगे के गुड़ खाकर स्वाद बताने जैसा ही कहा जा सकता है। अब उसने रंगीन वस्त्र का त्याग कर सफेद वस्त्र धारण कर लिए थे, श्वेत वस्त्र वैराग्य के प्रतीक हैं। उसने स्वर्ण के आभूषणों को छोड़कर यम-नियम रूपी आभरणों से अपने को शृंगारित करना प्रारंभ कर दिया था। वे अब शरीर के साज-शृंगार और संस्कारों को छोड़कर संयम, तप, त्याग रूपी संस्कारों से

अपनी आत्मा को संस्कारित करने के लिए पूज्य गुरुवर (विवेकसागर जी महाराज) की संस्कार पाठशाला में सम्मिलित हो गई थीं। उनने चैन, कंगन, घड़ी, पायल, कुण्डल, नथ आदि उतार करके पिता जी को दे दिए और जीवन भर के लिए उन्हें पहनने का त्याग कर दिया। यह भी शरीर और आत्मा के भेदज्ञान का चिह्न है। रागी जीव इन सबको प्राप्त करने लिए इधर-उधर भटकता रहता है और वैरागी इन सबसे दूर भागना चाहता है। यही रागी और वैरागी में अन्तर है। अब तो कुसुम ने ब्रह्मचर्य का निर्दोष पालन करने के लिए गादी, दरी, तकिया, रजाई, कम्बल आदि का त्याग करके घास, चटाई अथवा काष्ठ के पाटे पर ही सोने का संकल्प लिया था। गादी आदि कोमल बिछौने पर सोने से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता है अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिए इनका त्याग करना आवश्यक है, चाहे वह गृहस्थ हो, मुनिराज हो, ब्रह्मचारी पुरुष हो या स्त्री।

अब कुसुम के पद का विकास हो गया था, वे अब ब्रह्मचारिणी कुसुम दीदी नाम से जानी जाती थीं और उनके साथ रहने वाली श्रीमति रत्नमाला जी भी माँ, दादी, नानी, काकी आदि मोहाश्रित होने वाले रिश्तों से रहित रत्नमाला दीदी बन गई थीं, अब वह सबकी दीदी थीं, वैसे यह भी कोई आत्मा का शाश्वत नाम नहीं है, किन्तु वर्तमान की पर्याय की पहचान के लिए कोई संज्ञा तो आवश्यक है इसीलिए इन दोनों को दीदी के नाम से ही पुकारा जाता था। दोनों के अर्थात् ब्रह्मचारिणी कुसुम दीदी और ब्रह्मचारिणी रत्नमाला दीदी के विचार एक जैसे थे। दोनों का लक्ष्य मात्र आत्म-कल्याण करने का था, इसलिए दोनों को एक दूसरे के प्रति कोई विकल्प उत्पन्न नहीं होता था। दोनों में उम्र का अंतर बहुत होने पर भी विचारों में भिन्नता अर्थात् दूरी नहीं होने से उनमें कभी भी तू-तू, मैं-मैं या अनबन अथवा मनमुटाव का अवसर नहीं आता था। वैसे त्यागी-व्रतियों में विसंवाद होने का कोई कारण शेष नहीं रहता है, इसलिए विसंवाद का प्रश्न ही नहीं उठता है। जिसके रोटी और लंगोटी की भी चिन्ता समाप्त हो गई हो, उसके क्लेश का क्या कारण हो सकता है ? दोनों अलग-अलग गाँव, अलग-अलग घर, अलग-अलग जाति तथा अलग-अलग धर्म की होकर भी साधर्मि बन गई

थीं, इसलिए आपस में कोई विकल्प उत्पन्न नहीं होता था, दोनों में माँ-बेटीवत् प्रेम-वात्सल्य था। कुसुम रत्नमाला दीदी को माँ के समान मानकर उनका पूरा ध्यान रखती थी और माँ के समान ही उनका तथा उनकी बात का सम्मान करती थी, उनकी आज्ञा, निर्देशनों का परिपालन करती थी और उनके दुख दर्द का भी ख्याल रखकर समय पर परिचर्या करना अपना कर्तव्य मानती हुई सेवा करती थी। तो वे भी कुसुम को अपनी बेटी के समान ही स्नेह, ममता से सराबोर करती रहती थी। उसके भोजन-पानी, अध्ययन-साधना को वृद्धिगत करवाने का प्रयास करती थीं, उसे हमेशा निज शिशु के समान उत्साहित करती थीं। घर-गृहस्थी के विकल्प-जालों से दोनों ही निवृत्त रहती थीं। जहाँ कुसुम को माता-पिता, भाई-बहन, भाभी आदि की कभी याद नहीं आती थी तो रत्नमाला जी को भी अपने पुत्र-पुत्री, बहू-पौत्र आदि का कोई भी विकल्प नहीं उठता था। कुसुम दीदी ने तो अपने माता-पिता को सीधे-सीधे माता-पिता कहना बंद करके (छोटे भाई का नाम लेकर) अनिल के बाऊजी, अनिल की बाई जी आदि कहना प्रारम्भ कर दिया था। वे बड़ी बहनों को भी जीजी के स्थान पर विमला बहन, सुशीला बहन कहने लगी थीं। इन सम्बोधनों से उसे वे अपने एवं पारिवारिक सदस्य नजर नहीं आते थे, शब्द-परिवर्तन से भावों में भी परिवर्तन हो जाता है, इसलिए अब उसे वे सभी सामान्य सामाजिक सदस्य ही लगते थे। **“नजर बदल जाए तो नजरिया भी बदल जाता है।”** नजरिया बदलते ही तत्सम्बन्धी विकल्प भी समाप्त हो जाते हैं अर्थात् उनके जीवन से या उनके खान-पान, रहन-सहन की चिंताएँ समाप्त हो जाती हैं। प्रायः जब भी वे लोग मिलने आते तो वह अध्ययन-अध्यापन का बहाना बनाकर सभी व्यवहारों से अर्थात् उनसे बोलना, भोजनादि की चिंता से दूर हो जाती थीं। कभी अति आवश्यकता होती तो नहीं के बराबर बोलकर बात समाप्त कर देती थीं। ब्रह्मचारिणी बहन कुसुम दीदी की इस निर्मोह-वृत्ति से घर वाले भले ही नाराज हो जाते पर गुरुवर तो उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। सच ही है—**मोही को निर्मोही कब रुचा था और निर्मोही को मोही कब बाँध पाया था।** यही बात यहाँ घटित हो रही थी।

अब कुसुम को मात्र सच्चे देव-शास्त्र-गुरु से ही प्रयोजन था, वो ही उसकी दुनिया थी, वो ही सब कुछ था। गुरुवर जब आहार-चर्या पर निकलते तो कुसुम दीदी एक चौके से दूसरे चौके तक गुरुवर के पहले ही पहुँचकर उनकी विधि मिलाने की कोशिश करती थीं। कभी-कभी तो गुरुवर की विधि/वृत्ति-परिसंख्यान मिलाने में ३-४ किलोमीटर का चक्कर हो जाता, फिर भी दीदी कभी थकती नहीं थीं, वरन् भरसक कोशिश करके विधि मिलाती थीं, पर जब गुरुवर की विधि नहीं मिलने से उपवास हो जाता था, तो वे बहुत दुखी होती थीं। उस समय वे उदास-मना निराश होकर एक कोने में बैठकर रह जाती थीं, तब उनको सर्वाधिक थकान की अनुभूति होती थी, उनकी भूख भी भाग जाती थी। आँखें सजल होकर चारों तरफ देखती रह जाती थीं। यही गुरुभक्ति है, गुरु के प्रति वात्सल्य-भाव है। गुरुवर का आहार न हो और शिष्य प्रसन्न रहे, यह कैसे हो सकता है ? शिष्य तो गुरु की परछाई होता है। ब्र. कुसुम दीदी भी ऐसा होने पर कभी आधा तो कभी दिन निकल जावे उतना भोजन करके ही आ जाती थीं। कभी जब वह भोजन करने ही नहीं जाती और इस बात की जानकारी गुरुवर को लगती तो गुरुवर कभी प्रेम वात्सल्य से तो कभी डाँटकर उसे भोजन नहीं छोड़ने देते थे। वे उसे समझा-बुझाकर भोजन के लिए भेज देते थे। दीदी भी गुरु-आज्ञा को कभी नहीं टालती थी। उनके निर्देशानुसार ही सारा काम करती थीं। वह दैनिक-चर्या की प्रत्येक क्रिया गुरुवर के शुभाशीष से उन्हीं के निर्देशानुसार करके अपने आपको मोक्षमार्ग में आगे बढ़ा रही थी। वास्तव में गुरुवर तो तपस्वी थे, मानसिक और आत्मबल के भण्डार थे। क्षुधा-तृषा परीषह को सहज ही सहन करते रहते थे, सहन करने का अभ्यास होने से उनको आकुलता भी नहीं होती थी, किन्तु कुसुम दीदी तो अभी नई-नई थीं, उसने तो कभी घर में रहकर एकाशन भी नहीं किया था, इसलिए उसे गुरुवर के भूखे-प्यासे रह जाने पर असह्य दुख होता था। कभी-कभी दीदी को भी पूरा अन्तराय आ जाता तो कभी आधा भोजन हुआ और कोई अन्तराय का कारण बन जाता था तो कभी अन्त का पानी पीना शेष रहता और अन्तराय हो जाता था, तब दीदी भी साहसपूर्वक



उसको सहन करती थीं। अन्तराय होने पर वह यह विकल्प नहीं करती थीं, कि अब पूरा दिन कैसे निकलेगा ? पानी नहीं पीने के कारण शाम को गला सूखेगा, ओंठ चिपकने लगेंगे, तो सामायिकादि आवश्यक कैसे करूँगी? वे अन्तराय आते ही तत्काल भोजन छोड़कर प्रसन्नता से अपनी वसतिका में आ जाती थीं और धर्मध्यानपूर्वक अपना समय व्यतीत करती थीं।

कभी-कभी गुरुवर ऐसी अटपटी विधि ले लेते थे, जिसका मिलना असम्भव-सा होता था। कभी उनकी २-२ बादाम तो कभी २-२ काजू-किसमिस की, कभी दातार सोने की चैन पहने हो तो कभी पड़गाहन करने वाला सोने के कड़े पहने हो, कभी ५ युगलों की तो कभी ५ नौजवानों की इस प्रकार बड़ी कठिनाई से मिलने वाली विधि को भी दीदी भरसक पुरुषार्थ करके मिलाती रहती थी। कभी मिलाते-मिलाते थककर चूर हो जाती तो भी उसके अन्दर गुरुवर के प्रति यह भाव नहीं आते थे, कि गुरुवर क्यों व्यर्थ ही इतना कठिन वृत्ति-परिसंख्यान लेकर सबको परेशान करते हैं, क्यों हम लोगों का स्वाध्याय का समय खराब करते हैं और साथ-साथ हमें थका भी देते हैं, इतना थकने के बाद तो एक ग्रास भी गले नहीं उतरता है अपितु वह सोचती थी कि अहो, गुरुवर इतनी वृद्धावस्था में भी कितनी कठोर साधना करते हैं, धन्य हो इन्हें शरीर में ओंगन के बराबर भोजन देना भी तो अच्छा नहीं लगता है, इसीलिए तो ये अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करके आहार करने के लिए जाते हैं। इस प्रकार गुरुवर के गुणों का स्मरण करते-करते सब कुछ भूल जाती थीं। उसकी थकान रफूचक्कर हो जाती थी। वह पुनः स्फूर्ति से भर जाती थी। इस प्रकार दीदी अपनी साधर्मी बहन श्री रत्नमाला जी के साथ गुरुवर की सेवा में लगी हुई थी।



गुरुवर का विहार अनेक छोटे-बड़े गाँवों में होते हुए भीलवाड़ा की तरफ हो रहा था इस वर्ष का वर्षायोग यहीं के पुण्यशाली श्रावकों को मिला था। यहीं पर एक बाल विधवा जिसका ५ वर्ष मात्र का बेटा था। श्रीमति कंचन जी पाटौदी ने जब वर्षायोग में कुसुम दीदी का वात्सल्य से भरा पूरा

व्यवहार देखा तो वह अपने पिता विहीन बालक से भी मोह छोड़कर संघ में आने की तैयारी करने लगी। उसके किसी रिश्तेदार ने कुछ वर्षों के बाद जाने की सलाह दी तो किसी ने बेटे अशोक के बड़े हो जाने के बाद जाने की। किसी ने बेटे के पैर पर खड़ा हो जाने के बाद जाने की तो किसी ने बेटे की शादी के बाद आत्म-कल्याण करने के लिए घर छोड़ने की सलाह दी। इस प्रकार लगभग सभी रिश्तेदारों और समाज के कई वृद्ध-जवान श्रावकों ने उसको तरह-तरह की सलाह दी। गुरुवर ने भी उसे अपने बालक के प्रति किए जाने वाले कर्तव्य को समझाया, किन्तु उसके वैराग्य से ओतप्रोत उत्तरों को सुनकर सबको मौन होकर उसका ही पक्ष लेना पड़ा। उसकी आत्मकल्याण तथा बच्चे के प्रति निस्पृह-भाव को देखकर उसकी माँ ने बच्चे के पालन-पोषण की जिम्मेदारी लेकर उसे आत्मकल्याण के लिए प्रोत्साहित किया और गुरुवर के चरणों में उसको संघ में रख लेने की प्रार्थना की। गुरुवर भी उसकी भरी जवानी में इस प्रकार के अद्भुत वैराग्य से बहुत प्रसन्न थे, इसलिए उन्होंने उसे संघ में रहने की आज्ञा दे दी। अब संघ में तीन ब्रह्मचारिणी बहनें हो गई थीं।

श्री रत्नमाला जी की उम्र ढलती जा रही थी इसलिए उन्हें दीक्षा लेने की बहुत आकुलता थी। उनके दीक्षा लेने के भावों से (उनकी दीक्षा हो जाने से) उनके (कुसुम दीदी) लिए आगे का रास्ता खुल जाएगा। ऐसे विचारों से वे उनको प्रोत्साहित करती थीं तथा गुरुवर के चरणों में बार-बार श्री रत्नमाला दीदी की दीक्षा जल्दी से जल्दी हो जाए, ऐसी प्रार्थना करती रहती थीं। गुरुवर उनकी बात सुनकर मात्र मुस्कुरा देते थे। जब तक पुण्य का पलड़ा भारी नहीं हो जाता, तब तक दीक्षा लेने के भाव नहीं बनते और जब तक पुण्य गाढ़ा नहीं हो जाता, तब तक दीक्षा नहीं होती। जिस प्रकार चासनी गाढ़ी हुए बिना बर्फी नहीं जमती। इसी नीति के अनुसार श्री रत्नमाला जी भी अपना पुण्य गाढ़ा करने का सर्वोत्तम उपाय श्री अरहंत भगवान् की भक्ति में तल्लीन रहने लगी थीं। ब्र. कुसुम दीदी और ब्र. कंचन दीदी भी उनकी सहायक बनती हुई, अपने पुण्य की वृद्धि करने लगी थीं। सच ही है—बहती गंगा को देखकर हाथ धो लेना ही समझदारी है।

संघ में पूज्य गुरुवर सहित श्री रत्नमाला जी ब्र. कंचन दीदी आदि सभी सदस्य विवाह करके अर्थात् गृहस्थी के कीचड़ में प्रवेश करने के पश्चात् ही मोक्षमार्ग में आए थे, पर कुसुम दीदी बाल ब्रह्मचारिणी थीं तो भी वे इस बात का गर्व नहीं करती थीं, कि ये सब तो भोगों के कीचड़ में फँसकर निकले हैं और मैंने तो कीचड़ में पैर डाला ही नहीं है, मैं बाल-ब्रह्मचारिणी बनी हूँ, इसलिए मैंने कोई बड़ा आश्चर्यकारी काम किया है अपितु वे सोचती थीं, कि इनको धन्य है, ये भोगों के कीचड़ में फँसने के बाद भी निकल आए हैं, यही बड़े आश्चर्य की बात है। कोई विरले ही हाथी होते हैं, जो कीचड़ में फँसने के बाद निकल जाते हैं, सामान्य हाथी तो उसी में फँसे-फँसे अपने प्राण-विसर्जन कर देते हैं, इसी प्रकार कोई विरले ही भव्यात्मा जीव होते हैं, जो गृहस्थी के कीचड़ में से निकल आते हैं, वास्तव में इनके बराबर पुरुषार्थ मैंने किया ही कहाँ है ? सो मैं गर्व करूँ आदि-आदि सोचते हुए अपने आपको सबसे छोटा मानती हुई सबकी सेवा करने में तत्पर रहती थी।

पूज्य गुरुवर के साथ पैदल-पैदल विहार करना दीदी का सामान्य नियम था। ब्र. कंचन दीदी तथा रत्नमाला दीदी भी गाड़ी में बैठना पसंद नहीं करती थीं, इसलिए वे भी अधिकांशतः पैदल ही चलती थी, क्योंकि गाड़ी आदि वाहनों के चलने में हजारों जीवों की हिंसा निश्चित रूप से होती है उन सबकी हिंसा का पाप उस वाहन में बैठने वालों को भी निश्चित रूप से लगता है। पापभीरु दीदी इतना पाप अपने सिर पर कैसे ले सकती थी? फिर उसे तो जल्दी से जल्दी आर्थिका बनना था, जिसमें पैदल चलना ही अनिवार्य रहता है। इसलिए दीदी पैदल चलने का अभ्यास कर रही थी। गुरुवर विहार में न ज्यादा जल्दी चलते थे और न ही ज्यादा धीरे ही चलते थे, वे एक घण्टे में लगभग ४ किलोमीटर चलते थे, इसलिए दीदी ही क्या कोई बच्चा या वृद्ध भी उनके साथ चले तो थकता नहीं था। आषाढ़ का माह था, कभी-कभी वर्षा की फुहारें आने लगी थीं, धरती के अन्दर रहने वाले जीव अपने बिलों से बाहर आने लगे थे। उसी समय गुरुवर का विहार वर्षायोग करने के योग्य स्थान की खोज में चल रहा था। प्रातःकाल गुरुवर

के साथ तीनों बहनें भी पैदल विहार कर रही थीं। रास्ते में एक मरे हुए जीव का शरीर दिखा उसे देखकर दीदी का दिल दहल गया। उसको विचार आया कि गाड़ी में बैठने वालों को भी इसका पाप भले ही उन्हें पता नहीं हो कि कोई जीव मरा भी है और न ही उनको मारने का भाव ही रहता है, फिर भी पाप तो लगता ही होगा। आज मैं देखती हूँ ५-१० किलोमीटर में कितने जीवों की मौत हुई है। उसने वहीं से मरे हुए जीवों की गिनती करना प्रारम्भ कर दी। इतनी-सी दूरी में उसे लगभग ६०-७० मरे हुए जीव मिल गए अर्थात् मेंढक, साँप, केंचुए, कुत्ता, बिल्ली आदि जीवों के कलेवर सड़क पर गाड़ियों से कुचले हुए डले थे। उन जीवों के मृत कलेवरों को देखकर दीदी ने तो तत्काल आजीवन विशेष परिस्थिति को छोड़कर वाहन में बैठने का त्याग कर दिया, इस त्याग के बाद ही उनको शान्ति की साँस आयी, संतोष की अनुभूति हुई। वास्तव में “त्याग किये बिना निर्विकल्पता की अनुभूति कैसे हो सकती है ?” आज दीदी को बड़ी प्रसन्नता थी सच है—अहिंसा का पालन करने में किसको आत्मसंतोष नहीं होगा। बशर्ते वह दया, करुणा से भरे हुए दिल वाला होना चाहिए। यही धर्म है, जब यह जीव एक-एक परिग्रह छोड़ते-छोड़ते अंतरंग-बहिरंग सभी परिग्रहों का त्याग कर देता है, तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है अर्थात् परिग्रहों का त्याग कर देने से हिंसा आदि पाँचों पापों से निवृत्ति भी हो ही जाती है, यह भी मोक्ष प्राप्त करने की एक विधि है। दीदी का भी मोक्ष प्राप्त करने का लक्ष्य था, इसलिए वह भी अंतरंग-बहिरंग दोनों प्रकार से पापों से निवृत्त होती जा रही थी।

पूज्य गुरुवर का विहार छोटे-छोटे गाँवों में ४-६ दिन और शहरों में ८-१५ या अधिक से अधिक २७ दिन रुकते हुए चल रहा था। इस प्रकार विहार करते हुए गुरुवर सिद्धक्षेत्र चूलगिरि-बावनगजा तीर्थ पर ससंघ पहुँचे। यहाँ से अर्ध चक्रवर्ती रावण के पुत्र श्री इन्द्रजीत और भाई कुम्भकरण ने (इस पर्वत की चोटी पर) परम निर्वाण को प्राप्त किया था, इसलिए यह सिद्धक्षेत्र चूलगिरि के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है तथा यहाँ १००८ देवाधिदेव आदिनाथ भगवान् की ५२ गज अर्थात् ८४ फुट की खड्गासन

प्रतिमा विराजमान है, जब यह प्रतिमा विराजमान की गई थी, उस समय विश्व में मेरे अनुमान से इतनी बड़ी प्रतिमा नहीं थी। इस प्रतिमा की ऊँचाई के कारण ही यह बावनगजा के नाम से आज तक प्रसिद्ध है। गुरुवर भी इसी क्षेत्र की पावन-पुनीत वसुन्धरा की रज को माथे पर लगाने अर्थात् सिद्धक्षेत्र की वन्दना करने की भावना से यहाँ आए थे। वह क्षेत्र विशेष मंगल रूप माना जाता है, जिस स्थान से कोई भव्यात्मा अन्तिम पुरुषार्थ करने में सफल होकर सिद्ध पद को प्राप्त कर लेती है। उस स्थान पर युग-युगान्तरों तक उनकी साधना और तप-तपस्या का आभामण्डल व्याप्त रहता है इस कारण वहाँ पहुँचने वाले भव्य जीवों के परिणामों में भी सहज ही विशुद्धि बढ़ती है। उनके कषायों की मंदता हो जाने से संक्लेश अपने आप समाप्त हो जाता है। उनकी आत्मा में मोक्ष प्राप्ति का पुरुषार्थ जागृत हो जाता है, गुरुवर भी संघ सहित अपने दुष्कर्मों की निर्जरा करने के कारणभूत अन्तरंग-बहिरंग विशुद्धि बढ़ाने के लिए यहाँ आए थे। यहाँ आने से दीदी विशेष ही प्रसन्न थी, क्योंकि उसे प्रथम बार सिद्धक्षेत्र की वन्दना करने का अवसर मिला था, इसलिए उसकी विशुद्धि भी अपूर्व-अपूर्व ही बढ़ती जा रही थी। यद्यपि उसने पहले सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वन्दना की थी, लेकिन उस समय वह सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप से अपरिचित थी। परमात्मा के स्वरूप को जानती ही नहीं थी। उस समय तो वह वस्त्राभूषण, साज-शृंगार से युक्त राज्यावस्था वालों को ही भगवान् मानती थी, क्योंकि वह उसी कुल में जन्मी थी। जिसमें सरागी देवों को ही भगवान् माना जाता है। जिसकी दृष्टि जैसी होती है, उसको सामने वाले पदार्थ भी वैसे ही दिखते हैं, इस नीति के अनुसार सरागी/मिथ्यादृष्टि को वीतरागी प्रभु भी राग सहित ही नजर आते हैं। जिस प्रकार पीलिया के रोगी को सफेद वस्तुएँ भी पीली ही दिखाई देती हैं, यह कोई वस्तु का दोष नहीं है, वस्तु तो सफेद ही है। दीदी भी सम्मेदशिखर गई थीं, उसे वहाँ जिनेन्द्रदेव के दर्शन नहीं हुए थे। उसने व्रत भी सरागी देव के सामने ही लिया था। अब वह सच्चे वीतरागी धर्म को भलीभाँति समझ चुकी थीं, मोक्ष तथा मोक्षमार्ग के प्रति उसकी धारणा दृढ़ बन चुकी थी, इसलिए उसे सिद्धक्षेत्र के प्रति

विशेष आकर्षण उत्पन्न हुआ था। उसकी आँखों के सामने और मानस-पटल में इन्द्रजीत-कुम्भकरण की त्याग-तपस्या तथा साधना के अनुपमेय चित्र बन रहे थे। उन चित्रों से उसकी आत्मा में विशुद्ध परिणाम बढ़ते जा रहे थे। कुम्भकरण के बारे में फैली हुई भ्रातियाँ जब याद आती तो मस्तिष्क में उन लोगों की मूढ़ताओं एवं किंवदन्तियों के प्रति हँसी आती थी तो कभी उनकी अज्ञानता पर तरस आता था। उसके मन में विचार आ रहे थे कि क्या कहीं कोई व्यक्ति छह माह तक लगातार सो सकता है, क्या सोए-सोए उसके शरीर में घाव नहीं हो जाएँगे। हम एक दिन भोजन नहीं करते हैं तो भी रात भर करवटें बदलते रहते हैं तो उन्हें इतने लम्बे समय तक भी भोजन नहीं करने पर नींद कैसे आती होगी ? दूसरी तरफ सोचो तो तद्भव मोक्षगामी जीव भी क्या कभी इतने प्रमादी हो सकते हैं? आदि-आदि सोच-सोच कर विस्मय उत्पन्न होता था, लेकिन विश्वास किंचित् भी नहीं होता था क्योंकि वह जानती थी कि जिनेन्द्र भगवान् ने जो बतलाया है वह अन्यथा नहीं हो सकता है। पद्मपुराण में उसने कुम्भकरण के बारे में जो पढ़ा था, उस पर श्रद्धा होने से ये सब लौकिक कल्पनाएँ स्वतः निर्मूल हो गई थीं। वह गुरुवर के चरणों में मिथ्यामत की श्रद्धा, आस्था का त्याग कर चुकी थी, इसलिए उसकी पूर्व की धारणाएँ टूट चुकी थीं। उसे तो प्रतिपल सिद्धक्षेत्र की वन्दना की सुखद अनुभूतियाँ आनन्द दे रही थी। आगम में कहा है कि जिनबिम्ब दर्शन से सत्ता में पड़े हुए निधत्ति-निकाचित जो अत्यन्त हठीले कर्म हैं, वे भी चकनाचूर हो जाते हैं। दीदी इस महिमावन्त जिनबिम्बों तथा चूलगिरि पर विराजमान युगल सिद्ध भगवान् के चरणों की वन्दना करके बड़ी प्रसन्न थी। वहाँ जो भी गुरुवर के दर्शन करने आते उनके सामने अपनी खुशियाँ व्यक्त करती हुई, उन्हें भी वन्दना करने की प्रेरणा देती थी।



इसी पावन वसुन्धरा पर श्री रत्नमाला जी की आत्मा में दीक्षा लेने के लिए विशेष तड़पन उत्पन्न होने लगी थी। वे दीक्षा मिल जावे इसके लिए भगवान् के चरणों में प्रार्थना करते हुए विशुद्धि बढ़ाने लगीं।

एक दिन उन्होंने गुरुवर के चरणों में अपनी भावनाएँ रखी और

इसकी पुष्टि दीदी एवं ब्रह्मचारिणी बहन कंचनदीदी ने की, क्योंकि इनको भी जल्दी से जल्दी दीक्षा लेनी थी, इसलिए उन्होंने दीक्षा की भावना को प्रोत्साहन देकर मानो अपना मार्ग ही प्रशस्त किया था। पुण्य योग से गुरुवर के भाव भी श्री रत्नमाला जी को दीक्षा देने के हो गए थे। महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की परम्परा में यह सर्वप्रथम आर्यिका दीक्षा होने वाली थी। आचार्य दादा गुरुवर ने आर्यिका दीक्षा नहीं दी थी और उनके उत्तराधिकारी आचार्यवर्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने भी आर्यिका दीक्षा नहीं दी थी। यद्यपि आपके श्री करकमलों से मुनि, क्षुल्लक, ऐलक आदि दीक्षाएँ तो सम्पन्न हुई थीं, पर अभी तक आर्यिका दीक्षा नहीं हुई थी। इस परम पूज्य क्षेत्र पर यह मांगलिक कार्य सम्पन्न होने वाला है, इसकी खबर गुरु-भक्तों तथा श्री रत्नमाला जी के पीहर-ससुराल के सभी रिश्तेदारों के पास तक पहुँच चुकी थीं। दीक्षा का मुहूर्त भी निकल गया था। उस समय उनकी दीक्षा देखने के लिए बहुत तादाद में जनमानस और साथ ही श्री रत्नमाला जी के परिचितजन, बंधु-बंधव भी बहुलता में आए थे, कारण कि उस समय “एक पंथ दो काज सिद्ध हो रहे थे” एक तो सिद्धक्षेत्र की वन्दना दूसरा गुरु-दर्शन और जैनेश्वरी दीक्षा देखने का सौभाग्य।

इसी अवसर पर श्री रत्नमाला जी की सबसे छोटी बेटी सुश्री सरला जी ने भी संयम धारण की भावना से संघ में, गुरु-चरणों में रहने का भाव बनाकर गुरुवर से प्रार्थना की थी। जैसे ही उसकी भावना उसके बड़े भाई महावीर जी को ज्ञात हुई तो उनका क्रोध सातवें आसमान को छूने लगा। उन्होंने साम-दाम-दण्ड-भेद से अपनी लाड़ली बहन को घर ले जाने की कोशिश की, किन्तु सरला ने उनकी एक बात न सुनी और न ही मानी। अन्ततोगत्वा उन्हें अपने आपको काबू में रखकर बहन को गुरु-चरण में छोड़कर जाना पड़ा। यह पूरी की पूरी प्रेरणा चुपचाप कुसुम दीदी की थी। दीदी ने सरला जी के रग-रग में संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति का भाव भर दिया था, इसलिए ही सरला के मन में आत्म-कल्याण का विचार पुष्ट हो गया था और उसकी चेतना गुरुवर के चरणों में समर्पित होने के लिए लालायित हो गई थी। दीदी का सम्बल मिल जाने से उसका मन बाह्य

वातावरण से प्रभावित नहीं हुआ था। दीदी जानती थी कि घर के कारागृह में से निकलना कितना कठिन है और शादी के बाद तो व्यक्ति की क्या और कैसी हालत होती है ? उसका निर्वाह करने के लिए उसे कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और पल्ले में कुछ नहीं आता मात्र पाप का अर्जन जिसका फल उसे एक-अकेले स्वयं को ही भोगना पड़ता है। पत्नी, पुत्र, पुत्री आदि परिवारजन के लिए धनार्जन करके जब तक पूर्ति करते रहो तब तक आगे-पीछे घूमते रहते हैं एवं जिस दिन उनके भोग सामग्री की पूर्ति नहीं कर पाए तो वे सब तत्क्षण छोड़छाड़ कर कहाँ भाग जाते हैं, कह नहीं सकते। जैसे गन्ने, रस निकल जाने पर सड़क पर फेंक दिए जाते हैं अथवा वृक्ष के पत्ते-फूल आदि समाप्त होने पर उसके आश्रित रहने वाले पशु-पक्षी आदि उसको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, ये सब उसने अपनी दीदी-जीजा जी, भैया-भाभी और अड़ोस-पड़ोस वालों के जीवन को देख-देखकर समझ लिया था, इसलिए वह चाहती थी कि संसार के सभी प्राणी इस घर जंजाल को छोड़कर मोक्षमार्ग पर चलें, सन्मार्ग पर बढ़ें, जैनधर्म को अपनावें ताकि उनके दुखों का अंत हो जावे। अब संघ में एक और ब्रह्मचारिणी बहन बढ़ गई थी अथवा यो समझो कि कुसुम दीदी को एक सहेली ही मिल गई थी। श्री रत्नमाला जी की दीक्षा होने के बाद उनका नाम आर्यिका १०५ विपुलमति जी रखा गया। अब दीदी के ऊपर एक माँ जगज्जननी का साया हो गया था। साथ ही उसे हम उम्र एक आचार-विचार वाली बहन भी मिल गई थीं। दोनों ही सुरीली आवाज में भजन गाकर उन्हीं पंक्तियों पर प्रवचन किया करती थीं। दोनों की आवाज एक-दूसरे से अच्छी थी और दोनों की यशस्कीर्ति समान थी। अथवा समानधर्मी होने से उनकी यशस्कीर्ति भी वृद्धिगत होती जा रही थी।

दिन में पूज्य गुरुवर अपनी सहज-सरल भाषा में अन्तरंग विशुद्धि से उद्घाटित भावों से धर्मोपदेश करते थे तो रात्रि में ब्रह्मचारिणी बहनें पण्डित भूधरदास जी, पण्डित मक्खनलाल जी, भैया भगवतीलाल जी आदि पण्डितों द्वारा रचित भक्तिपूर्ण वैराग्यप्रद भजनों की पंक्तियाँ गाकर उनके अर्थ और भाव को स्पष्ट करते हुए सभी श्रावकों के हृदय में सच्चे



देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आस्था और पापों से भय उत्पन्न करके अर्थात् भक्ति-वैराग्य की सरिता प्रवाहित कर देती थी। अपनी क्षमतानुसार सभी को जिनागम के और जिनधर्म के उत्तम-उत्तम संस्कारों से संस्कारित करती रहती थीं। आर्यिका विपुलमति जी भी अपनी कोमल देह से कठोर व्रतों का पालन करते हुए प्रसन्नवदना कुसुमदीदी को भी मोक्षमार्ग पर बढ़ने के लिए उत्साहित करती थी। ब्र. बहनें व आर्यिकाश्री का पारस्परिक वात्सल्य देखकर लोग दंग रह जाते थे। यद्यपि ब्रह्मचारिणी सरला बहन आर्यिका माँ की पूर्व की पुत्री थी अर्थात् आर्यिका जी ब्र. सरला जी की जन्मदात्री माँ थीं फिर भी उनके व्यवहार से कभी यह समझ में नहीं आता था, कि वे मात्र सरला की माँ थीं अपितु ऐसा लगता था कि तीनों बहनों ने उनकी ही कोख से जन्म लिया हो।

श्री रत्नमाला जी की दीक्षा के उपरांत दीदी की भावना भी विशेष दीक्षा लेने की होती जा रही थी, लेकिन अपना सोचा हुआ कब पूरा हो पाता है और बिना सोचा कब हो जाता है, यह कहा नहीं जा सकता है। दीदी ने अपने कदम आगे बढ़ाते हुए सात प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए थे। पहली दर्शन प्रतिमा जो दीदी के जीवन में कभी की आ चुकी थी अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् के प्रति आस्था तो उनके अन्दर कूट-कूट कर भरी थी। अब तो वह दूसरों को भी सरागी देव-शास्त्र-गुरु की पूजा को छोड़ने की प्रेरणा देने लगी थीं। गुरुवर जब आहार लेने के पहले श्रावकों से सरागी मिथ्या देवों की सेवा, विनय, सम्पर्क आदि करने का त्याग करवाते थे। तब उन्हें समझाने के लिए दीदी का ही नम्बर आता था, क्योंकि चौके में गुरुवर का तो मौन रहता था तब दीदी उन्हें सच्चे देव का स्वरूप स्पष्ट बताते हुए चाहे वे हमारे पूर्वज हों अथवा हमारे कुलदेवता अर्थात् पीढ़ी-दर-पीढ़ी जिनकी मान्यता हमारे घर में चली आ रही हो, जिनको श्रीफल चढ़ाए बिना हमारे घर का कोई भी नया-पुराना कार्य प्रारम्भ नहीं होता है अथवा जिनकी हमने मनौती कर रखी है, उन सबके पास आना-जाना, उनका सम्मान करना, उनको भोग चढ़ाना अर्थात् जब कभी घर में विशेष माल-मिष्ठान्न बने हों या शादी आदि विशेष कार्यक्रमों में विशेष रसोई बनी हो तो उसमें से सबसे पहले

खप्पर आदि पर अंगारे रखकर उनके नाम से भेंट करना, उन्हें नमस्कार करना आदि सभी कुदेव सेवा में आता है। यहाँ तक कि रास्ते में कोई सरागी देव का मंदिर, देव-देवालय आदि मिल जावें तो उनके सम्मान के रूप में गाड़ी का हॉर्न बजाना, गाड़ी की रफ्तार धीमी करना, सिर झुकाना आदि का भी इसमें त्याग होता है। अपने मित्र या परिचितों के साथ भी इनके स्थानों पर अर्थात् सरागी देवी-देवताओं के स्थान पर घूमने जाना पिकनिक मनाना आदि कार्यों में भी पुरुषार्थपूर्वक बचने पर ही यह नियम अच्छी तरह से पल सकता है। इसके साथ भले ही जिनेन्द्र भगवान् के मंदिर में ही क्यों न हो, यदि वस्त्राभूषण वाले कोई देवी-देवता स्थापित किए गए हों तो उन्हें भी चावल चढ़ाना, बैठकर या खड़े-खड़े नमस्कार करना, आरती करना आदि भी इसमें वर्जित ही है। इसी प्रकार अन्य वेषधारी अर्थात् दिगम्बर मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक-ऐलक आदि जिनलिंगी को छोड़कर किसी भी अन्य लिंगी को चाहे वह अपने घर के पिता, पुत्र, माँ, बहन, भाई आदि ही क्यों न हो, उन्हें नमस्करादि करने का निषेध रहता है, इन सब बातों को समझाने का काम अधिकांशतः तो दीदी का ही रहता था। इसलिए दीदी के हृदय में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धा बहुत दृढ़तम बन चुकी थी। अभक्ष्य भोजन का त्याग तो उसने गुरुवर के वचनामृत को सुन-सुनकर ही कर दिया था। उन्होंने लोभ कषाय की मंदता होने से भोगोपभोग की सामग्रियों का भी परिमाण कर लिया था। **भोग**—जो एक बार भोग करके छोड़ दिए जाते हैं, ऐसे भोजन, पानी, गंध आदि पदार्थों में दीदी की ज्यादा रुचि नहीं थी, इसलिए वे आवश्यकतानुसार ही इनका भोग करती थीं। **उपभोग**—स्पर्श करके, सूँघकर, देखकर, सुनकर आदि जिनमें इन्द्रियाँ संतुष्ट होती हैं, उन्हीं पदार्थों का बार-बार उपयोग करना उपभोग है। उन वस्त्र, चादर, चटाई आदि के प्रति भी दीदी का विशेष आकर्षण नहीं बचा था, क्योंकि उनसे व्रत किसी के देखा-देखी या किसी के दवाब से नहीं लिए थे। उसका अपना स्वतंत्र वैराग्य होने से उसको विशेष प्रेरणा देने की आवश्यकता भी नहीं थी। इसलिए उसने कपड़े, पुस्तकों का बस्ता, रूमाल, पेन-पेन्सिल आदि उपभोग की सामग्रियों का परिमाण कर लिया था।

परिमाण के बाहर की वस्तुओं का कोई बहाना बनाकर भी संग्रह करना उसके स्वभाव में नहीं था। क्रीम, पाउडर, सुगंधित तैल, दाँतों को चमकीला बनाने वाले मंजन आदि तथा दर्पण में देखना, आँखों में अंजन लगाना, हाथों में कंगन, अंगूठी, घड़ी, चोटी में क्लिप, बक्कल आदि सामग्रियों का त्याग तो उसने जब पूज्य भव्यसागर जी महाराज से आर्यिका व्रत धारण करने का संकल्प किया था, तभी कर दिया था। रुपये-पैसे रखने की बात तो बहुत दूर उसके छूने का भी उनके एक प्रकार से त्याग ही था, क्योंकि जब कभी किसी चीज की आवश्यकता पड़ती थी तो गुरु-प्रसाद से श्रावक लाकर दे देते थे, इसलिए पैसे की आवश्यकता उनको नहीं लगती थी। वस्तुतः देखा जाए तो गृह त्यागी-व्रती को रुपये-पैसे की आवश्यकता ही कहाँ है ? उनके भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था तो श्रावक कर ही देते हैं, कभी किसी विशेष परिस्थिति में वाहन आदि का प्रयोग करना पड़ जावे तो श्रावक मार्ग शुल्क बनवा ही देते हैं, बीमार होने पर श्रावक आदर-विनय के साथ वात्सल्य से सेवा, वैय्यावृत्य, औषधि आदि करता ही है। दीदी के ऐसे उत्तम विचार होने से ही उनने घर के त्याग के साथ रुपये-पैसे का भी त्याग कर दिया था। इस प्रकार की वैराग्यप्रद प्रवृत्ति होने से दीदी जब से घर छोड़कर आई थी, पुनः कभी लौटकर नहीं गई थी। अब तो जाने की बात ही नहीं थी, क्योंकि अब उसने जीवन भर के लिए घर जाने का त्याग कर दिया था। संघ में रहते हुए उनके पास भोगोपभोग की सामग्री के रूप में मात्र ५ जोड़ी वस्त्र, उन वस्त्रों को रखने के लिए एक पेटी, एक-दो पेन्सिल-पेन, चटाई, रूमाल आदि ही थे। खाने-पीने की सामग्रियाँ रखना तो था ही नहीं। खाने-पीने में भी कभी किसी वस्तु का दो दिन के लिए तो कभी किसी का माह-दो माह, चार माह के लिए त्याग कर देती थी। वे जिस चीज का मौसम नहीं होता, उसका भी मौसम आने तक त्याग कर देती थीं, ताकि इतने दिनों तक उस सम्बन्धी आम्रव से बच सकें। जैसे आम का मौसम चैत्र-वैशाख से लगभग आषाढ़ तक रहता है तो सावन से लेकर फाल्गुन तक आम का त्याग कर देना भी भोगोपभोग परिमाण (देशव्रत) व्रत है। प्रतिदिन संध्या-कालों में सामायिक करती ही थीं। पर अब सामायिक

करने का संकल्प हो जाने से उनसे अनिवार्य रूप से समय पर सामायिक करना शुरू कर दिया था। सामायिक करने से पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा होती है। दीदी का भी कर्मों की निर्जरा करने का लक्ष्य था, इसलिए वह समय पर विधिपूर्वक सामायिक करती थीं। इसी प्रकार चौथी प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण कर लेने से अष्टमी और चतुर्दशी का प्रोषधपूर्वक उपवास करती थीं अर्थात् सप्तमी एवं नवमी और तेरस एवं पूर्णिमा/अमावस्या को एकासन तथा अष्टमी-चौदस को उपवास करती थीं। कभी अन्तराय हो जाए या लगातार विहार हो रहा हो तो जलोपवास अथवा नीरस भोजन करती थीं। आवश्यकता होने पर भी रस का सेवन करना उनके मन को कभी नहीं भाता था। फिर भी इसके साथ ही उन्हें गुरु की आज्ञा तो सर्वोपरि रहती थी। गुरुवर के चरणों में रहने से प्रासुक अर्थात् अग्नि पर गरम करके ही फलादि को ग्रहण करती थीं, लेकिन अब कभी भोजन के अन्त में सौंफ, अजवाइन आदि की आवश्यकता पड़ने पर उन्हें भी प्रासुक किए अर्थात् बँटे हुए या सिके हुए ही ग्रहण करती थीं, यही पाँचवी-सच्चित्त त्याग प्रतिमा का स्वरूप है। प्रासुक फलादि खाने से वे जल्दी पच जाते हैं, क्योंकि उनको अग्नि पर पका लेने से वे हल्के/सुपाच्य बन जाते हैं। फल आदि प्रासुक करके खाने से प्राणि-संयम भले ही नहीं पले इन्द्रिय संयम तो पल ही जाता है, क्योंकि प्रासुक खाने से रसना इन्द्रिय की लोलुपता समाप्त हो जाती है। दीदी पहले कभी किसी की पीड़ा से विह्वल होकर अथवा स्नेहवशात् रात्रि में औषधि, दूध, पानी आदि ग्रहण करने के लिए कह देती थीं, पर अब उनके रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा के व्रत ग्रहण करने से किसी विषम परिस्थिति में भी रात्रि में भोजन, पानी आदि के लिए कहना अथवा दूसरे से कहलवाना या कोई रात्रि में भोजन कर रहा है, उसकी प्रसन्नता व्यक्त करके अनुमोदना करने का भी त्याग हो गया था। इसका पालन दीदी अच्छी तरह से ध्यान रखते हुए करती थीं। ब्रह्मचर्य पालन का संकल्प तो वह बचपन में ही कर चुकी थीं, किन्तु अब ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले लेने से किसी लड़के के लिए लड़की बताना हो या अपने परिचितों के लिए लड़का/लड़की ढूँढ़ने, बताने का भी त्याग कर दिया था। इस प्रकार सात प्रतिमाओं के व्रत धारण करके

दीदी ब्रह्मचारिणी बन गई थीं इन प्रतिमाओं के साथ ही उन्होंने शाम को फल, दूध, पानी आदि लेने का भी विशेष परिस्थितियों को छोड़कर त्याग कर दिया था।

□

इस वि. सं. २०३५ (१९७८) वर्ष का वर्षायोग पूज्य गुरुवर के साथ दीदी का भी कूकनवाली में हुआ था।

वर्षायोग की स्थापना के पहले ही आषाढ़ माह का अष्टाह्निक पर्व आया, उसमें दीदी ने रसना इन्द्रिय को वश में करने के लिए आठ दिन तक नमक खाने का त्याग कर दिया। वैसे भोजन में सबसे कम मात्रा में नमक खाया जाता है, लेकिन उसके बिना एक ग्रास भी गले से नीचे नहीं उतरता है, इसलिए संसार में नमक का त्याग बहुत कठिन माना जाता है। जब कभी श्रावक रविवार के व्रत में बिना नमक का भोजन करते हैं तो हलुवा, मीठी लौंजी, खीर, आम, केला आदि अनेक प्रकार की व्यवस्था बनाते हैं। फिर भी पेट भर भोजन नहीं होता है अर्थात् भोजन से संतुष्टि नहीं होती है और दूसरे दिन प्रातःकाल तो ऐसा लगने लगता है, मानो २-४ दिन के उपवास किए हों, ऐसे भोजन के राजा नमक को भी साधु संत एक-दो दिन के लिए नहीं अपितु जीवन भर के लिए त्याग कर देते हैं और नमक के साथ जो शक्कर-गुड़ आदि मीठे का भी त्याग कर देते हैं, उनकी महिमा गाने के लिए तो यह जड़ लेखनी असमर्थ ही है। इतना बड़ा त्याग दिगम्बर साधु ही कर सकते हैं। दीदी ने भी कई बार सुना था, कि पूज्य दादागुरु के प्रथम शिष्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने जो अभी २५-३० वर्ष के होंगे भोजन में न नमक लेते हैं और न ही मीठा लेते हैं, इस बात से वह विस्मित भी थीं और उनके समान वह भी त्याग करने के लिए उत्साहित थीं, इसलिए उसने इस अष्टाह्निक पर्व में पहली बार आठ दिन के लिए नमक का त्याग किया था। भोजन करते समय नमक के बिना अतृप्ति की अनुभूति होने के बाद भी वे खुश थीं, क्योंकि रसना इन्द्रिय को जीते बिना व्रत अधूरे ही होते हैं, इन दिनों में दीदी को केवल मीठा मिलता था, वह भी बिना घी और बिना दूध वाला क्योंकि गुरुवर दूध, दही और घी लेते नहीं थे, इसलिए दीदी

को भी नहीं मिल पाता था। दीदी के आठ दिन बिना नमक के पूरे हो गए। श्रावण की प्रतिपदा भगवान् महावीर स्वामी की दिव्यदेशना का प्रथम दिन आया, उस दिन जब दीदी भोजन करने बैठी तो किसी परिचित श्राविका ने कहा भाजी/सब्जी आदि में नमक मत डालना दीदी को नमक का त्याग है, दो-तीन दिन पहले मेरे घर पर दीदी भोजन करने आई थी तो नमक नहीं लिया था, आज दीदी को नियम पूरा हो जाने के बाद भी नमक नहीं मिला। इसी प्रकार प्रतिदिन दीदी के भोजन के समय किसी-न-किसी से दीदी के नमक त्याग की सूचना मिल जाती, जिससे दीदी को बिना नमक का ही भोजन मिलता। लगभग एक-डेढ़ महीना निकल गया, दीदी को बिना नमक का भोजन करते-करते, लेकिन दीदी ने कभी भी नहीं कहा, कि मेरे तो आठ दिन का ही नमक का त्याग था, अब मेरा त्याग नहीं है और न ही संघस्थ कंचन दीदी, सरला दीदी और आर्यिका माता जी के सामने ही चर्चा की कि मुझे इतने दिनों से भोजन में नमक नहीं मिल रहा है, इसलिए मेरे सिर में दर्द हो रहा है या मुझे घबराहट हो रही है। धन्य हो दीदी आपको, जो आप अपने आदर्श गुरुओं के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए शरीर और आत्मा की भिन्नता का प्रयोग करके देख रही थी। अन्यथा आप और हमारे जैसे कोई होते तो किसी न किसी बहाने नमक की चर्चा कर ही देते, लेकिन “पूत के पग पालने में” दिखते हैं। इस कहावत के अनुसार दीदी भी ब्रह्मचारिणी अवस्था में भी गुरुओं की प्रेरणा पाकर इतनी बड़ी-बड़ी कठिन साधनाएँ कर लेती थीं, तभी तो वे आर्यिका बनकर एक तपस्विनी आर्यिका के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

दीदी आर्यिका माता जी की साधना में अनुकूल बनती हुई आर्यिका बनने की भावना बना रही थी। वह प्रतिदिन आर्यिका बनने की भावना बनाती थी। वह प्रतिपल आर्यिका बनने के सपने सँजो रही थीं, तभी कर्म रूपी राजा ने उनकी परीक्षा लेना शुरू कर दिया, कभी एक दिन के बाद भोजन मिलता तो कभी तीन-चार दिन तक भी पूरा भोजन नहीं मिलता और कभी तो कर्मरूपी राजा आठ-आठ दिन तक भी दीदी को भोजन नहीं करने देता। कभी भोजन पूरा हो जाता तो वह पानी के बिना २४ घंटे तक

पेट में उथल-पुथल मचाता रहता तो कभी आधा भोजन होते-होते ही अन्तराय आ जाने से ऊनोदर जैसा हो जाता, किन्तु ऊनोदर तप से होने वाली संतुष्टि नहीं होती, हाँ कर्मों की निर्जरा तो इसमें भी हो जाती है। ऊनोदर तप में तो पूरा भोजन नहीं करने का ही विकल्प रहता है, यहाँ तो पूरा भोजन करने की भावना है उदरपुरी में आग भी पर्याप्त लगी है, जो आधे भोजन से बुझ नहीं सकती, फिर भी अन्तराय कर्म का प्रबल उदय आ जाने से भोजन छोड़ना पड़ता है। अतः ऊनोदर तप और अन्तराय में आकाश-पाताल का अन्तर कहा गया है। इतने अन्तराय आने के बाद भी दीदी के आवश्यकों में अर्थात् सामायिक, स्वाध्यायादि धर्मध्यान के कार्यों में कोई कमी नहीं आ रही थी। उनकी साधना-समता देखकर ही लोग उन्हें भावी आर्यिका के रूप में देखने लगे थे। चर्या आर्यिकाओं जैसी होने के बाद भी दीक्षा नहीं हुई थी, इसलिए दीदी स्वयं कुँए से पानी खींचकर प्रासुक करके अपने वस्त्रों को धोना, नहाना आदि आवश्यक कार्यों में अपनी शक्ति का उपयोग करती थीं। कभी कोई श्रावक कहता कि दीदी आप कमजोर हैं, अन्तराय भी आ रहे हैं आपके लिए पानी मैं खींच देता हूँ, कभी कोई भाभी कहती दीदी आपके वस्त्र आपकी नियमावली के अनुसार कुँए के पानी से मैं धो दूँगी, आप कपड़े मुझे दे दीजिए। तब दीदी कहती भाभी! अपने हाथों से काम करने में हिंसा कम होती है और दूसरे असंयमी जनों से काम करवाने में हिंसा ज्यादा होती है क्योंकि उसके पास विवेक नहीं रहता है, उसके अंदर दया का स्रोत नहीं होता है, मेरे वस्त्र आप या आपकी माँ, बेटी, बहन आदि कोई धोएँगी तो वे ३-४ बाल्टी पानी लगाएँगी और मैं धोऊँगी तो एक बाल्टी पानी ही पर्याप्त होगा। दूसरे आप लोगों के कपड़े धोने का पूरा पानी नाली में जाएगा, नाली से बहता हुआ समुद्र तक पहुँचेगा, उसमें कितने सारे जीवों की हिंसा होगी। उन सबके पाप का अंश मुझे भी मिलेगा। मैं धोऊँगी तो पानी कम होने से कच्चे स्थान में फैला दूँगी, वह वहीं सूख जाएगा, जिससे एक भी जीव की हिंसा नहीं होगी। तीसरी बात आप पानी छानने के पहले आधी बाल्टी पानी से तो घड़ा ही धोएँगे, वह यदि बिना छने पानी से धो लिया तो दस-बार छने पानी से धोने के बाद

भी उसमें छाना गया तो पानी अनछना ही रहेगा, क्योंकि उसमें बिना छने पानी का अंश समाप्त नहीं होगा आदि-आदि कितने सारे नुकसान आप लोगों से काम करवाने में होंगे। मैं इतने पापात्मक कार्य नहीं कर सकती। इस प्रकार विधिपूर्वक समझाकर श्रावकों के विकल्प भी शांत कर देतीं और उन्हें धर्म करने की कला भी बता देती थीं।



दीदी को विश्वास था कि अब मेरी दीक्षा शीघ्र ही हो जाएगी क्योंकि संघ में आर्यिका विपुलमति जी का सम्बल और छत्र-छाया है, इसलिए उसे आर्यिका बनने में कोई परेशानी नहीं है, किन्तु किस्मत कब करवट पलट ले, कहा नहीं जा सकता है। हमें तो तब समझ में आता है, जब वह करवट पलट लेती है। जब पाप कर्म का उदय आता है, तब बाह्य अनुकूल सामग्रियाँ भी प्रतिकूल सामग्री के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। दीदी का पुरुषार्थ सही दिशा में चल रहा था, बाह्य में साधना भी सबको समझ में आ रही थी तो अंतरंग में उनकी विशुद्धि में भी वृद्धि हो रही थी, तभी अचानक आर्यिका जी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उन्हें अतिसार की परेशानी होने लगी। बार-बार शौच की बाधा हो रही थी। उनके पूर्व में हुए अल्सर रोग ने जोर पकड़ लिया था। अनुकूल औषधि चलाने के बाद भी बीमारी बढ़ती ही जा रही थी। स्वास्थ्य लाभ के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। दीदी दिन-रात उनकी सेवा में जुट गई, वह उनकी धर्माधना तथा शारीरिक स्वास्थ्य में सहयोगी बनने का प्रयास कर रही थी। आर्यिका माँ को शौच ले जाना, कभी कपड़ों में ही शौच हो जाती तो उसको साफ करते समय बदबू आने पर भी ग्लानि नहीं करना उनके स्वभाव में आ गया था। कभी-कभी तो पूरी रात जागते-जागते ही निकल जाती थी, तो भी दीदी की आँखें बन्द नहीं होती थी। आर्यिका माता जी को पाठ सुनाना, धैर्य बँधाना उनके समय पर आवश्यक करवाना आदि कार्यों में दीदी सावधान तथा सक्रिय रहती थीं। यही साधर्मी वात्सल्य सम्यग्दृष्टि का चिह्न/अंग है। पूरे दिन माता जी की वैयावृत्य करने में उनका पढ़ना-लिखना, स्वाध्याय आदि सब बंद-सा हो गया था, फिर भी उनके चेहरे पर प्रसन्नता थी, उनके



मन में कभी सेवा से ऊब नहीं आयी थी। आहार के समय भी औषधि आदि का ध्यान रखना, बीमार की रुचि देखते हुए आहार करवाना आदि कार्यों को करना दीदी अपना कर्तव्य ही नहीं अपना सौभाग्य भी समझ रही थी। बाह्य में प्रतिकूलता नहीं होने पर भी अर्थात् सभी प्रकार की अनुकूलता होने पर भी अंतरंग कारण भाग्य यदि साथ नहीं दे तो बाह्य सामग्रियाँ कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकती हैं, क्योंकि अन्तरंग-बहिरंग दोनों कारणों की समग्रता मिलने पर ही इष्ट कार्य की सिद्धि होती है। आर्यिका माताजी का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता ही जा रहा था, शरीर क्षीण होता जा रहा था श्रावकों को भी अनुभव में आने लगा था, कि माता जी ४-८ दिन से ज्यादा नहीं निकाल पाएगी। दीदी माता जी को तीनों समय गुरु-चरणों में ले जाती थी, उनसे सम्बोधन सुनकर माता जी के भावों में विशुद्धि बढ़ती थी। गुरुवर भी उनकी शारीरिक-क्षीणता देखते हुए समाधि के लिए प्रेरणा देते थे। उन्हें शरीर और आत्मा की भिन्नता बताते हुए बारह-भावनाओं का स्वरूप बताकर शरीर से ममता छोड़कर आत्म-साधना करने को कहते थे, उनकी प्रत्येक श्वास में सावधान रहते हुए अपना मरण सुधारने की भावना बनाते थे। आत्मा अलग है, शरीर अलग है, यह शरीर निश्चित रूप से छूटने वाला है, हमें इसके छूटने के पहले ही इससे राग छोड़कर मृत्युराज का वरण करना है। माता जी भी गुरु-वचनों को अपनी स्मृति-पटल पर अंकित करती हुई हमेशा सावधान रहती थीं। समय-समय पर दीदी भी गुरुवर के वचनामृत को याद दिलाकर उनके मृत्यु के भय को कम करती थीं। उनका आत्म-बल जागृत हो रहा था, वे मृत्यु का वरण करने के लिए अपने आपको तैयार कर रही थी। आखिर बीमारी ने उन्हें एक दिन मृत्यु की गोद में सुला ही दिया अर्थात् मंदसौर की पावन धर्म-धरा पर आर्यिका माता जी (विपुलमति जी) अपने नश्वर शरीर को छोड़कर चली गईं।

आर्यिका माता जी के जाने से दीदी को तो ऐसा लगने लगा मानो संसार में अब कुछ बचा ही नहीं है, क्योंकि उनके २४ घण्टों में से २० घण्टे माता जी के साथ ही व्यतीत होते थे। मुश्किल से २-४ घण्टे गुरु-चरणों में रहने को मिलता था। दीदी की आँखों से अश्रुधारा बहती रहती थी। जितना

दुख उसे आर्यिका माता जी के वियोग का था, उससे कई गुना अधिक दुख अपनी दीक्षा नहीं होने का था अर्थात् आर्यिका माता जी के चले जाने से उसकी दीक्षा अब कब होगी, कोई भरोसा नहीं था। उसे अपनी किस्मत पर गुस्सा आ रहा था, उसे लगता था कि मेरा भाग्य कितना खराब है, कि दीक्षा का समय निकट आने ही वाला था, कि माता जी असमय में ही चली गईं, मानो किस्मत ने माता जी के बहाने मेरी दीक्षा के अवसर को ही छीन लिया। माता जी की समाधि नहीं होती तो निश्चित रूप से कुछ ही दिनों में मेरी दीक्षा हो ही जाती, लेकिन अब तो मैं अकेली हूँ, गुरुवर मुझे दीक्षा कैसे दे सकते हैं ? संघस्थ सरला बहन और कंचन बहन का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है, इसलिए वे दोनों ही मेरे साथ या मेरी दीक्षा के कुछ दिनों के बाद ही दीक्षा नहीं ले सकतीं। इस प्रकार अनेकानेक विकल्प तरंगों में उनका समय बीतने लगा। गुरुवर ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया और निरन्तर जिनेन्द्र भगवान् के सामने दीक्षा की भावना भाने की प्रेरणा दी। धीरे-धीरे गुरुकृपा से और उनकी करुणामयी वात्सल्य-पूरित वाणी से दीदी की आन्तरिक वेदना समाप्त होने लगी, उनका मन प्रशस्त होने लगा। मन में उठने वाली विचार तरंगें शांत होने लगी। वास्तव में सम्यग्दृष्टि जीवों के अन्दर कोई भी विकल्प चाहे वह राग रूप हो या द्वेष रूप छह माह से ज्यादा नहीं रह सकता, इसलिए वह सभी विकल्पों को छोड़कर गुरुवर की आज्ञा और आशीष के अनुसार भगवान् के सामने निरन्तर दीक्षा की भावना भाने लगीं।

□

समय बीतता जा रहा था, इस वर्ष का वर्षायोग गुरुवर ने समाज के आग्रह से बड़नगर में किया था। दीदी का पाचनतंत्र बहुत अच्छा नहीं था इसलिए स्वास्थ्य नरम-गरम ही रहता था, लेकिन फिर भी उससे दीदी के किसी आवश्यक कार्य में बाधा उत्पन्न नहीं होती थी। इस बार दीदी का स्वास्थ्य थोड़ा ज्यादा ही गरम हो गया। मियादी बुखार अर्थात् टाइफाइड ने दीदी को बिस्तर में ही पटक दिया। दीदी का खाना-पीना लगभग बंद-सा हो गया। वैद्यों को बुखार उतारने के लिए काफी औषधियों के प्रयोग करने

पर भी सफलता नहीं मिली। बीमारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। शरीर भी बीमारी और भोजन-पानी के बिना कृश होता जा रहा था, फिर भी वैद्य लोग औषधि करने में एकजुट होकर लगे हुए थे। सही दिशा में किए गए पुरुषार्थ के साथ यदि भगवान् की भक्ति और गुरु का आशीष भी मिल जावे तो कार्य की सिद्धि निश्चित रूप से होती है। दीदी को भी तीनों मिल रहे थे, इसलिए भले ही देर लगी किन्तु दीदी आखिर स्वस्थ हो ही गईं। बड़नगर के लोगों में आनन्द की लहर फैल गई। अब पुनः उन्हें दीदी के मनमोहक प्रवचन सुनने को मिलेंगे, इसी आशा से सब प्रसन्न थे। पूर्ववत् पुनः दीदी के संगीत/भजनमय प्रवचन प्रारम्भ हो गए। समाज ने दीदी के प्रवचनों से भी बहुत कुछ सीखा और तीनलोक महामण्डल विधान करवाने का भाव बनाया। समय पर दीदी के नेतृत्व में गुरुवर के आशीर्वाद से विधान सानन्द सम्पन्न हुआ।

दीदी मौत के मुँह से ही मानो निकल आई थीं, यह गुरुवर के आशीर्वाद का ही चमत्कार था और भगवान् की भक्ति का ही फल था अन्यथा चिकित्सकों के अनुसार तो दीदी का बच पाना सम्भव ही नहीं था। दीदी ने गुरु के सम्बोधन रूप औषधि से सभी वेदनाएँ सहन कर ली थीं। उन्हें विश्वास था, कि गुरुवर का आशीर्वाद और कृपा मुझे दीक्षा लिए बिना इस दुर्लभ मनुष्य पर्याय को समाप्त नहीं होने देगी, वास्तव में वे गुरुवर की अनन्य भक्त थीं। यह एक स्त्री-पर्याय का बंधन था, सो उसे गुरुवर से दूर रहना पड़ता था, यदि यह पर्यायगत बंधन नहीं होता तो दीदी गुरुवर से एक पल के लिए भी अलग नहीं रहती। फिर भी उनको जितना समय मिलता था, वे गुरुवर के चरणारविन्द में रहती ही थीं। प्रतिदिन गुरुवर के प्रवचन सुनना, उनके मुखारविन्द से स्वाध्याय का श्रवण करना, उनके आवश्यक ही नहीं अतिआवश्यक कार्यों में सम्मिलित था। भले ही जो बात हमारी शास्त्र में पढ़ी हुई हो और कई लोगों के मुख से सुनी हुई हो, वो ही बात जब गुरुवर संयम और वैराग्य की पुट लगाकर सुनाते हैं, तब वह विशेष फलदायी होती है, जीवन-विकास में पथ-प्रदीप का कार्य करती है। जिस प्रकार वह मिठाई भी माँ के हाथ से परोसी गई विशेष पौष्टिक एवं स्वादिष्ट

होती है, जो मिठाई हम अनेक बार खा चुके हैं, क्योंकि उसमें माँ का ममत्व होता है, उसी प्रकार गुरु के द्वारा दिया गया उपदेश हमारे लिए विशेष आनन्दप्रद होता है।

गुरुमुख से जिनागम को सुनते-सुनते दीदी के जीवन में चारित्र धारण करने की भावना प्रबल होती जा रही थी और जैनधर्म के प्रति श्रद्धा भी मजबूत बन रही थी। साथ ही उनके आचरण में भी परिवर्तन आता जा रहा था, वास्तव में सही श्रोता तो वही है, जिसको गुरु का उपदेश सुनते समय ऐसा लगे, कि गुरुवर मुझे ही लक्ष्य करके उपदेश दे रहे हैं, अतः ये सब बातें मुझे जीवन में चरितार्थ करना है। दीदी भी ऐसे ही श्रोताओं में थी। वह श्वेताम्बर कुल में जन्मी थी, इसलिए दिगम्बर धर्म के मर्म को जल्दी-जल्दी नहीं समझ पाती थी। यद्यपि मंदसौर में दीदी ने पण्डित जी से काफी अध्ययन किया था, पर वह अध्ययन एक गृहस्थ के द्वारा करवाया गया था इसलिए उसमें शाब्दिक-ज्ञान तो हो गया था, परन्तु भावात्मक ज्ञान के लिए तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु की आवश्यकता होती ही है, वह सब समय-समय पर दीदी को गुरुवर के प्रवचनों से प्राप्त होता जा रहा था। गुरुवर अपने उपदेश में मिथ्यात्व छोड़ने पर विशेष जोर देते थे, वे चाहते थे कि सभी जीव सरागी धर्म की आराधना को छोड़कर वीतराग प्रभु की आराधना करें, इसलिए वे कुगुरु-कुदेव आदि की मान्यताओं की निःसारता को दृष्टान्त, आगम, युक्ति आदि से समझाते थे। उनकी आराधना से होने वाली हानि और उनके आराधना करते समय होने वाली मूढ़ताओं को बताकर उन्हें छोड़ने की प्रेरणा देते थे, जिसे सुनकर हजारों लोगों ने मिथ्यादेवों की पूजा को छोड़कर जिनेन्द्र भगवान् की ही आराधना करने का संकल्प लिया था। मेरी भी गुरुवर के प्रवचन सुनकर मिथ्या देवों को नहीं पूजने की धारणा को संबल मिला था तथा संकल्पपूर्वक उसे छोड़ने का मैंने भी साहस बनाया था। दीदी की भी जिनेन्द्र भगवान् के प्रति श्रद्धा गुरुवर के उपदेश सुनकर दृढ़ बनती जा रही थी। एक दिन गुरुवर ने उपदेश में बताया कि इस संसारी प्राणी को कोई सोने की मोर (मोहर) दे दें तो भी लट नहीं खा सकता लेकिन बोर (बेर) के साथ सहज ही लट खा लेता है, क्योंकि अधिकांश बेरों में लटें

रहती ही हैं और यह भी सत्य है कि बहु प्रतिशत लोग बेर को मुँह से ही तोड़कर खाते हैं। जब तक वे उसे बचे हुए बेर को देखकर खाए हुए बेर में लट आदि जीवों की शंका होती है, तब तक तो मुँह में रखे हुए बेर के साथ उसमें रहने वाली लटें भी चब जाती हैं। गुरुवर का उपदेश सुनते ही दीदी ने वहीं बैठे-बैठे मन ही मन में आजीवन बेर खाने का त्याग कर दिया। यद्यपि वह जब से संघ में आयी थीं, तब से उसने कभी बेर खाए नहीं थे और न बेर खाने की याद ही उन्हें आई थी, लेकिन संकल्पपूर्वक त्याग नहीं किया था, इसलिए उस सम्बन्धी पाप का आम्रव (बंध) हो ही रहा था, आज दीदी ने मात्र बेर का ही नहीं वरन् गुरु की वाणी सुनकर १० लाख वनस्पतियों में से मात्र १०० वनस्पतियों को छोड़कर शेष सबका त्याग कर दिया था। (श्रावक त्याग करते समय यदि इनके नाम लिख ले तो विशेष फल मिलता है।)



जब से आर्थिका माता जी की समाधि हुई थी, तब से दीदी के मन में एक निराशा का भाव उत्पन्न हो गया था, जब माता जी थी तब दीदी के मन में दीक्षा लेने के प्रति विशेष उत्साह का भाव था, पर अब उसे लगता था कि वह दीक्षा लेकर अकेली गुरुवर के साथ रह नहीं सकती और संघ में अभी कोई बहन ऐसी नहीं है, जो मेरे साथ दीक्षा ले ले। उसके निराशा से भरे हतोत्साह रूप भावों को गुरुवर समय-समय पर समझ जाते थे, इसलिए वे दीदी की हताशा मिटाने का उपदेश देते थे और समझाते थे, कि अभी भले संघ में तुम्हारे साथ दीक्षा लेने वाला कोई नहीं है इसका अर्थ यह नहीं कि भविष्य में भी तुम्हारे साथ दीक्षा लेने वाला संघ में नहीं आवेगा क्या तुम ऐसी कल्पना करती हो, नहीं-नहीं ऐसा कुछ नहीं है, भगवान् की भक्ति और उनके चरणों में भायी गई भावनाओं से पूर्वोपार्जित पाप ढीले पड़ जाते हैं और पूर्व में बंधा हुआ पुण्य गाढ़ा होता जाता है, जिससे बिगड़े हुए कार्य भी सुलट जाते हैं। दीदी गुरुवर की बात को आदेश समझ कर कभी भगवान् की भक्ति करके तो कभी पूजा-विधान करके, कभी मंत्र-जाप करके तो कभी पाठ-कीर्तन आदि करके अपने पापों को हल्का करने

का पुरुषार्थ करने लगी। उसे विश्वास था कि भगवान् की भक्ति और गुरुवर के आशीर्वाद से निश्चित संघ में कोई दीक्षा लेने वाली भव्यात्मा शीघ्र ही आएगी। जो मेरे साथ दीक्षा लेकर मेरे पथ में सहयोगी बनेगी। मानो दीदी की भावना ही फलित होने वाली थी, इसलिए इस वर्ष का चातुर्मास जो कि नीमच नगर में होना लगभग निश्चित हो चुका था, लेकिन पता नहीं दीदी के भाग्य ने रंग दिखाया जिससे गुरुवर के भाव हुए कि इस बार भाग्य को अजमाना चाहिए। इसके लिए उन्होंने सामायिक के उपरांत सोचा कि आज जिस गाँव वाले सबसे पहले विहार (वर्षायोग) के लिए श्रीफल भेंट करेंगे, उसी गाँव में वर्षायोग के लिए विहार होगा। आश्चर्य की बात थी कि आज नीमच वालों से ५-७ मिनट पहले ही भीण्डर वालों ने पहुँच कर गुरुवर के चरणों में श्रीफल भेंट किए। यद्यपि नीमच से २५-३० श्रावक आए थे और भीण्डर (उदयपुर) से २-३ श्रावक मात्र श्रीफल भेंट करने आए थे। वे गुरुवर की चर्या आदि से परिचित भी नहीं थे।

उनकी मान्यता एवं गुरुवर की मान्यता भी भिन्न-भिन्न थी अर्थात् गुरुवर शुद्ध (तेरहपंथी) आमनाय वाले थे और भीण्डर की समाज बीसपंथी आमनाय वाली थी, इसलिए उनको गुरुवर के प्रति विशेष आकर्षण नहीं था, लेकिन उन्होंने कभी एक बार दीदी का प्रवचन तथा भजन सुना था उनकी भजन और प्रवचन की कला से वे प्रभावित थे, उनको सुनने के लिए ही वे गुरुवर का वर्षायोग करवाने की भावना से श्रीफल भेंट करने आए थे। उन सभी के कानों में दीदी की मीठी-मधुर स्वर लहरी में गायी गई जिनस्तुति तथा जिनवाणी के शब्द गूँज रहे थे। भजन की दो-चार पंक्तियों को आधार बनाकर उनके द्वारा किए गए प्रेरणास्पद प्रवचन उन्हें पुनः-पुनः दीदी के प्रवचन सुनने को प्रेरित कर रहे थे, इसलिए वे गुरुवर का समागम पाना चाहते थे। उनका पुण्य प्रबल होने से ही वे गुरुवर के चरणों में पहले पहुँचे थे। कहा भी है—“कभी का किया हुआ अभी उदय में आता है और अभी का किया हुआ भविष्य में कभी अवश्य फलता है।” उनका भी कभी का किया हुआ सुकृत अभी इस वर्ष फलित होने वाला था, इसलिए उनके यहाँ गुरुवर का वर्षायोग हुआ। उनकी भावनाओं के अनुसार उन्हें रात्रिकाल

में ब्रह्मचारिणी कुसुम दीदी के साथ-साथ ब्रह्मचारिणी सरला दीदी तथा ब्र. कंचन दीदी के भी मीठी सीधी सरल भाषा में भजन और प्रवचन मिलने वाले थे। समय पर वर्षायोग की स्थापना हुई और दीदी के भजन प्रवचन से भीण्डर की समाज तृप्त होने लगी। उसी समय सावन का महीना होने से विद्युत (बिजली) के प्रकाश में कीड़े गिरना शुरू हो गए। दीदी अहिंसा धर्म की पक्षधर थी, इसलिए वह विद्युत प्रकाश में प्रवचन कैसे कर सकती थी, धर्म-प्रभावना से ज्यादा मूल्यवान अहिंसा धर्म है। उसने सभी से कह दिया कि मैं अभी विद्युत के प्रकाश में प्रवचन नहीं कर सकती, मात्र छोटे से ढके हुए घृतदीप के प्रकाश में प्रवचन कर सकती हूँ, बाकी कोई लट्टू, लालटेन आदि नहीं जलेंगे। दीदी के भजन और प्रवचन सुनने के लिए उत्साहित श्रावकों ने आगम की आज्ञा के अनुसार आचरण करने वाली दीदी की भावनाओं को सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। उन्होंने शायद जिन्दगी में पहली बार अहिंसा-धर्म को जीवन में उतारते हुए सावन-भादों में जिनवाणी का रसपान किया था। वास्तव में धर्म इसे कहते हैं, यह उन्हें इस वर्षायोग में समझ में आया था।

यहाँ की समाज को जब से आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के द्वितीय पट्टाधीश आचार्य शिवसागर जी महाराज का वर्षायोग मिला, तब से अनेकानेक साधुओं का समागम मिलते रहने से यहाँ की समाज संस्कारित थी, धर्मात्मा थी, इसलिए दशलक्षण, सोलहकारण आदि विशेष पर्वों के समय में समाज के काफी लोग मिलकर सामायिक करते थे। कुछ लोग सामायिक शुरू कर देते थे, फिर बाद में आने वाले श्रावक-श्राविकाएँ अपने-अपने आवर्तादि सामायिक की पूर्व विधि को पूरा करके सामायिक करने में सम्मिलित हो जाते थे। वे सामायिक में आलोचना पाठ, सामायिक पाठ, वैराग्य भावना, बारह भावना आदि का पाठ करते समय दो पंक्तियाँ श्रावक तथा दो पंक्तियाँ श्राविकाएँ पढ़ती थीं। जिससे सामायिक व्यवस्थित ढंग से चलती रहती थी। ध्यान के रूप में णमोकार मंत्र की एक माला भी सामायिक के बीच में होती थी। उनकी सामायिक दिन में अर्थात् प्रकाश रहते-रहते ही पूरी हो जाती थी, जिससे उन्हें विद्युत आदि के कृत्रिम प्रकाश

की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। सामायिक करते समय पाँच पापों का तथा सभी प्रकार के आरम्भों का निषेध किया गया है, यह नियम दिन में ही सामायिक पूरी कर देने से सहज ही निभ जाता था। कई लोग जिनके पंचमेरु, दशलक्षण, सोलहकारण, रत्नत्रय आदि के व्रत रहते थे, वे तीनों संध्याओं में सामायिक का अनुष्ठान करते थे। इनकी यह सामायिक की विधि दीदी को बहुत अच्छी लगी, उसने विशेष रूप से उनकी सामायिक को देखकर पूरी विधि सीख ली। वास्तव में समझदार तो वो ही है जिसकी दृष्टि गुणग्राही है। दीदी भी गुणग्राही थी, उसके विचार थे कि सामने वाला छोटा हो या बड़ा, धर्मी हो या विधर्मी, बालक हो या वृद्ध यदि उसमें कोई गुण है तो उसे अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिए। सोने को कीचड़ में पड़ा हुआ देखकर छोड़ा नहीं जाता है अर्थात् समझदार व्यक्ति कीचड़ में से भी सोने को ग्रहण करते ही हैं। दीदी ने भी यह सामायिक की विधि सीखी ही नहीं थी, वे प्रतिवर्ष वर्षायोग में इस प्रकार की सामायिक करने की प्रेरणा देने लगी थी। यही परम्परा अभी भी हमारे यहाँ चल रही है। इसके माध्यम से श्रावक एक-डेढ़ घंटे धर्मध्यान करते हुए समय का सदुपयोग कर लेते हैं।

दीदी को धर्म-प्रभावना के माध्यम से अनेक प्रकार से यश/प्रशंसा मिलने पर भी उसकी आत्मा आर्यिका बनने के लिए तड़पती रहती थी। इसलिए बाह्य में धर्म-प्रभावना करने के बाद भी वह भगवद्-भक्ति को नहीं भूली थी। वे प्रतिदिन भगवान् से दीक्षा हो जाने की प्रार्थना करती रहती थी। वास्तव में मानव-जीवन प्राप्त करके यदि जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार नहीं की तो मनुष्य बनना और नहीं बनना एक ही जैसा हो गया। उसे जब कभी जो कोई लड़की या विवाहिता स्त्री दिखती तो वह सोचने लगती कि यदि ये हमारे संघ में आ जावे और दीक्षा लेने की भावना रखे तो मेरी भी दीक्षा जल्दी हो जावे। मात्र दीक्षा लेने वाले साथी के नहीं होने से ही तो मेरी दीक्षा रुकी हुई है। कब किसके जीवन में किस निमित्त से वैराग्य आ जाएगा, कहा नहीं जा सकता है। भीण्डर समाज और गुरुवर के बीच भले ही पंथ-भेद था, फिर भी लोग प्रवचन सुनने अवश्य आते थे। प्रातःकाल पूज्य गुरुवर



के प्रवचन होते थे और रात्रि में दीदियों का उपदेश होता था। रात्रि में लोग विशेष निवृत्त रहते हैं और भजन कर्ण इन्द्रिय को पुष्ट करने वाले होते हैं। दीदी के प्रवचनों में श्रावकों को दोनों ही अनुकूलताएँ मिल जाने से रात्रि में श्रावक-श्राविकाएँ काफी मात्रा में प्रवचन सुनने आ जाते थे। दीदी गुरुभक्त थी, उसे ख्याति-पूजा-लाभ की वाँछा भी नहीं थी, इसलिए वह सभी को पूज्य गुरुवर के चरणों से जोड़ देती थी। वर्षायोग में प्रभावना की जितनी आशा थी, उससे कई गुनी प्रभावना हो रही थी। पूज्य गुरुवर के प्रवचन सुनने एक बहुरानी भी प्रतिदिन आया करती थी, जो पहले से ही थोड़ी संसार-शरीर-भोगों से विरक्त थी। जब उसने गुरुवर के प्रवचन में मिथ्यात्व के बारे में सुना कि हमारे घर में कुदेव की पूजा किस प्रकार से शुरू हो जाती है ? कैसे रूढ़िगत परम्परा से यह मूर्ख जीव कुदेवों को पूजने लग जाता है और उसी का अनुसरण करते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी पूजा करता ही रहता है। इन सब बातों को गुरुवर ने जब दृष्टान्तों, युक्तियों और कथाओं के माध्यम से समझाया तो उसने भी मन ही मन में कुदेव, कुलदेवता आदि के यहाँ जाने का त्याग कर दिया था। दीदी के मुख से वैराग्य भरे आध्यात्मिक भजनों को सुनकर उसका वैराग्य बढ़ता जा रहा था, वह घर छोड़ने का विचार बनाने लगी थी।



शाश्वत पर्व सोलहकारण प्रारम्भ हो चुके थे, इसी भाद्र माह के शुक्लपक्ष में दशलक्षण महापर्व प्रारम्भ होने वाले थे, इसके पूर्व दिनों में अर्थात् भाद्रपद के कृष्ण पक्ष में समाज ने पूज्य गुरुवर की कृपा एवं आशीर्वाद से तीनलोक मण्डल विधान का आयोजन किया। यह विधान मेरे अनुमान से अब तक प्रकाशित विधानों में सबसे बड़ा विधान होगा। इस विधान में पण्डित जी ने तीनलोक में इस जीव ने कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार जन्म लिया है ? उन सब स्थानों पर जन्म लेने के कारणों का छेद करके मोक्ष प्राप्त करने वाले देवाधिदेव भगवन्तों को अर्घ्य चढ़ाए गए हैं। इस विधान को कोई कितना भी जल्दी-जल्दी करे तो भी १०-१२ दिन तो लग ही जाते हैं। यहाँ यह विधान लगभग १५-१७ दिन में होना निश्चित

हुआ था। पूज्य गुरुवर विधान करने वालों को रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग, विधान पूर्ण होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करना, कुँए के पानी से बना हुआ शुद्ध मर्यादित भोजन करना, बाजार की वस्तुओं का त्याग, जमीकंद का त्याग, अँग्रेजी दवाई का त्याग आदि नियम दिलवाते थे। यद्यपि नियमावली कठिन थी, फिर भी कुछ श्रावकों ने तो भाग लिया ही था। दीदी कभी भजन के साथ लय बैठाकर विधान गाती थी, तो कभी बीच-बीच में विधान के छन्दों के अर्थ समझाकर श्रावकों के मन को पूजा में तल्लीन करती थी। एक दिन नरक गति का छेदन कर देने वाले जिनेन्द्र देव को अर्घ्य चढ़ाते समय दीदी ने बताया—पहले नरक के नारकियों की अवगाहना ७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल होती है। दूसरे नरक में इससे दूनी १५ धनुष २ हाथ १२ अंगुल, तीसरे नरक में ३१ धनुष १ हाथ की अवगाहना वाले जीव रहते हैं, इसके आगे सातवें नरक तक भी दूनी-दूनी अवगाहना ही जानना चाहिए। एक दिन भरत, हैमवत आदि क्षेत्रों का तथा हिमवनादि पर्वतों का विस्तार दूना-दूना है अर्थात् भरत क्षेत्र का विस्तार ५२६, ६/१९ योजन, इससे दूना हिमवन पर्वत का १०५२, १२/१९ योजन, इससे दूना हैमवत क्षेत्र का २१०५, ५/१९ योजन इस प्रकार विदेहक्षेत्र तक दूना-दूना करना चाहिए। आगे आधा-आधा विस्तार जानना चाहिए। वह बहुरानी भी जब कभी घर के कार्यों से निवृत्त हो जाती तो विधान सुनने आ जाती थी। उसने जब दीदी के मुख से यह सब सुना तो उसने घर जाकर इनका गणित करना शुरू किया। घण्टों निकल गए पहले नरक की अवगाहना को जब वह दूना करने बैठी तो १४ धनुष ६ हाथ १२ अँगुल आ रहे थे, जबकि दीदी ने दूसरे नरक की अवगाहना १५ धनुष २ हाथ १२ अँगुल बतायी थी। इसके आगे भी दूना-दूना करने पर दीदी के द्वारा बतायी गई अवगाहना से भिन्नता ही समझ में आ रही थी। इसी प्रकार भरतादि क्षेत्र एवं हिमवन आदि पर्वतों का विस्तार निकालने में हो रहा था। जब वह बहुत दिनों तक इसे निकालते-निकालते थक गई, लेकिन सही नहीं आ पाया तो उसने सोचा कल दीदी के पास ही जाकर इनको निकालने की विधि सीख लेना चाहिए। लेकिन उसको दीदी के पास जाने में डर लग रहा था। नये अपरिचित व्यक्ति के पास

जाने में उससे बातचीत करने में किसको डर नहीं लगता, फिर वे त्यागी-ब्रती, साधु-संन्यासी हो तो विशेष ही डर लगता है। उसकी छोटी बहन जिसकी शादी नहीं हुई थी, वह दीदी के पास आती जाती थी। उनके पास बैठती थी, बातचीत भी कर लेती थी, इसलिए उसने उससे दीदी के साथ परिचय करवाने को कहा। वह उसे सहर्ष दीदी के पास ले गई। धर्म और धर्मात्मा की वृद्धि में धर्मात्माओं को आनन्द आता ही है। बहुरानी की शंकाओं का समाधान दीदी ने कर दिया। परिचय हो जाने से अब वह भी दीदी के पास जाने लगी थी। धीरे-धीरे उसका दीदी से सम्पर्क बढ़ने लगा, सम्पर्क बढ़ते-बढ़ते प्रेम और प्रेम के साथ उसका वैराग्य भी बढ़ने लगा। विधान का कार्यक्रम पूरा हो गया और दशलक्षण में की जाने वाली धर्मारोधनाएँ भी पूरी होने वाली थीं। तभी दीदी ने अपने पास आने वाले श्रावक-श्राविकाओं से कहा, अब दशलक्षण के बाद अर्थ सहित तत्त्वार्थसूत्र कौन-कौन पढ़ेगा ? दीदी की बात सुनकर सब मौन रह गए, क्योंकि संसारी जीवों को ज्ञानार्जन के प्रति आकर्षण होता ही कहाँ है ? उसे तो साँस्कृतिक कार्यक्रमों में, गीत-संगीत-भजन आदि सुनने और जहाँ हार-जीत की तथा पुरस्कार की बातें हों, वहाँ आनन्द आता है, क्योंकि वहाँ पञ्चेन्द्रिय के विषयों की पूर्ति होती है, साथ ही जीतने पर सम्मान मिलता है, पुरस्कार मिलता है। जिनागम का अध्ययन करते समय इनमें से कुछ भी नहीं मिलता है, फिर भी ४-५ श्राविकाओं ने तत्त्वार्थसूत्र पढ़ने के लिए तैयार होकर एक प्रकार से समाज की इज्जत बचा ली। इनमें एक वह बहुरानी भी थी, उसे तो ऐसा लग रहा था, मानो निर्धन को खजाना ही मिल गया हो क्योंकि उसे तो बहुत दिनों से तत्त्वार्थसूत्र पढ़ना था, अब उसे वह सुयोग मिलने वाला था। दोपहर में लगभग डेढ़ बजे से कक्षा लगना निश्चित हुआ था। उन चार-पाँच श्राविकाओं में से कभी ३ आती तो कभी ४ आती थीं, पाँचों तो शायद दो-चार बार आई हों, किन्तु बहुरानी का तो समय पर प्रतिदिन पहुँचना निश्चित था। “वास्तव में इस संसारी प्राणी को भोगों की पूर्ति के लिए, सांसारिक व्यवहारों को निभाने के लिए तथा धनार्जन के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है अथवा इनके लिए वह

किसी न किसी प्रकार से समय निकाल लेता है, लेकिन धर्म के लिए वह घर रूपी कारागृह से चाहते हुए भी नहीं निकल पाता है, जबकि इहभव और परभव का साथी तो धर्म ही है।”



लगभग ३०० घर की जैन समाज में से दीदी की कक्षा में आने वाले ३-४ सदस्य थे, फिर भी धन्य हो उस महान् आत्मा को, उनके विशाल/उदार हृदय को कि उसने एक दिन भी ऐसा नहीं सोचा, कि इतनी बड़ी समाज में से ३-४ सदस्यों के लिए क्या कक्षा लगाना अथवा ३-४ श्राविकाओं के लिए मैं एक घण्टा खराब करूँगी। उसकी अपेक्षा तो मैं एक घण्टे में स्वाध्याय करके कितना ज्ञानार्जन कर लूँगी। दीदी का दिल बहुत बड़ा था, उन्हें पता था कि अधिक संख्या होने पर ही पढ़ाने का लाभ अच्छा मिलता है, ज्यादा मिलता है ऐसा कुछ नहीं है, अपितु पढ़ने की रुचि रखने वाले कम लोगों को भी पढ़ाकर ज्यादा फल प्राप्त किया जा सकता है। भगवान् महावीरस्वामी के जीव को शेर की पर्याय में सम्बोधन करने के लिए दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज आए थे। एक धीवर जैसे पापी जीव को भी मुनिराज ने उपदेश दिया था। फिर मुझे तो जैनकुल में उत्पन्न हुई इन भव्यात्माओं को पढ़ाना है, ये भले ही कम हो, रुचि वाली तो हैं ही तब तो इन्होंने कक्षा में आने का भाव बनाया है। यही सोच कर दीदी को इन तीन-चार बहुओं को पढ़ाने में भी आनन्द की अनुभूति होती थी। पढ़ने वाली उन बहुओं को भी नहीं लगता था कि पूरी समाज में से कोई भी पढ़ने नहीं आ रहा है तो हम २-३ लोग कैसे पढ़ने जावें ? दीदी हमारी इतनी-सी संख्या देखकर क्या सोचती होगी और जब यह बात गुरुवर तक पहुँचेगी तो वे समाज के बारे में क्या सोचेंगे, कि वर्षायोग जैसे पावन-काल में भी इतने से लोग पढ़ने आते हैं तो अन्य समय में यहाँ (इस गाँव में) धर्म का क्या हाल होता होगा ? बाहर से गुरुवर के दर्शन करने वाले हम लोगों को देखकर क्या सोचेंगे, इसकी अपेक्षा तो कक्षा नहीं लगे तो ज्यादा अच्छा हो आदि-आदि विचार आने पर भी उन्होंने कक्षा में आना बन्द नहीं किया था। दीदी ने और उन बहुओं ने दुनिया भर के इन सभी विकल्पों को छोड़कर

पढ़ाना, पढ़ना चालू कर दिया था। दीदी कभी पाँच सूत्रों का तो कभी १०-१२ सूत्रों का उच्चारण कराती उनका अर्थ बताती और उन सबसे कंठस्थ करके सुनाने को कहती, जो कंठस्थ कर पाती वे सुना देती और जो कंठस्थ नहीं सुना पाती उनको दीदी प्रोत्साहन देकर याद करने के लिए कहती।

जब पहला अध्याय पूरा हो गया तो दीदी ने कहा—अब तुम लोगों की परीक्षा होगी। सबने दीदी से पढ़कर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उनके नोट्स बनाए, याद किया और परीक्षा की पूरी तैयारी की। दीदी ने गुरुवर से परीक्षा लेने के लिए निवेदन किया। विद्यार्थी को भले ही पूरा विषय याद हो पर परीक्षा के पहले एक बार तो उसके दिल की धड़कन बढ़ ही जाती है। वे तीनों-चारों बहुएँ भी जब गुरुवर के चरणों में परीक्षा देने बैठीं तो उनकी धड़कन बढ़ रही थी। बहिरंग में सबने बहुत तैयारी की, फिर भी याद तो सबको अपने क्षयोपशम के अनुसार ही हुआ था, फिर जहाँ परीक्षा होती है, वहाँ कोई प्रथम कोई द्वितीय श्रेणी तो कोई तृतीय श्रेणी में होगा ही। परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर देने में एक बहू प्रथम आयी थी तो दूसरी द्वितीय श्रेणी में थी। परीक्षा के बाद गुरुवर बोले यह तो पुस्तकीय ज्ञान की परीक्षा हो गई, अब समर्पण की परीक्षा होगी, जो जीवन उत्थान में विशेष योगदान देने वाली है। इससे पंचेन्द्रिय के विषयों की आसक्ति समाप्त होगी और जीवन संयमित होगा। यह इसलिए आवश्यक है कि मात्र ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। ज्ञान के साथ-साथ तदनुसार आचरण होना भी आवश्यक है, अन्यथा वह ज्ञान गधे की पीठ पर लदे हुए शक्कर के बोरे के समान मात्र भार रूप ही होता है। सभी परीक्षार्थी गुरुवर की बात को हाथ जोड़े एकाग्रता से सुन रहे थे। आगे गुरुवर ने कहा—गुरु दक्षिणा के रूप में तुम लोगों को द्विदल का त्याग करना होगा। द्विदल अर्थात् छाछ-दही के साथ चना, मूंग, उड़द, मटर, मसूर आदि जिनकी दाल बनती है, उनको मिलाना द्विदल कहलाता है, इसमें मुँह की लार मिलते ही असंख्यात त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इसी का त्याग करना है, गुरुवर की बात सुनकर सबके मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, क्योंकि सबके घरों में आए दिन छाछ की कढ़ी खाई जाती थी। पकौड़ी का रायता भी बड़ी रुचि से खाया जाता था, इसलिए

इसका त्याग करना सबको कठिन लग रहा था। इसका त्याग करने से घर में लड़ाई-झगड़ा होने की सम्भावना भी थी और रसना इन्द्रिय का भोग छोड़ना बड़ी कठिन बात होती है। इसलिए सभी ने सिर नीचा करके ही मानो नियम नहीं ले पाने का संकेत दिया था, लेकिन उस बहुरानी ने जिसको थोड़ा-थोड़ा वैराग्य था, तत्काल गुरुवर के चरणों में जिन्दगी भर के लिए द्विदल का त्याग कर दिया। गुरुवर ने उसको खूब-खूब आशीर्वाद दिया और उसको परीक्षा में प्रथम स्थान पर उत्तीर्ण होने की घोषणा की। गुरुवर के आशीर्वाद से बहुरानी के मन में एक नया उत्साह बढ़ गया था, उसमें मोक्षमार्ग पर बढ़ने का साहस आ गया था।



समय निकलता गया। दीदी अपने दीक्षा लेने योग्य साथी को ढूँढ़ रही थी। एक दिन उस बहुरानी ने दीदी के सामने घर छोड़कर संघ में रहकर आत्मकल्याण करने की भावना रखी। उसकी भावना सुनते ही दीदी विस्मित-सी उसे देखती रह गई, क्योंकि उसे एक नई बहू घर छोड़कर मोक्षमार्ग में बढ़ने की भावना रखे, यह एक अनहोनी-सी घटना लग रही थी। अच्छी प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करने वाली महिलाएँ भी घर छोड़ने में असमर्थता का अनुभव करती रहती हैं। कई महिलाएँ तो पापोदय से घर में तिरस्कृत होकर जब कभी पति के हाथ की मार खाकर भी वहीं डटी रहती हैं और कई बहुएँ तो बाल्यावस्था या यौवन की देहली पर पैर रखते ही विधवा अथवा त्यक्ता हो जाने पर भी मजदूरी करके पेट भरना स्वीकार कर लेती हैं, लेकिन उनके हृदय में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित नहीं होते। ऐसी संसारी जीवों की दशा है, यह बहू तो सर्व प्रकार से सुखी नजर आती है, फिर क्यों यह घर छोड़ना चाहती है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है, फिर भी इसकी भावना घर के कीचड़ में से निकलने की है तो इसको कुछ प्रोत्साहन तो देना ही चाहिए। यदि इसका पुरुषार्थ सफल हो जाता है और यह संघ में आ जाती है तो मेरी भी दीक्षा बहुत जल्दी हो जाएगी। मुझे इसमें लाभ ही लाभ है। यही सोचकर दीदी ने उसको घर छोड़ने की कुछ युक्तियाँ बतलाई और एक दिन गुरुवर से इस विषय में परिचय करवा करके इसमें

सफलता प्राप्त करने का आशीर्वाद दिलवाया। लगभग ४५ दिन में तत्त्वार्थसूत्र का अध्ययन पूरा हो गया। इधर वर्षायोग का समय भी पूरा हो गया सो गुरुवर का विहार भी होने वाला था, तभी उस बहुरानी ने एक दिन दीदी से पूछा—दीदी गुरुवर का विहार हो जाएगा तो आप भी गुरुवर के साथ चली जाओगी, फिर आपसे मेरा सम्पर्क कैसे हो जाएगा, इसलिए दीदी आप ८-१५ दिन में मुझे एक पत्र डाल दिया करना ताकि मैं कभी आपके पास पहुँच सकूँ। उसकी बात सुनकर दीदी बोली—बहन, ऐसा नहीं हो सकेगा, मैं किसी को भी पत्र नहीं डालती और न ही किसी गृहस्थ से विशेष सम्पर्क ही रखती हूँ। दीदी का उत्तर सुनकर बहू की आँखों में आँसू आ गए वह सोचने लगी यदि दीदी पत्र नहीं डालती है तो मेरे कल्याण का मार्ग कैसे खुल सकता है, क्योंकि मुझे कौन बताएगा कि पूज्य गुरुवर कहाँ विराजमान हैं और बिना जानकारी के मैं उनके चरणों में नहीं पहुँच सकती तथा उनके चरणों में पहुँचे बिना मेरा कल्याण कैसे हो सकता है आदि-आदि अनेक विचार श्रृंखलाएँ उसके दिमाग में घूम रही थीं, फिर भी वह साहस करके बोली—दीदी तो आप ही कोई ऐसा मार्ग बताइए, जिससे मेरा मोक्षमार्ग प्रशस्त हो सके। दीदी उसकी अंतरंग पीड़ा को समझ रही थी और उनकी स्वयं की भी भावना थी कि यह संघ में आ जावे इसलिए वह बोली बहन तुम स्वाध्याय किया करो, उसमें जो शंका आवे अथवा जो प्रकरण समझ में नहीं आवे उसे पत्र में लिखकर मेरे पास भेज दो तो मैं उन शंकाओं का समाधान देने के लिए तुम्हें पत्र लिख सकती हूँ और उसी के माध्यम से तुम मेरे साथ सम्पर्क बनाएँ रख सकती हो। बहुरानी का चेहरा प्रसन्नता से भर गया और उसने उसी दिन से विशेष स्वाध्याय करना शुरू कर दिया।

□

इस वर्षायोग में सर्वाधिक लाभ ब्रह्मचारिणी बहन कुसुम दीदी को ही मिला था, दीदी को स्वाध्याय की विशेष रुचि थी, ज्ञानार्जन की उसमें बहुत ललक थी, लेकिन संसार में ज्ञानार्जन के योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का मिलना दुर्लभ है। यदि योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मिल भी गया तो क्षयोपशम नहीं है तो भी ज्ञानार्जन नहीं हो सकता। हाँ, यह भी सच है

कि योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के मिलने पर ही अंतरंग का क्षयोपशम उद्घाटित हो पाता है, अभी तक दीदी को उत्तम निमित्त नहीं मिला था कि वह सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन करती। गुरुवर वृद्ध थे, उनकी रुचि चरणानुयोग और अध्यात्म में विशेष थी, उनका ध्यान में विशेष मन लगता था इसलिए वे सभी को ध्यान करने की प्रेरणा देते थे और स्वयं भी बहुत ध्यान करते थे, उन्होंने दीदी को भी आध्यात्मिक ग्रन्थों का ही स्वाध्याय करवाया था। भीण्डर में करणानुयोग के मूर्धन्य विद्वान् पण्डित जवाहरलाल जी रहते थे। वे स्वयं भी चाहते थे कि मैं अपना ज्ञान सबको दूँ अर्थात् सभी लोग स्वाध्याय करके ज्ञान की वृद्धि करें। वे गुरु-चरणों में स्वाध्याय करने के लिए आया करते थे। धीरे-धीरे उन्हें दीदी में करणानुयोग ग्रहण करने की योग्यता दिखने लगी तो उन्होंने दीदी को करणानुयोग के जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड आदि ग्रन्थों को पढ़ने की प्रेरणा दी। यद्यपि वे सरकारी नौकरी करते थे और इन्हीं दिनों उनके पिता जी का स्वास्थ्य बिगड़ जाने से उन्हें बाहर उपचार करवाने के लिए जाना पड़ा था, इसलिए वे समय नहीं दे पाए फिर भी जब-जब वे गुरुवर के दर्शन करने आते तो दीदी को स्वाध्याय की प्रेरणा देते और कुछ-कुछ पढ़ने की विधि बता जाते थे तथा दीदी की शंकाओं का समाधान<sup>१</sup> भी करते हुए आगे का विषय पढ़ने की प्रेरणा और जो पढ़ा उसके लिए शाबाशी देते हुए प्रोत्साहित करते थे। इससे दीदी के ज्ञान में वृद्धि हो रही थी, करणानुयोग में कुछ प्रवेश भी होने लगा था, जिससे दीदी में आगे-आगे ग्रन्थ पढ़ते रहने का उत्साह बढ़ रहा था। अब दीदी का पण्डित जी से अच्छा परिचय हो गया था। इसी कारण दीदी ने वर्षों तक पण्डित जी से पत्र के माध्यम से शंकाओं का समाधान प्राप्त करके आगम में प्रवेश पाया था।

गुरुवर का विहार होता जा रहा था। भीण्डर से वे बहुत दूर पहुँचते जा रहे थे, लेकिन यहाँ दीदी में एक नई आशा का संचार हुआ था, इसलिए वह सोचती रहती थी, कि यदि वह बहुरानी संघ में आ जाए तो मेरी कामना

१. नोट-उन सब शंकाओं को पण्डित जी ने अपने शंका-समाधान नामक ग्रन्थ में दिया है।



बहुत जल्दी पूरी हो जाएगी, इसी विचार से वह कभी-कभी उसके पत्र का इंतजार भी करती थी, किन्तु पत्र किसके यहाँ आएगा उसको क्या पता कि गुरुवर कहाँ विराजमान हैं ? जब तक उसे यह पता न चले तब तक पत्र लिख भी कैसे सकती है आदि विचार करते हुए उसने एक दिन अपनी साधर्मी बहन कंचन दीदी को बहुरानी के लिए पत्र डालने का संकेत दिया। कंचन दीदी कुसुम दीदी को अपना सब कुछ मानती थी, अपने जीवन-विकास की आधारशिला वह दीदी को ही समझती थी, इसलिए वह दीदी के संकेतों को बहुत जल्दी समझ कर उन्हें पूरा करने का प्रयास करती थी। उसको भी बहुरानी के प्रति हमदर्दी थी, वह भी चाहती थी, कि बहुरानी जल्दी से जल्दी घर छोड़कर गुरु-चरणों में आकर अपना कल्याण कर ले। वह उससे परिचित थी, साथ ही वह यह भी जानती थी, कि गृहस्थी के कीचड़ में से निकलना कितना कठिन है, क्योंकि उसने स्वयं वैधव्य के दुख भोगते हुए भी घर से निकलने में कितनी कठिनाइयों का सामना किया था, वह सब उसके स्मृति-पटल पर जमा हुआ था, फिर यहाँ तो नई-नवेली सौभाग्यवती बहुरानी के घर छोड़ने की बात थी। वह बहुरानी के प्रति दीदी के वात्सल्य तथा अनुकम्पा के भावों से भी अच्छी तरह परिचित थी। कंचनदीदी ने दीदी की भावनाओं के अनुरूप गुरुवर से शुभाशीष लेकर घर से निकलने के लिए संबल देने वाले उपदेश और मौलिक सम्बोधन लिख करके तथा उसे पत्र का उत्तर देने के लिए अपने किसी परिचित का पता लिखकर पत्र डाल दिया। जैसे ही बहुरानी को पत्र मिला, उसके खुशियों का ठिकाना नहीं रहा। उसे अपनी भावनाओं की पूर्ति होती हुई नजर आने लगी। उसने दीदी के जाने के बाद से ही स्वाध्याय के माध्यम से कुछ मौलिक सैद्धान्तिक शंकाएँ इकट्ठी कर रखी थीं। उसने शंकाओं को लिखकर दीदी को पुनः पत्र डाल दिया ताकि जल्दी से दीदी का वात्सल्य भरा मोक्षमार्ग में बढ़ने का साहस देने वाला पत्र प्राप्त कर सके। उस पत्र में उसने मुख्य रूप से तत्त्वार्थसूत्र के बाद में पढ़े जाने वाले **कोटि-शतं द्वादश...पाठ** का अर्थ जो दीदी ने नहीं समझाया था। अनेक प्रयास करने के बाद भी उसे कोई अर्थ समझाने वाला नहीं मिला था, इसलिए वही

लिखकर उसने दीदी से समाधान करने की प्रार्थना की थी। कुछ शंकाएँ मुनि जीवन सम्बन्धी थी। जो उसे आश्चर्य उत्पन्न कर रही थीं। बहुरानी का शंकाओं सहित उत्तर पत्र प्राप्त कर दीदी को विशेष प्रसन्नता हुई, क्योंकि अधिकांशतः तो साधु के रहने तक व्यक्ति में वैराग्य रहता है और साधु का विहार हो जाने पर मानों वैराग्य का भी विहार हो जाता है, इसलिए दीदी को ऐसा लग रहा था कि शायद बहुरानी का वैराग्य भी गुरुवर के विहार के बाद धीरे-धीरे धुल गया होगा, वह पुनः पूर्ववत् अपने घर के कार्यों और विषय-भोगों में ही लग गई होगी, किन्तु इस पत्र को पढ़कर उसे विश्वास हो गया कि बहुरानी को अभी भी वैराग्य है और वह घर के पिंजड़े से निकल कर उड़ने के लिए तड़फ रही है। इस पत्र से दीदी की आर्यिका बनने की भावनाओं को भी बल मिला था। दीदी ने गुरुवर के चरणों में बहुरानी का नमोऽस्तु कहा और पत्र में लिखी हुई भावनाओं की प्रशंसा करते हुए पत्र पढ़कर गुरुवर को सुना दिया। पत्र सुनकर गुरुवर को भी प्रसन्नता हुई वास्तव में मोक्षमार्गी को तो मोक्षमार्ग में चलने की भावनाओं से ही प्रसन्नता होती है, उन्होंने अन्तरंग से उसको मोक्षमार्ग में बढ़ने की भावना सफल हो जल्दी से जल्दी फलीभूत होने का बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया और उसमें लिखी हुई शंकाओं के समाधान भी बता दिए। दीदी ने पत्र में शंका एवं समाधान के साथ ही उसके वैराग्य की प्रशंसा करते हुए कुछ आत्म-कल्याण के सूत्र लिखकर पत्र डाल दिया। इस प्रकार लगभग एक वर्ष में कुछ पत्र दीदी ने डालकर बहुरानी पर करुणा और कृपा की वर्षा की तो कुछ पत्र बहुरानी ने डालकर अपने वैराग्य और ज्ञान को पुष्ट किया।

□

पूज्य गुरुवर का अनियत विहार चल रहा था। जहाँ जैन समाज होती लेकिन जिनालय नहीं होता तो गुरुवर वहाँ जिनालय बनाने की प्रेरणा देकर अपना कर्तव्य निर्वाह करते थे। उस समय दीदी भी अपनी बुद्धि और पद के अनुसार श्रावकों को गुरुवर के निर्देशनों के अनुसार ही कार्य करने के लिए उत्साहित करती थीं। नए-नए गाँवों में जहाँ के श्रावक गुरु-समागम की प्राप्ति नहीं हो पाने के कारण मुनि-चर्या से अनभिज्ञ रहते दीदी वहाँ

उनके घर कभी शुद्ध-भोजन की व्यवस्था देखने चली जाती थी, ताकि गुरुवर के आहार में किसी प्रकार की कोई बाधा न आवे। एक दिन दीदी चौके में भोजन बनना शुरू ही हुआ था तभी गुरुवर के स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ संकेत देने पहुँच गई थी। वहाँ उसने एक बर्तन में भीगे हुए मोठ देखे। उस बर्तन में मोठ तो पानी में नीचे थे लेकिन पानी के ऊपर बहुत सारे मोठ के जीव तैर रहे थे। दीदी ने सोचा ये अभी जीवित होंगे उसने धीरे से उन जीवों को पानी में से निकाला तो वे सब मर चुके थे। उसने गृह-मालकिन से कहा-भाभी! क्या आपने मोठ शोधन करके नहीं गलाए? उसने कहा नहीं दीदी, मैंने तो मोठ बहुत अच्छी तरह से शोधन करके ही गलाए हैं, देखो ये सूखे मोठ कितने साफ-सुथरे हैं, वैसे तो इनको शोधन करने की आवश्यकता ही नहीं है, फिर भी मैंने इन्हें अच्छी तरह देखकर ही गलाए हैं। दीदी ने उन सूखे मोठ को अच्छी तरह से देखा तो उनके ऊपर छोटी-छोटी सफेद बिन्दियाँ-सी नजर आई तो उसने उनमें से २-४ मोठ को धीरे से फोड़कर देखा तो उनमें से वैसे ही जीव दिखाई दिए जैसे उन गले हुए मोठ के पानी में तैर रहे थे, उसने तत्काल खड़े अनाज का अर्थात् जिनके टुकड़े नहीं हुए हों, त्याग कर दिया और उसी को आधार बनाकर बादाम, पिस्ता, काजू आदि जिनको दो टुकड़े करके नहीं गलाए हैं, उन्हें भी खाने का त्याग कर दिया। इसे ही विवेक कहते हैं कि एक वस्तु में हुई गलती को देखकर अन्य वस्तुओं में भी यदि वो ही गलती होने की संभावना हो तो वह गलती होने के पहले ही उसे सुधार लेना। अहो दीदी, आपकी अहिंसा-धर्म को पालन करने की मेधावी बुद्धि प्रशंसनीय है। अभी आप महाव्रती नहीं बनी थीं, फिर भी आपमें विवेक-पूर्वक व्रत-पालन करने के भाव आश्चर्य उत्पन्न करने वाले हैं।

इसी प्रकार एक बार पूज्य गुरुवर के साथ विहार में कुछ युवक चल रहे थे। एक दिन कुछ नवयुवकों ने जो आहार नहीं दे रहे थे, उन्होंने भोजन बनाने की तैयारी में भिण्डी सुधार कर रख दी और रोटी बनाने के लिए आटा गूँथने लगे। उसी समय पूज्य गुरुवर का आहार सम्पन्न होने पर दीदी का वहाँ से निकलना हुआ। उन सुधरी हुई भिण्डी की सब्जी को देखकर वो

बोली—भैया! क्या तुम लोगों ने यह सब्जी एकाग्रता से सुधारी है या गप-शप करते हुए सुधारी है। उन्होंने कहा—दीदी आपने वर्षायोग में इतना तो सिखा ही दिया है, इसलिए हमने भिण्डी बहुत अच्छी देखकर ही सुधारी है, इनमें एक भी जीव नहीं है। दीदी ने पुनः कहा—भैया, इतनी सारी भिण्डी सुधारी है तो कहीं चूक गए हो संभव है एक-आध जीव रह गया हो। उन्होंने पुनः अपनी सफाई बताते हुए कहा—दीदी, विश्वास रखो इनमें एक भी जीव नहीं है, तब दीदी ने भी कहा—यदि एक भी जीव निकल आया तो क्या करोगे ? वे बोले—दीदी आप यदि इनमें से एक जीव भी निकाल देगीं तो हम जीवन भर के लिए भिण्डी खाने का त्याग कर देंगे। दीदी ने ५-७ भिण्डी शोधन की कुछ नहीं निकला लेकिन थोड़ी भिण्डियों का और शोधन किया तो २-३ भिण्डियों में जीव निकल आए। सभी युवकों ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीवन भर के लिए भिण्डी का त्याग करने लगे तो दीदी ने कहा—नहीं भैया, ऐसा त्याग नहीं करो, केवल भिण्डी में ही जीव होते हों, ऐसी कोई बात नहीं है, जीव तो सब्जी, पत्तियों, अनाज, फल आदि सभी में हो सकते हैं, हमें कोई भी वस्तु खाने के पहले अथवा सुधारने के पहले और सुधारते समय भी अच्छी तरह देख लेना चाहिए। चाहे ऊपर से कितनी भी अच्छी साफ-सुथरी वस्तु दिखाई दे रही हो अथवा २-४ दिन पहले ही सुधार कर साफ कर रखी हो तो भी हमें खाने/बनाने के पहले भी अवश्य देख लेना चाहिए, ताकि अहिंसा का पालन हो सके और हम हिंसा से होने वाले पाप से बच सकें। इस प्रकार दीदी ने नौजवानों को भी सहज रूप से संयम और अहिंसा का पाठ पढ़ा दिया।

□

इस वर्ष वि. सं. २०३९ (१९८२) का वर्षायोग भानपुरा (मंदसौर मध्यप्रदेश) की सौभाग्यशाली जनता को प्राप्त हुआ। सैकड़ों वर्षों के इतिहास में इस नगर में किसी साधु-संत का न विशेष प्रवास हुआ था और न ही वर्षायोग का ही लाभ मिला था। यहाँ श्रावक धर्म से अनभिज्ञ थे इसलिए गुरुवर की प्रत्येक चर्या, प्रवचन और चर्चा उनके लिए ग्राह्य थी। इसके साथ-साथ दीदी के द्वारा दिए जाने वाले उपदेशों से भी वे अपने

जीवन को भलीभाँति संस्कारित करते थे। यहाँ एक श्रेष्ठी श्रावक प्रतिदिन प्रातःकाल सामूहिक स्वाध्याय करवाते थे। कुछ श्रावक-श्राविकाएँ उनसे स्वाध्याय सुनने के लिए निरन्तर आते थे। दीदी भी गुरुवर की आज्ञा लेकर अपनी संघस्थ बहनों के साथ उनके स्वाध्याय में जाती थीं। दीदी का विचार था, कि ज्ञान का अर्जन करते समय छोटे-बड़े का अन्तर नहीं रखना चाहिए। फिर वे तो श्रावक व्रतों का पालन करने वाले हैं और हम श्राविकाएँ हैं, इसलिए उनके साथ स्वाध्याय करने में कोई शर्म वाली बात नहीं है। नीति ग्रन्थ में भी लिखा है—**भिक्षावृत्ति से भोजन करवाकर भी ज्ञानार्जन प्राप्त हो तो भी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।** अथवा जहाँ कहीं भी अनुकूलता मिले तो ज्ञानार्जन कर लेना चाहिए। दीदी ने भी इसी नीति अनुसार उनसे स्वाध्याय और ज्ञानार्जन का लाभ उठाया था। गुरुवर का कठिन वृत्तिपरिसंख्यान मिलाने, उनके निरन्तराय आहार करवाने स्वयं के भोजन करने आदि समय में समाज के युवावर्ग, बालिकाएँ, बहुरानियाँ दीदी से सहज ही जुड़ जाते थे और दीदी के सुरीले कण्ठ से कोयल के समान मीठी मधुर वाणी सुनकर तो समाज के अधिकांश लोग मानो दीदी के ही हो जाते थे, फिर भी दीदी का उनसे आकर्षण नहीं रहता था, वह तो अपने काम से ही विशेष प्रयोजन रखती थीं। बिना प्रयोजन गृहस्थों से सम्बन्ध रखना वह उचित नहीं समझती थी, क्योंकि उसने कई बार गुरुमुख से सुना था कि त्यागी-व्रतियों को जनसम्पर्क से बहुत दूर रहना चाहिए, फिर पुरुष वर्ग से सम्पर्क रखना नारी के शील को नष्ट करने का सबसे सरल उपाय है, इसलिए यदि मैं इन नौजवानों से विशेष बातचीत करूँगी और इन्हें मुँह लगा लूँगी तो मेरा ब्रह्मचर्य व्रत कभी भी नष्ट हो सकता है, यही सोचकर वह अति आवश्यकता पड़ने पर ही उनसे बातचीत करती थी। इसी का फल था कि वे स्वयं और अपने साथ रहने वालों का शील सुरक्षित रख पाई थी।

यही एक दिन दीदी को एक सपना आया। जिसमें उसने खिले हुए दो फूल देखे थे, उसमें से एक फूल बहता जा रहा था, जिसको स्वयं उसने पकड़कर बचा लिया था। जब प्रातःकाल दीदी की नींद खुली तो उसे अपने

देखे गए सपने पर बहुत विस्मय हुआ। फिर उसने सोचा और अनुमान लगाया कि जिस प्रकार परम पूज्य १०८ आचार्य श्री धरसेन स्वामी ने दो बैलों की जोड़ी देखी थी, फलतः उन्हें दो योग्य शिष्य प्राप्त हुए थे। शायद मेरे भी सपने का यही फल हो कि गुरुवर के संघ में कोई दो ब्रह्मचारिणी/ ब्रह्मचारी प्रवेश करें। उसका सपना फलित हुआ उसी वर्षायोग के बीच में कुचामन सिटी (राजस्थान) से श्रावकश्रेष्ठी श्री माणिकचन्द जी जैन पाटौदी जो गुरुवर के परम भक्त थे। उनकी सुपुत्री सुश्री संतोष बहन जिसने संत शिरोमणि आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की माँ जो आर्यिका समयमति बनी थी। उनसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था, उसका प्रवेश हुआ और दीपावली के बाद भीण्डर की बहुरानी सौभाग्यवती श्री लीला बहन का प्रवेश हुआ। दोनों ही लगभग १८ और २० वर्ष की उम्र वाली थीं, इन दोनों के आने से दीदी की दीक्षा लेने की भावनाएँ प्रबल हो उठी थी। उसकी भावनाओं का सम्प्रेषण भी गुरुवर के हृदय में पहुँचने लगा था, वे भी दीदी को दीक्षा देने के विचार बनाने लगे थे। वर्षायोग के उपरांत गुरुवर का विहार भानपुरा से भवानीमण्डी की तरफ हुआ। वहाँ से पिड़ावा, मिसरौली आदि आस-पास के छोटे-बड़े गाँवों में श्रावक गुरुवर को अपने-अपने यहाँ चलने के लिए निवेदन करने आते रहे। गुरुवर पिड़ावा पहुँचे तो वहाँ की समाज ने जब गुरुवर की कठोर-चर्या और दीदी के प्रवचन सुने तो उनके मन में अच्छी धारणा बन गयी थी कि पंचमकाल में आगमोक्त चर्या वाले साधु भी होते हैं। दीदी के प्रवचन से इतने प्रभावित हुए कि अभी ब्रह्मचारिणी अवस्था में ही दीदी इतने वैराग्य से ओतप्रोत उपदेश देती है, तो आर्यिका बनने के बाद इनके उपदेश को सुनकर कितने लोग वैरागी और सद्गृहस्थ बन जाएँगे, कहा नहीं जा सकता है और दीदी में केवल ज्ञान ही नहीं है अपितु इनकी चर्या भी बहुत ही उत्तम है। इस दीदी की दीक्षा हमारे यहाँ हो जावे तो कितना अच्छा रहेगा। पिड़ावा के चौराहे-तिराहों पर युवा वर्ग की टोलियाँ भी दीदी की दीक्षा के बारे में चर्चा करने लगे थे, वृद्ध लोग दीदी की दीक्षा के लिए गुरुवर के चरणों में श्रीफल भेंट करने की सलाह मिलाने लगे थे। इधर गुरुवर के भावों में दीदी को दीक्षा

देने के भाव बनने लगे थे। एक दिन गुरुवर दीदी को दीक्षा लेने की प्रेरणा देते हुए बोले—

**काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।**

**पल में परलय होयगा, बहुरि करेगा कब॥**

समझदारों को इशारा काफी होता है। दीदी भी गुरुवर के मुख से इन पंक्तियों को सुनकर समझ गई कि गुरुवर का अभिप्राय क्या है, गुरुवर का क्या भाव है ? उसकी भावना तो पहले से ही दीक्षा लेने की बन रही थी। गुरुवर की प्रेरणा से उसकी भावनाओं को सम्बल मिल गया। वह दीक्षा के लिए श्रीफल चढ़ाने का विचार बनाते-बनाते अपनी वसतिका में आई तो सभी संघस्थ बहनों ने भी दीदी से कहा—दीदी, आज तो आप गुरुवर के चरणों में दीक्षा का श्रीफल चढ़ा ही देना। अब आपकी दीक्षा बहुत जल्दी ही हो जाएगी। उन्होंने तत्काल श्रीफल मंगवा कर दीदी को दिया और स्वयं भी सभी ने श्रीफल लेकर गुरुवर के चरणों में जाकर दीक्षा के लिए श्रीफल भेंट किया, दीदी की प्रार्थना सुनकर गुरुवर उसकी परीक्षा करने के लिए बोले—

**बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।**

**काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥**

गुरुवर की बात सुनकर दीदी असमंजस में पड़ गई। उसको लगने लगा कि क्या मैंने बिना सोचे-समझे दीक्षा का श्रीफल चढ़ाया है अथवा गुरुवर की नजर में मैं अभी दीक्षा लेने के योग्य नहीं हूँ इसलिए गुरुवर ने ऐसा कहा है, उसकी कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था, वह बार-बार गुरुवर के द्वारा दिए गए संकेत के बारे में सोच रही थी, सोचते-सोचते उसका मन उदास हो गया। उसकी उदासी देखकर संघस्थ बहनें बोली—दीदी, आप उदास क्यों हो गई ? क्या आपको अपनी दीक्षा में कुछ संदेह लगता है? दीदी उनकी बात सुनकर चुप ही रही तो बहनों ने कहा—दीदी आप गुरुवर की बात को इतना गहराई से क्यों ले रही हो ? गुरुवर ने तो मात्र आपकी परीक्षा के लिए ऐसा कहा होगा। हमें तो पूरा विश्वास है कि गुरुवर आपको अभी ही कुछ दिनों में दीक्षा अवश्य देंगे। फिर आप हमारी पूज्या

माता जी बन जाएँगी, आप फिर जगज्जननी कहलाएँगी। बहनों की इन सब बातों को सुनकर दीदी ने सोचा अवसर का लाभ उठाना चाहिए। वह बोली वह तो सब ठीक है, गुरुवर मुझे दीक्षा देंगे लेकिन मेरी समस्या तो अब तक भी हल नहीं हो पाई, क्या तुम लोगों को पता है कि मैंने इतने दिन दीक्षा क्यों नहीं ली। दीदी की बात सुनकर सब चुपचाप बैठी रहीं, क्योंकि किसी को इस बात का कोई पता नहीं था। तब दीदी उनकी मुख मुद्रा देखकर बोली—मैंने मात्र इसलिए दीक्षा नहीं ली कि मुझे दीक्षा लेकर अकेला ही रहना पड़ेगा। मेरे साथ अभी कौन दीक्षा लेने के लिए तैयार है। दीदी की समस्या आगम की पुष्टि करने वाली थी। दीदी की आन्तरिक पीड़ा सुनकर लीला सहज ही बोली—दीदी आप बिल्कुल चिन्ता नहीं करो, मैं १० महीनों के अन्दर-अन्दर दीक्षा लेने का पूरा पुरुषार्थ करूँगी। तब तक मेरा जो आधा दाँत टूटा है, खराब हो रहा है, उसे निकलवा लूँगी और आँख में पानी आता है, उसकी शल्य चिकित्सा भी हो जाएगी। ताकि दीक्षा के उपरांत व्रतों में दोष नहीं लगाना पड़ेगा, ऐसी गुरुवर की भी भावना है या यूँ कहो कि उनकी ऐसी ही आज्ञा है। लीला की बात सुनकर दीदी का चेहरा खिले कमल-सा महक उठा। संघस्थ सभी बहनों की आत्मा भी लीला के प्रति प्रशंसनीय भावों से भर गई और सभी ने उसकी भावनाओं की और दीदी के सहयोग करने की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसके संयम धारण करने के भावों की अनुमोदना की। सबने जाकर जल्दी से गुरुवर को सारी बातें बतायी तो गुरुवर ने भी लीला बहन को उसकी भावना फलित होने का आशीर्वाद दिया। संघ में लीला बहन सबसे छोटी थी, लेकिन उसके भाव बहुत बड़े और श्रेष्ठ थे, इसलिए सभी ने उसके अनुपमेय साहस की सराहना की। अब दीदी की दीक्षा के प्रति भावनाएँ बलवती हो उठीं। गुरुवर ने भी उत्तम मुहूर्त में दीक्षा देने का विचार बनाया।

५ मार्च, १९८४ के दिन दीदी की दीक्षा निश्चित हुई थी, लेकिन अभी दीदी की दीक्षास्थली बनने का सौभाग्य किसको मिलेगा यह निश्चित नहीं हुआ था। गुरुवर पिड़ावा से विहार करते हुए भवानी-मण्डी आ गए थे। रामगंजमण्डी, मिसरौली, भानपुरा, भवानीमण्डी आदि कई नगर गाँवों के



लोग पूज्यवर के चरणों में अपने नगर को दीक्षा नगरी बनाने का निवेदन करने आने लगे थे। वे बार-बार गुरुवर के पदपंकज में आते थे, गुरुवर सबको एक ही उत्तर देते कि जैसा समय उचित होगा वही किया जाएगा अथवा जिसके भाग्य में लिखा होगा वही नगर दीक्षास्थली बन जाएगा अर्थात् वहीं पर ब्रह्मचारिणी की दीक्षा हो जाएगी।



एक दिन गुरुवर आर्यिका के व्रतों का स्वरूप बताते हुए बोले— आर्यिकाएँ असंयमियों की चाहे वे गृहस्थ हो या संघस्थ ब्रह्मचारिणी ही क्यों न हो सेवा-वैय्यावृत्य नहीं कर सकती हैं, वे उन सबके द्वारा पूज्य होती हैं। यदि कोई असंयमी/अणुव्रती उनसे अर्थात् महाव्रती से सेवा करवाता है तो उसे महान् चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव होता है। गुरुवर की बात सुनकर ब्रह्मचारिणी संतोष बहन बोली—गुरुवर, तो क्या दीदी की दीक्षा हो जाएगी, तो फिर वे हम लोगों के केशलोंच भी नहीं कर सकती हैं, यह तो हम लोगों के मोक्षमार्ग में बढ़ने का ही कार्य है। बहन की बात सुनकर गुरुवर मुस्कराते रहे, कुछ भी नहीं बोले। जब वे कुछ नहीं बोले तो बहन समझ गई कि आर्यिकाएँ आर्यिकाओं के केशलोंच तो कर सकती हैं लेकिन ब्रह्मचारिणी बहनों के नहीं। गुरुवर के इस मौन संकेत से ही ब्रह्मचारिणी संतोष बहन तथा ब्रह्मचारिणी लीला बहन की धड़कन बढ़ने लगी। वे सोचने लगी की हमारे केशलोंच कौन करेगा ? हमने तो आज तक केशलोंच की बात तो बहुत दूर सिर का एक बाल तक नहीं उखाड़ा है, हमें केशलोंच करना आता ही नहीं है, ५-७ दिन में दीदी की दीक्षा हो जाएगी इसलिए वे हम लोगों के केशलोंच करेंगी ही नहीं, फिर हमारा क्या होगा? इस प्रकार दोनों के मन में उथल-पुथल मचने लगी। इस उथल-पुथल को शांत करने के लिए उन दोनों ने एक दिन बैठकर सलाह मिलाई कि अपन दोनों दीदी की दीक्षा के पहले ही उनसे अपने केशलोंच करवा लेते हैं, एक बार केशलोंच हो जाने पर तो अपन लोगों को भी थोड़ा-थोड़ा आने ही लगेगा, फिर बाल भी छोटे-छोटे हो जाएँगे, जिससे केशलोंच में सुविधा भी हो जाएगी। इस प्रकार विचार बनाकर एक दिन दोनों ही दीदी से बोलीं—दीदी,

आप हम दोनों के केशलोंच कर दीजिए। अब तो आप आर्यिका माता जी बन जाएँगी, फिर तो आप हमारे केशलोंच करेंगी ही नहीं, इसलिए आप तो आज ही हमारे केशलोंच कर दो। छोटी-छोटी दोनों बहनों के मुँह से केशलोंच की बात सुनकर दीदी गद्गद् हो गई। वह विचारने लगी अहो अभी तो इनको संघ में आए मात्र दो-तीन महीने हुए हैं, तो भी मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने की इनमें जितनी ललक है, इनमें चारित्र धारण करने की कितनी उत्कृष्ट भावनाएँ हैं आदि-आदि थोड़ी देर तक दीदी विचार करती रही फिर बोली-बहनों क्या तुम केशलोंच को छोटी-सी बात समझती हो या बच्चों का खेल, केशलोंच बहुत कठिन चीज है, एक-एक बाल निकलने के साथ-साथ आँखों से आँसू भी बहने लगते हैं, केशलोंच के समय बहुत दर्द होता है और केशलोंच के बाद भी कई दिनों तक सिर में पीड़ा होती रहती है, अभी तुम लोग छोटी-छोटी हो, इतने दर्द को सहन नहीं कर पाओगी, इसलिए एक-दो साल के बाद जब तुम लोगों की सहन-शक्ति बढ़ जावे, वैराग्य दृढ़ हो जावे तब केशलोंच कर लेना। दीदी की बात दोनों को काफी हद तक ठीक लगी थी, लेकिन दीदी की दीक्षा होना निश्चित हो चुका है। अब दीदी आर्यिका माता जी बन जाएँगी, फिर सबसे पहले हमारा केशलोंच कौन करेगा ? ऐसा विचार करके वे पुनः बोली दीदी आप तो हमारे केशलोंच कर दीजिए, जितना भी दर्द होगा गुरुवर के आशीर्वाद से हम सब सहन कर लेंगे। अभी हमारे केशलोंच नहीं हुए तो आगे कब होंगे कुछ कहा नहीं जा सकता इसलिए आपसे हमारी बारम्बार प्रार्थना है, कि आप हमारे केशलोंच कर दीजिए। दोनों बहनों की प्रार्थना और समर्पण की भावना से दीदी बहुत प्रसन्न हुई, उसने दो-तीन घंटों में दोनों के बालों का केशलोंच कर दिया। यद्यपि पहली बार केशलोंच होने से उन्हें तकलीफ हो रही थी, लेकिन कुछ अच्छा पाना हो तो कष्ट तो सहन करना ही पड़ता है। आचार्य महाराज कहते हैं कि शरीर में गाँठ हो जाने पर उसकी शल्य चिकित्सा के समय बहुत कष्ट होता है, परन्तु एक बार चिकित्सा के कष्ट को सह लेने से जीवन में कभी पुनः उस गाँठ सम्बन्धी वेदना नहीं होती है। इसी प्रकार जब कोई तपस्या करता है अर्थात् उपवास करता है,

आतापन योग धारण करता है, परीषहों को सहता है तब बहुत कष्ट की अनुभूति होती है, क्योंकि शरीर से मोह होने के कारण ये सब कष्टप्रद लगते हैं, किन्तु कोई यदि एक बार इन कष्टों को समतापूर्वक सहन करके निर्वाण प्राप्त कर लेता है तो अनन्तकाल तक भी उसको कभी कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट उत्पन्न नहीं उठाने पड़ते हैं, वह उन सब कष्टों से अनन्त काल तक के लिए छूट जाता है। यही सोचकर उन दोनों ने भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए केशलोंच के कष्ट को सहन कर लिया था। जब गुरुवर को मालूम हुआ कि संघस्थ दोनों बहनों ने दीदी से केशलोंच करवा लिए हैं, तो वे बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने उन दोनों को जल्दी-से-जल्दी दीक्षा प्राप्ति का आशीर्वाद दिया।

दीदी की दीक्षा तिथि निकट आती जा रही थी, फिर भी अभी गुरुवर का विहार थमा नहीं था, क्योंकि अभी दीक्षा का स्थान निश्चित नहीं हुआ था। तभी कर्म ने दीदी की परीक्षा लेना चालू कर दिया। दीदी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। दीदी को सर्दी लगकर कभी १०४ तो कभी १०५-१०६ डिग्री बुखार आने लगा। धीरे-धीरे उस बुखार ने मोतीझरा का रूप ले लिया। दीदी की भूख गायब हो गई। कुछ ही दिनों में दीदी का शरीर इतना कमजोर हो गया कि उसको बिस्तर से उठना ही कठिन लगने लगा। अब तो दीदी एक दिन में दूसरी बार भोजन तो दूर औषधि भी नहीं ले सकती थी क्योंकि गुरुवर ने उसे आर्यिका दीक्षा की साधना करने के लिए दस प्रतिमाओं के व्रत दिए थे। यदि शक्ति नहीं हो तो भी पैदल चलना ही था। यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर १० प्रतिमाधारी ही, क्यों क्षुल्लक जी भी वाहन का प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु दीदी ने १० प्रतिमा के व्रत लेते समय ही वाहन के प्रयोग का त्याग कर दिया था सो यह और कठिन परीक्षा थी वास्तव में परीक्षा के समय ही मालूम पड़ता है कि हमारा मार्ग सरल, सुगम है अथवा कठिन है और हम उस पथ पर चलने के लिए कितने दृढ़ संकल्पी हैं। कहा भी है—

**उस पथिक की क्या परीक्षा जिसके पथ में शूल न हो।  
और उस नाविक की क्या परीक्षा, जिसके धारा प्रतिकूल न हो॥**

दीदी की भी परीक्षा की घड़ियाँ थीं, वैसे दीदी ने जब से मोक्षमार्ग पर चलने का संकल्प लिया था, तभी से परीक्षाएँ प्रारम्भ हो गई थी। यह आर्यिका बनने के पहले शायद अंतिम परीक्षा थी, जो बहुत कठिन थी। ७ मार्च के कुछ दिन पहले गुरुवर ने पिड़ावा वालों को अपनी नगरी को दीक्षास्थली बनाने का आशीर्वाद दिया था, इसलिए अब जो कुछ भी हो पिड़ावा पहुँचना अनिवार्य था।

दीक्षा तिथि और स्थान निश्चित होते ही पिड़ावा वालों ने तथा गुरुवर के अनन्य भक्तों ने अपने-अपने परिचितों, मित्र-जनों तथा रिश्तेदारों को समाचार देना शुरू कर दिया था। किसी ने पत्र लिखकर तो किसी ने अन्तर्देशीय कार्ड के माध्यम से अपने वालों को दीक्षा में आने का भावभीना निमंत्रण दिया था। जिनके पुत्रादि धनार्जन के निमित्त से नगर के बाहर किसी अन्य स्थान पर रहते थे, उन्हें आवश्यक रूप से आने के लिए कहा था। आपकी जैसी भी परिस्थिति हो सबका हल निकालकर ७ मार्च को तो घर पर आ ही जाना है। दीदी की दीक्षा जैसा महोत्सव जहाँ कहीं और जिस किसी को कभी नहीं मिल सकता है। इसलिए तुम्हें आना ही है। किसी ने बस के कंडक्टर ड्राइवर के माध्यम से समाचार भिजवाए थे। जहाँ कहीं दूरभाष की व्यवस्था थी, वहाँ उससे ही दीक्षा में आने के लिए निवेदन किया था। समाज के प्रतिष्ठित अध्यक्ष आदि ने मिलकर दीदी के चित्र सहित एक आमंत्रण पत्रिका छपवाई थी, जो छोटे-बड़े सभी गाँव-नगरों में भिजवाई थी, ताकि लोग भोजन-पानी, आवास आदि व्यवस्थाओं की चिन्ता छोड़कर दीक्षा देखने आ सकें। समाज तथा संघ की तरफ से दीदी के माता-पिता, दीदी-जीजा जी आदि को विशेष निमंत्रण दिया गया था। दीदी की दीक्षा की सूचना सुनकर दीदी के दीदी-जीजा जी तथा पिता जी को विशेष प्रसन्नता हुई थी। यद्यपि माँ भी इस सूचना से प्रसन्न थी लेकिन वह दिगम्बर धर्म के साधुओं को होने वाली कठिनाइयों को सोच-सोचकर हैरान थी। वह दिगम्बर साधुओं की कठिन-चर्या से ज्यादा परिचित नहीं थी, परन्तु वह दीदी से मिलने के लिए वर्ष में २-३ बार गुरुवर के चरणों में जाती रहती थी, इसलिए वह जैन साधुओं की चर्याओं से थोड़ी-थोड़ी

परिचित हो गई थी और अपने अड़ोस-पड़ोस वालों के मुँह से भी दिगम्बर धर्म की चर्याओं के बारे में सुन रखा था, इसलिए वह दीदी की दीक्षा से विशेष खुश नहीं थी, फिर भी थोड़ी प्रसन्न तो थी ही क्योंकि उसकी बेटी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए १०-१५ वर्ष से संघर्ष कर रही थी। वह अब उसे प्राप्त होने वाला था। दीदी का छोटा भाई अनिल और बहन पुखराज दिगम्बर जैनधर्म के संदर्भ में कुछ भी नहीं जानते थे इसलिए उन्हें न ज्यादा खुशी थी और न कोई दुख ही था।

□

दीक्षा की खबर मिलते ही निम्बाहेड़ा की जैन समाज में खलबली मच गई थी। दीदी श्वेताम्बर होकर भी दिगम्बर धर्म में दीक्षा ले रही थी इसलिए दिगम्बर समाज प्रसन्न थी। श्वेताम्बर समाज को यह अच्छा नहीं लग रहा था, लेकिन उनके पास कोई चारा नहीं था क्योंकि धर्म अपनी ऐच्छिक चीज होती है दीदी के रिश्तेदार सभी श्वेताम्बर ही थे, उन्होंने कभी दिगम्बर दीक्षा नहीं देखी थी, इसलिए वे दीदी की दीक्षा में आने के लिए विशेष तैयारियाँ करने लगे थे। उनके अन्दर दिगम्बर सन्तों की कठोर चर्या को जानने के बारे में जिज्ञासाएँ थीं। उन्होंने सुन रखा था कि दिगम्बर साधु किसी भी परिस्थिति में अपने व्रतों और चर्याओं में समझौता नहीं करते हैं। वे कठिनतम चर्या के धनी चाहे वैशाख-जेष्ठ का महीना हो, उपवास हो, २-४-६ अन्तराय के बाद आहार करने का समय हो, आहार में प्रथम ग्रास में ही बाल आदि अन्तराय का कारण उपस्थित हो जावे तो भी उस दिन दूसरी बार दूध, रस, शिकंजी, ठण्डाई आदि की बात तो बहुत दूर पानी भी ग्रहण नहीं करते हैं। रत्नत्रय का साधन यह शरीर असमय में न छूट जावे इसलिए गाड़ी में औंगन के समान थोड़ा-सा सादा, सात्विक भोजन बिना बोले बिना किसी संकेत के दिन में एक बार श्रावक द्वारा कराञ्जुलि में रखा गया शोधन करके ग्रहण कर लेते हैं। चाहे बीमारी के कारण शरीर कितना भी शिथिल हो गया हो, फिर भी एक ही स्थान पर और एक आसन से खड़े-खड़े आहार ग्रहण करना ही जिनके शरीर की रक्षा का एक मात्र उपाय है आदि-आदि जो उन्होंने सुनी थी, उन्हें वे प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखने

का अवसर अपने हाथों से खोना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने निम्बाहेड़ा में समाचार दिए थे, कि हम भी दीक्षा देखने चलेंगे। (पिड़ावा वालों ने आने वाले अतिथियों के भोजन और आवास की व्यवस्था निःशुल्क की थी और यह समाचार पत्रिका के माध्यम से सब जगह पहुँचाया था, इसलिए आने वालों का संकोच समाप्त हो गया था।) दीक्षा के २-३ दिन पहले ही दीदी के सम्बन्धी पिड़ावा पहुँच गए थे। निम्बाहेड़ा के श्वेताम्बर-दिगम्बर समाज के प्रतिष्ठित लोग दीदी की दीक्षा के दिन ही पिड़ावा पहुँचे थे।

दिगम्बर संत के वचन कभी झूठे नहीं होते हैं, वे कभी किसी के साथ विश्वासघात नहीं करते हैं। दीदी को स्वास्थ्य-लाभ हेतु अनेक वैद्यों को दिखाया गया था। औषधि भी चली थी, लेकिन स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं आया, क्योंकि मोतीझरा का नाम मियादी बुखार है जब तक इसकी अपनी मर्यादा पूरी नहीं हो जाती कितनी भी औषधि करो कोई लाभ नहीं मिलता है। दीदी के मियादी बुखार की भी अभी मर्यादा पूरी नहीं हुई थी इसलिए कोई औषधि काम नहीं कर रही थी। गुरुवर विहार करने का विचार भी बना रहे थे और इधर दीक्षार्थी दीदी की हालत भी देख रहे थे। दीदी अपने यम-नियमों को पालन करने में सतर्क थी आखिर परीक्षाएँ कितने दिन तक चल सकती हैं। दीदी के भी पुण्य का उदय आया भगवान् की भक्ति और गुरुवर का शुभाशीष फला फलतः मियादी बुखार ने विदा ली, दीदी ठीक हो गयी लेकिन मोतीझरा की कमजोरी अभी भी उनकी अंगुलि पकड़कर चल रही थी। फिर भी दीदी ने एक दिन गुरुवर से विहार करने की अपनी भावना प्रकट कर दी। गुरुवर ने विहार कर दिया। भवानी मण्डी से पिड़ावा कोई ज्यादा दूर नहीं था। इसलिए कुछ ही दिनों में बड़ी धूम-धाम के साथ गुरुवर का प्रवेश पिड़ावा नगरी में हो गया।

□

सदियों के बाद पिड़ावा में जैनेश्वरी दीक्षा होने वाली थी। इसलिए यहाँ का जन-मानस अति उत्साहित था। यहाँ जैन समाज में विशेष मत-मतान्तर वाले श्रावक थे। कोई एकांत मतानुयायी जो पंचमकाल में भावलिंगी मुनि नहीं होते हैं अतः वर्तमान में जितने भी साधु-संत, आचार्य-उपाध्याय

है वे सब मात्र बाह्य वेषधारी हैं उन्हें नमस्कार नहीं करना चाहिए ऐसी धारणा वाले थे। कोई शुद्ध तेरापंथी तो कोई बीसपंथी आमनाय वाले थे। किन्हीं परिवारों में स्वामी मुनिभक्त थे तो उनकी श्रीमति एकान्त पंथी थी। तो किन्हीं परिवारों में इससे विपरीत स्वामी एकांतपक्षी तो श्रीमति मुनि भक्त थी, परन्तु आज सभी मत वाले/विचारधारा वाले दीक्षा महोत्सव के समारोह में गुरुवर की आगमानुकूल चर्या और उपदेशों से प्रभावित होकर एक जुट होकर जिनेन्द्र भगवान् के पथ पर चलने के लिए सम्मिलित हो गए थे। कहने का तात्पर्य यह है कि समूची जैन समाज एक छत के नीचे बैठकर दीदी के दीक्षा समारोह में तन-मन-धन से समर्पित थी। कई लोग नगरी को दुल्हन की भाँति शृंगारित कर रहे थे, तो कई लोग अतिथि सत्कार में संलग्न थे, कोई शुद्ध भोजन की व्यवस्था में अपने को लगाए हुए थे, तो कोई दीदी के पारिवारिक जनों की मेहमाननिवाजी करने को तत्पर थे। यहाँ किसी को बलात् कार्य करवाने की आवश्यकता नहीं थी। सभी प्रेमपूर्वक गुरुभक्ति से प्रेरित होकर आगे आकर कार्य करने के लिए तैयार थे। सभी का लक्ष्य एक ही था कि दीदी की दीक्षा का कार्यक्रम भव्यता के साथ सानन्द सम्पन्न होना चाहिए।

श्राविका वर्ग में दीक्षा के ८-१० दिन पूर्व से ही दीदी को अपने घर पर भोजन के लिए निमंत्रण देने की होड़ लगी थी। दीदी निमंत्रण की कतार से बड़ी परेशान थीं, उन्हें लगने लगा कि यदि मैं पूरे दिन भोजन की कथा ही करती रहूँगी तो अपना धर्मध्यान, स्वाध्याय, जाप, पूजन, सामायिक आदि आवश्यक कब करूँगी ? इसका समाधान करने के लिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। जिससे समाज के साथ व्यवहार भी समाप्त नहीं हो और आवश्यक भी समय पर हो जावे। उन्होंने श्रावकों से कहा कि—आप पूरे दिन निमंत्रण देने के लिए नहीं आया करें, प्रातःकाल सबसे पहले जिसका निमंत्रण आएगा, मैं उसी का निमंत्रण स्वीकार करूँगी। लेकिन दीदी की यह युक्ति सफल नहीं हुई, इससे दीदी को प्रातःकालीन सामायिक पाठ आदि में विघ्न उपस्थित होने लगे। दीदी ने पुनः युक्ति लगाई। कमरे के बाहर पट्टी और बत्ती रख दी, जिसको निमंत्रण देना हो, वह अपना नाम पट्टी पर लिख

जावे, दीदी जब बाहर आएगी तब निमंत्रण स्वीकार कर लेगी। इससे भी एक नयी समस्या आ खड़ी हुई—एक आता अपना लिखकर जाता तो दूसरा आता उसका नाम मिटाकर अपना नाम लिख जाता। इस प्रकार सभी में दीदी के प्रति वात्सल्य स्नेह का आधिक्य होने से सभी दीदी को अपने घर में मानो छप्पन व्यंजन ही खिलाना चाह रहे थे। सभी इस माध्यम से सातिशय पुण्यार्जन करना चाह रहे थे। जैसे-जैसे दीक्षा की तिथि निकट आती जा रही थी। लोगों के दीदी को भोजन करवाने की भावना बढ़ती जा रही थी। सब चाह रहे थे, कि हम दीदी को क्या-क्या खिला दें, लेकिन वे मजबूर थे, क्योंकि गुरुवर का घी-दूध का त्याग था, सो वे सोचते थे शायद ब्रह्मचारिणी बहनें भी घी-दूध नहीं लेती होंगी इसलिए वे ज्यादा इधर-उधर का चटपटा भोजन नहीं बना पाते थे, अधिक से अधिक नारियल की गिरि का हलुआ, बर्फी आदि बनाकर ही दीदी को खिला पाते थे। दीदी का स्वास्थ्य नरम-गरम रहने से संघस्थ बहनें दीदी के साथ जाकर ध्यान रखती थी और दीदी भी स्वयं पथ्यापथ्य विचार करके ही भोजन करती थीं। जब से दीदी ने १० प्रतिमा ली थी, तब से वे थाली में भोजन न करके कटोरे में ही भोजन करती थीं और एक गिलास में ही सभी पेय पदार्थ ग्रहण करती थीं अर्थात् बर्तन का भी प्रमाण था। यह भी इन्द्रिय विजय का एक माध्यम है। एक कटोरे में सारा भोजन करने से (रोटी, सब्जी, काजू, किसमिस, मिठाई आदि) रसना इन्द्रिय विजय होता है। अलग से किसी एक का विशेष स्वाद नहीं आने से गृद्धता समाप्त होती है। दीदी को २-४ दिन बाद तो कराञ्जुलि में ही भोजन ग्रहण करना है, इसलिए उसका पाणिपात्र में श्रावक क्या कैसा कितना देगा कहा नहीं जा सकता है। उसका अभ्यास अभी से करना उचित है, यही चिंतन करके दीदी ने यह साधना शुरू की थी।

दीक्षा समारोह के लिए विशाल पाण्डाल अपने समय पर दीक्षा स्थली का रूप लेकर अपने आप में गौरवान्वित हो रहा था। जिसके बीचोबीच दीक्षा प्रदाता गुरुवर के विराजमान हेतु चंदोबा युक्त मंच बना था तो उसकी उत्तर दिशा में दीक्षार्थी का मंच बनाकर सामने समूचे जन-सैलाब



के बैठने की व्यवस्था थी और आगे विशेष अतिथियों को सम्मान सहित आदरपूर्वक बैठने की व्यवस्था बनायी गई थी। पाण्डाल में परमपिता परमेश्वर अर्हत भगवान् की, आचार्य परम्परागत आचार्य शांतिसागर जी, आचार्य ज्ञानसागर जी, आचार्य विद्यासागर जी महाराज की तस्वीरें और आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज के सूत्र-वाक्यों से सुसज्जित बैनर अनेक स्थानों पर लगाए गए थे। पाण्डाल के बाहर सभी ओर सुन्दर-सुन्दर आकर्षक तोरण द्वार बनाए गए थे। नगर में भी अलग-अलग गलियों व चौराहों, तिराहों पर विशेष दरवाजे बनाए गए थे। जिससे आगन्तुकों को सहज ही पाण्डाल तक पहुँचने में सरलता हो गयी थी। श्रावकों ने अपने-अपने घरों पर केशरिया ध्वज लहराकर जैनत्व की संस्कृति को आगे बढ़ाया था। इस सब सज्जा का मूल उद्देश्य मात्र यही था, कि अन्य जैनेतर लोगों को भी यह ज्ञात हो जावे कि यहाँ कोई भव्यात्मा परमात्म पद प्राप्त करने के लिए मोक्षमार्ग में अपने कदम बढ़ा रही है अर्थात् जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर रही है।

कई श्रावकों ने दीक्षा के कार्यक्रमों में पहनने के लिए नए-नए वस्त्राभूषण खरीदे थे। महिलामण्डल, बालिकामण्डल, युवकमण्डल आदि ने अपनी पहचान बनाने के लिए अलग-अलग पोशाकें तैयार करवायी थीं। दीक्षा की तिथि ज्यों-ज्यों पास आती जा रही थी, त्यों-त्यों सभी का उल्लास बढ़ता जा रहा था, पर दीदी की भूख पलायन करती जा रही थी, वैसे भी दीदी को ज्यादा कुछ विशेष खाने का शौक नहीं था, सही है वैरागी को भोगों से प्रयोजन रहा ही कब है ? इसका भी कारण दीदी ने जब से गुरुवर के प्रवचनों में सुना था, कि ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए हमें ज्यादा मिठाई, ज्यादा खटाई तथा चटपटी चीजें ज्यादा नहीं खाना चाहिए तभी से वह सबसे विरक्त ही रहती थी, उसका विचार था कि रसनेन्द्रिय को वश में रखने से व्रत का पालन अच्छी तरह से होता है। इसलिए दीदी ने भोजन में तली तथा गरिष्ठ वस्तुओं को गौण कर दिया था। साधक तो हर वक्त साधना के साधन ही ग्रहण करता है। दीदी भी ऐसी ही साधिका होने से किसी भी बहाने से त्याग करने में तत्पर रहती थी। दीदी की विशुद्धि दिन-

प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। दीक्षा के उपलक्ष्य में जिनालय में विशेष पूजा विधान प्रारम्भ हो चुके थे। रात्रिकाल में होने वाले दीदी के प्रवचनों का प्रभाव विशेष बढ़ने से प्रवचन में श्रोताओं की संख्या भी तीव्र गति से बढ़ती जा रही थी। सभी लोग दीदी के सुरीले कण्ठ से भजन सुनने को लालायित रहते थे। दीदी प्रायः भजन गाकर ही प्रवचन करती थी। एक दिन गुरुवर ने दीदी से कहा—बाई २-४ दिन और भजन गा लो उसके बाद तो कभी भजन नहीं गा पाओगी। सुनते ही दीदी हक्की-बक्की रह गई कि मैं २-४ दिन के बाद भजन क्यों नहीं गा पाऊँगी, मेरी तो भजन गाने में विशेष रुचि है। मेरे तो प्रवचन का आधार ही भजन है। भजन के साथ प्रवचन करने से श्रम नहीं होता है और श्रावकों को जल्दी से समझ में भी आता है। यह सोचकर वह हाथ जोड़े भजन न गाने का कारण समझने के लिए चातक पक्षी की भाँति गुरुवर के उत्तर वचन रूप स्वाति नक्षत्र की बूँदों का इंतजार करने लगी। गुरुवर उसकी मुखमुद्रा से भाँप गए कि यह भजन नहीं गाने का कारण जानना चाहती है, सो बोले—आर्यिकाएँ गाती नहीं है, रोती नहीं हैं, बच्चों को खिलती नहीं हैं, सूत नहीं कातती हैं, लीपती नहीं हैं आदि-आदि श्रावकों के करने योग्य कार्यों को आर्यिकाएँ नहीं करती हैं, ऐसा मूलाचारादि ग्रन्थों में आचार्य महाराजों ने बतलाया है, इसलिए तुम भी दीक्षा लेने के बाद आर्यिका बन जाओगी तो फिर कैसे गा सकती हो ? पूज्य गुरुवर की सटीक बात सुनकर दीदी का मन कुछ क्षणों के लिए चंचल हो गया। फिर उसने सोचा कि भजन गाने और प्रवचन करने की अपेक्षा आर्यिका बनना मौलिक कार्य है, आर्यिका बने बिना मेरा कल्याण कभी नहीं हो सकता है इसलिए मुझे भले ही भजन गाने का ही नहीं बोलने का भी त्याग करना पड़े तो भी मैं आर्यिका जरूर बनूँगी। इस प्रकार विचार करके गुरुवर की बात को सहज रूप से स्वीकार कर लिया। वास्तव में सच्चा और पक्का शिष्य तो वही है जो गुरु की बात को तर्क-वितर्क किए बिना ही स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार गुरुवर प्रतिदिन दीदी को आर्यिका व्रत के बारे में समझाते रहते थे। दीदी भी गुरुवर के निर्देशानुसार अपने आप में आर्यिका व्रत पालन की धारणा बना रही थी।

□

२-३ दिन पहले ही दीदी के पारिवारिकजन पिड़ावा पहुँच गए थे। उनका भाव था कि २-३ दिन तक हम दीदी को उसके बचपन में जो अच्छा लगता था, जिसको वह रुचिपूर्वक खाती थी, वे सब खिला-पिला कर अपने आपको संतुष्ट करेंगे, परन्तु दीदी यह सब स्वीकार करके मोह को प्रोत्साहन नहीं देना चाहती थी, इसलिए दीदी ने केवल दीक्षा के पूर्व के दिन अर्थात् चौथ के दिन ही (एक दिन) उनके यहाँ का निमंत्रण स्वीकार किया था। यद्यपि दीक्षा केवल दीदी की ही होनी थी, फिर भी संघस्थ ब्र. कंचन, ब्र. सरला, ब्र. संतोष, ब्र. लीला को विशेष आनन्द आ रहा था। उन्हें स्वयं की दीक्षा नहीं ले पाने का इतना दुख नहीं था, जितनी खुशी दीदी की दीक्षा होने की थी, क्योंकि वे दीदी (इतने दिन दीक्षा नहीं हो पाने की) की अन्तरंग वेदना से परिचित थीं। वे भी अपनी दीदी के बहुत लाड़-प्यार करना चाहती थीं, वे दीदी के हाथ-पैरों में मेंहदी के माध्यम से नाना प्रकार की सुन्दर कलाकृतियाँ करना चाहती थीं, लेकिन दीदी के ये सब साज-शृंगार करने के भाव नहीं थे। उन्होंने अपनी सब छोटी बहनों को समझाया कि योग के समय में भोग करना शोभा नहीं देता। जब मैं जीवन पर्यन्त के लिए सब कुछ छोड़ने वाली हूँ तो उस त्याग की पूर्व वेला में इस प्रकार शृंगार से क्या प्रयोजन? यह कार्य तो ऐसा लगता है कि कल से मुझे जहर का त्याग करना है तो आज एक बार जहर खा लूँ, ऐसा तो कोई समझदार व्यक्ति नहीं कर सकता आदि-आदि वैराग्यप्रद बातों से दीदी ने उन्हें संतुष्ट कर दिया था, जिससे उन्होंने भी मेंहदी आदि लगाने की हठ छोड़ दी। दीदी की माँ-बहन-भाभी आदि भी नए-नए वस्त्राभूषण लेकर आयी थीं। उनका भाव था, कि हम अंतिम बार अपनी बहन/बेटी को नए वस्त्राभूषण पहनाकर अपने साथ-बीच में बैठाकर ४-८ चित्र खिंचवा ले जो भविष्य में हमें दीदी की याद को ताजा बनाते रहेंगे। वैराग्य से ओतप्रोत दीदी ने उनको भी स्वीकार नहीं किया। धन्य हो बहन कुसुम दीदी आपको जो बचपन से ही घर-गृहस्थी के भोगों से मुँह मोड़कर विरक्त हो गयी और अभी दीक्षा के समय व्यवहार से भी वस्त्राभूषण आदि पहनकर मन में भोग के भावों को पुष्ट नहीं किया। सभी बहनों ने अपने-अपने तरीके से दीदी को मनाने का

प्रयत्न किया पर दीदी के आत्मिक बल के सामने दूसरों की बात तो बहुत दूर उसका स्वयं का मन भी कुछ मनमानी करने में समर्थ नहीं हो सका। इसलिए किसी की कुछ नहीं चली थी। गुरुवर ने भी परीक्षा करने हेतु ही दीदी को रंगीन वस्त्राभूषण पहनने के लिए कहा, तब भी दीदी गुरुवर की परीक्षा में उत्तीर्ण ही हुई थी।

एक दिन गुरुवर ने दीदी से कहा—बाई एक-दो दिन इसी वेशभूषा में सही किसी वाहन में अर्थात् जीप, कार, हाथी आदि पर बिनौरी निकलवा लो, जिससे धर्म की प्रभावना का कार्य हो जाएगा। गुरुवर की बात सुनकर दीदी हाथ जोड़कर बोली—पूज्यवर, मैंने १० प्रतिमा के व्रत लेते समय सभी प्रकार के वाहनों का त्याग कर दिया था अर्थात् वाहनों में बैठने का त्याग कर दिया था। इसलिए मेरे भाव नहीं हैं फिर आपकी जैसी आज्ञा होगी वैसा मैं करूँगी। गुरुवर ने दीदी की भावना अनुसार पैदल ही बिनौरी निकालने का शुभाशीष दे दिया, उसमें हाथी-घोड़ा आदि सम्मिलित थे पर दीदी उन पर बैठी नहीं थी। शोभा यात्रा में दीदी की पहचान बनाने के लिए उनके गले में हार और सिर पर मुकुट लगा दिया था। सभी संघस्थ बहनें दीदी को मध्य में करके चारों तरफ श्रावक समुदाय उत्साहित होकर चल रहे थे ताकि सभी को समझ में आ जावे कि निम्बाहेड़ा गौरव ब्र. कुसुम दीदी चौरङ्गिया की ही दीक्षा होना है। समूची जनता नए-नए वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर चल रही थी, उन सभी के बीच में दीदी ऐसी लग रही थी मानो नाना प्रकार की रंग-रंगीली रत्न-जटित माला के बीच में नगीना के रूप में स्फटिक मणि जड़ दिया गया हो। सारा जन-सैलाब नृत्य-गान करते, नगाड़ों की ध्वनि पर थिरकते उल्लासित होते और जयकारों के नाद से गगन गुँजाते हुए चल रहा था, पर दीदी को इन सबमें कोई आकर्षण नहीं था, उन्हें तो उस घड़ी का इंतजार था, जिसके लिए वह सारी साधनाएँ कर रही थीं। फिर भी जो कार्य जिस समय पर होना है, वह उसी समय पर तो होगा। माली चाहे कितना ही पानी डाल दे, खाद आदि की अधिक से अधिक व्यवस्था कर दे फिर भी ऋतु आने पर ही फसल आती है, दीदी की दीक्षा भी जो तिथि निश्चित हुई थी, उसी में दीक्षा होनी थी, उसके पहले कैसे हो सकती थी?

फिर भी यह जीव आकुलता करके कर्मों का बंध करता रहता है।

एक दिन गुरुवर पुनः आर्यिका व्रतों की महत्ता बताते हुए बोले—इस संसार में आर्यिका पद स्त्री-पर्याय का सर्वोत्तम पद है। स्त्रियों के लिए इससे बड़ा तीन लोक में कोई भी पद नहीं है। इसलिए त्यागी-व्रतियों तथा श्रावकों को आर्यिकाओं का यथायोग्य सम्मान-विनय करना चाहिए। यद्यपि वह मुनिराज के समान पूजनीय नहीं होती है, पर गृहस्थों के समान अपूज्य भी नहीं होती हैं। गुरुवर की बात सुनकर संघस्थ ब्रह्मचारिणी संतोष दीदी बोली—गुरुवर, अब दीदी २-३ दिन में आर्यिका बन जाएगी। उनके पास साड़ी, कमण्डलु, पिच्छी और शास्त्र के अलावा कोई परिग्रह नहीं रहेगा। ये हमारे से बहुत बड़ी हो जाएँगी तो हम लोग इन्हें नमस्कार करते समय क्या बोलेंगे ? हम जिस प्रकार क्या आपको नमस्कार करते समय नमोऽस्तु बोलते हैं, वैसे ही माता जी को भी नमोऽस्तु बोल करके ही नमस्कार करेंगे। ब्रह्मचारिणी बहन की बात सुनकर गुरुवर बोले—

गुरुवर—बाई, आर्यिकाओं के पास साड़ी रूप वस्त्र का परिग्रह होता है इसलिए वे पंच-परमेष्ठियों में नहीं आती हैं। संसार में पंच-परमेष्ठी को छोड़कर कोई भी पूज्य नहीं होता है। इसी भेद को बनाए रखने के लिए आचार्यों ने उन्हें वन्दामि कहकर नमस्कार करने की आज्ञा दी है। तुम लोग भी आर्यिका की वन्दना करते समय वन्दामि ही बोलना और इसी प्रकार प्रतिग्रह/पड़गाहन के समय भी वन्दामि बोलकर ही आह्वानन करना।

ब्र. संतोष बहन—गुरुवर एक बात और पूछनी है। जब आर्यिका माता जी सो रही होगीं और उठने का समय होने के बाद भी यदि उनकी नींद नहीं खुलेगी तो क्या हम लोग उन्हें जगा सकते हैं?

गुरुवर—नहीं बाई, अपने से बड़ों को कभी नहीं जगाना चाहिए। बड़ों को उठाने/जगाने में एक प्रकार से उनका अविनय होता है।

बहन—गुरुवर, यदि हम उन्हें नहीं जगाएँगे और उनकी नींद नहीं खुल पाई तो उनके समय पर आवश्यक कैसे हो पाएँगे?

गुरुवर—अरे बाई, साधुओं को अपने आवश्यकों को करने की चिन्ता

हमेशा रहती है इसलिए वे समय पर उठ ही जाते हैं लेकिन कभी किसी कारणवश नींद नहीं खुल पाए तो आप उन्हें 'माता जी वन्दामि' इस प्रकार कहकर जगा सकती हैं। इससे दोनों ही कार्य सिद्ध हो जाएँगे। आर्यिका उठ भी जाएगी और तुम्हें उनकी अविनय करने का पाप नहीं लगेगा।



फाल्गुन शुक्ला पंचमी का दिन बिल्कुल निकट आ चुका था। चौथ के दिन दीदी का अन्तिम भोजन था। इसके बाद अब वे कभी भोजन नहीं करेंगी, अब तो उनके आहार होंगे। अब तक थाली, कटोरी, तस्तरी आदि में भोजन हो रहा था, दीक्षा के बाद तो कर ही पात्र में ही होगा इसलिए वे करपात्री हो जाएँगी। आज दीदी को भोजन अपने परिवार वालों के यहाँ लेना था। दीदी को जन्म देकर काम-पुरुषार्थ को सार्थक करने वाले माता-पिता तथा परिजन आदि जिस स्थान पर रुके थे, वहीं उन्होंने अनेक प्रकार के व्यंजन, नमकीन आदि भोजन सामग्री तैयार की थी। मौसमी, अनार आदि को तैयार करके रख लिया था ताकि दीदी को आज तो तत्काल ताजा रस निकालकर दिया जा सकता है। सभी वस्तुओं में चीनी नहीं डली थी, फिर भी सबके प्रेम ने उन्हें मीठा बना दिया था। यद्यपि दीदी को कोई अनुकूल अर्थात् जिह्वा प्रिय वस्तु खाने की इच्छा नहीं थी, फिर भी उसने पारिवारिक जनों को संतुष्ट करने के लिए थोड़ा-थोड़ा सब कुछ खाया था। बाह्य में सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, साधु-सन्त आदि एक समान ही खाते हुए दिखते हैं, फिर भी उनके खाने में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। एक को खाना पड़ता है और एक को खाते-खाते पेट भर जाने से छोड़ना पड़ता है, एक खाते हुए भी नहीं खाता है और एक छोड़ते हुए भी खाता ही रहता है, फलतः एक के कर्मों की निर्जरा होती है और दूसरे को कर्मों का बंध होता है। दीदी ने भी सब कुछ खाया, लेकिन स्वाद की आसक्ति से नहीं मात्र बाह्य परिजनों की संतुष्टि और भूख की वेदना को शांत करने के लिए अथवा रत्नत्रय के साधन स्वरूप इस शरीर की रक्षा के लिए। आज दीदी ने कुछ भोजन पात्र में किया था तो कुछ कराञ्जुलि में किया था। आज बर्तन में भोजन अन्तिम था। आज के बाद वे कभी भी पात्रों में भोजन नहीं करेंगी।

करपात्र में ही आहार ग्रहण करेंगी। भोजन के उपरांत सभी परिजनों ने मांगलिक कार्य में मंगलाचरण रूप मंगलमयी पंच मेवा (छुहारा, मखाना, श्रीफल, बतासा, मिश्री आदि) से दीदी की गोद भरी थी। दीदी के माथे पर कुमकुम का टीका लगाकर कार्य सिद्धि की कामना की थी। सभी सौभाग्यवती महिलाओं एवं दीदी की भाभी, जीजी आदि ने जहाँ ठहरे थे, उन्हीं के आँगन में मंगल चौक पूरकर उस पर दीदी को बिठाकर सुगंधित औषधि/जड़ी-बूटी आदि से मिश्रित वस्तुओं का उबटन करके स्नान करवाया था, अब दीदी (विशेष परिस्थितियों को छोड़कर) कभी स्नान नहीं करेंगी। यह जैन साधुओं का अस्नान मूलगुण है, जिसको दीदी कल दीक्षा के साथ संकल्पित होकर पालन करेगी। स्नान करने से होने वाली हानियों को आचार्य भगवंतों ने मूलाचार, भगवती आराधना, आराधनासार आदि ग्रन्थों में विस्तार से बताया है, उन सब दोषों से बचने के लिए ही साधु अस्नान व्रत धारण करते हैं। इसलिए स्नान नहीं करने के बाद भी वे पवित्र ही माने जाते हैं। स्नान के बाद महिलाओं ने गीत गाए थे, नृत्य किये थे और बाजों के साथ दीदी को देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना के लिए मंदिर ले गए थे। रास्ते में दीदी के जुलूस को देखने वाले लोगों ने भी दीदी की गोद भरी थी और मिष्ठान्न वितरण करके सबका मुँह मीठा करवाया था। यों तो पिड़ावा जैन समाज ने स्थानीय लोगों के लिए भी भरपेट भोजन एवं मिष्ठान्नों की व्यवस्था की थी, पर यह सब दीक्षा के पूर्व दिन में हुआ था, इसलिए साधर्मी जनों ने वात्सल्य से स्वल्पाहार के रूप में मिष्ठान्नों का वितरण किया था। लगभग ८ दिन से मंदिर में दीक्षा के उपलक्ष्य में चारित्र शुद्धि विधान चल रहा था, आज उसकी पूर्ण आहुति थी। कल दीक्षा के दिन शुभ मुहूर्त में यागमण्डल विधान सम्पन्न होगा। यह विधान वेदी प्रतिष्ठा, पंचकल्याणक, कलशारोहण आदि सभी मांगलिक कार्यों में किया जाता है सो यहाँ पर भी हुआ था।

पिड़ावा में दीदी के माता-पिता के पिड़ावा पहुँचने के पहले ही यह चर्चा प्रारम्भ हो गयी थी कि जब दीदी के माता-पिता स्वयं मौजूद हैं तो नए माता-पिता बनाने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कई लोगों का कहना था,

लेकिन गुरुवर का कहना था दीक्षा के पहले चाहे वे खुद ही क्यों न बन जावे धर्म के माता-पिता बनाना जरूरी है, फिर दीक्षार्थी के माता-पिता श्वेताम्बर हैं, सरागी देवों के आराधक हैं, वे वीतराग मार्ग पर बढ़ने वाले पथिक के माता-पिता कैसे हो सकते हैं? यदि दीक्षार्थी के माता-पिता श्रीमती मोहनी जी एवं श्रीमान् बापूलाल जी अपने श्वेताम्बर धर्म को छोड़कर सच्चे दिगम्बर धर्म को स्वीकार कर लेते हैं तो पहले उन्हें ही स्थान दिया जाएगा। यदि वे धर्म परिवर्तन करने में असमर्थ हैं तो दीदी के परिवार में से कोई भी युगल यह कार्य करने को तैयार हो तो उन्हें ही माता-पिता बनाया जाएगा। अंत में यदि कोई तैयार नहीं होगा तो अन्य किसी को माता-पिता बनाकर रश्म पूरी की जाएगी। इस प्रकार की बातें पिड़ावा में कई दिनों से चल रही थीं। उनके पहुँचने के बाद भी ये बातें चलती रही। जब ये बातें उनके (दीदी के माता-पिता के) पास भी पहुँची तो उन्होंने बैठकर विचार विमर्श किया किन्तु कोई भी धर्म परिवर्तन करने को तैयार नहीं हुआ, गुरुवर एवं हम सभी की भावना थी कि दीदी के माता-पिता ही सच्चे धर्म को अंगीकार कर माता-पिता का दायित्व निभाए। वास्तव में आज तक जितने जीव मोक्ष गए हैं, आगे भी जितने जीव मोक्ष जाएँगे और वर्तमान में मोक्ष जा रहे हैं वे सभी निर्ग्रन्थ दिगम्बर धर्म को अंगीकार करके ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। सच है—भूसा कूटने से भी तंदुल कणों की, क्षार (जली हुई) भूमि में बीज बोने से भी दैववशात् धान्य की, पानी के मंथन से मक्खन और बालु रेत को पीलने से भी संभव है किसी को तेल की प्राप्ति हो जाए, लेकिन कुदेवादि की आराधना करते हुए कभी किसी को मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जैनधर्म को अपनाये बिना किए गए सारे अनुष्ठान संसार-परिभ्रमण के ही कारण होते हैं। आचार्य महाराज कहते हैं कि एक परमाणु मात्र का परिग्रह भी मोक्ष की प्राप्ति में बाधक है, फिर अन्य परिग्रहों के रहते हुए मोक्ष की कल्पना करना आकाश में से फूल तोड़कर बाँझ के बेटे को सेहरा बनाकर पहनाने जैसा असंभव है। यह सब दीदी के माता-पिता ने गुरुवर के मुखारविन्द से कई बार सुना था। आज अन्तिम बार भी गुरुवर ने उन्हें सत्य धर्म की महिमा बतायी थी, लेकिन



अपने धर्म के पक्ष-व्यामोह के कारण उनमें अभी तक सत्य धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न नहीं हुई थी। दूसरी बात सामाजिक व्यवस्थाओं में एवं भविष्य में होने वाले शादी-विवाह आदि रिश्ते किस प्रकार किए जा सकेंगे इस प्रकार के अनेक विकल्प उनके दिमाग में थे, इसलिए उन्होंने माता-पिता बनना स्वीकार नहीं किया था, किन्तु यदि हमारे परिवार का कोई युगल माता-पिता नहीं बना तो दीक्षा देखने वाले हजारों लोग क्या कहेंगे कि यदि दिगम्बर धर्म सच्चा नहीं है तो क्यों इन्होंने अपनी बेटी को दिगम्बर धर्म में दीक्षित होने की आज्ञा दी। अरे इनकी बेटी तो इतनी कठिन चर्या वाले धर्म में भी आर्यिका बन रही है और इनके माता-पिता सच्चे धर्म के प्रति श्रद्धा भी नहीं रख सके आदि-आदि अनेक विकल्पजाल पारिवारिक लोगों के दिमाग में घूम रहे थे। आखिर दीदी के मंदसौर वाले जीजी-जीजा जी ने अपनी कुल परम्परागत श्वेताम्बर धर्म को छोड़कर दिगम्बर धर्म को अंगीकार किया और उन्होंने ही दीदी के माता-पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त किया।

दीक्षा के पूर्व दिन अर्थात् चौथ के दिन दीदी ने माता-पिता आदि तथा संघस्थ सभी बहनों के साथ गुरुवर के चरणों में जाकर सिद्धभक्ति, योगीभक्ति, आचार्यभक्ति, शांतिभक्ति तथा समाधिभक्तिपूर्वक बृहद् प्रत्याख्यान अर्थात् पंचमी के दिन चारों प्रकार के आहार का त्याग करके उपवास का संकल्प किया। वर्षों से रात्रिभोजन का त्याग होने पर भी उपवास के पूर्व दिन में ही उपवास का संकल्प करने से कर्मों की विशेष निर्जरा होती है, क्योंकि यह संसारी जीव २४ घण्टे मात्र आहार संज्ञा की पूर्ति के लिए विकल्प करता रहता है, जब कल के भोजन का त्याग है, यह संकल्प लेता है तब उसके दूसरे दिन के भोजन संबंधी हजारों विकल्प समाप्त हो जाते हैं, आखिर दीदी के इंतजार की घड़ियाँ समाप्त हुई, वह फाल्गुन सुदी पंचमी का दिन आ गया, जिसमें दीदी की दीक्षा होनी थी। “दीक्षा दर्प बढ़ाने के लिए, स्वेच्छाचार की वृद्धि के लिए, इन्द्रिय लोलुपता बढ़ाने के लिए नहीं अपितु इन्द्रियों का दमन करने के लिए होती है।” प्रातःकालीन आवश्यकों से निवृत्त होकर के दीदी ने आज गुरुवर को अंतिम बार आहार दिया। आर्यिका बनने के बाद

तो आहार नहीं दे सकते क्योंकि आर्यिकाओं के पास न कोई सामग्री होती है और न ही कोई पात्रादि ही होते हैं। यद्यपि आर्यिकाएँ मुनिराज के समान निर्ग्रन्थ दिगम्बर नहीं होतीं, फिर भी उनके पास अपनी स्त्री पर्याय के कारण शील और लज्जा की रक्षा के लिए मात्र एक साड़ी होती है। उसके साथ न कोई छोटा-मोटा वस्त्र होता है और न ही शरीर को पोंछने/साफ करने के लिए रूमाल, नैपकिन आदि होता है, साड़ी पहनना मजबूरी है वह साड़ी पहनती नहीं, उसे साड़ी पहनना पड़ती है। जिस वस्तु का उपयोग करना पड़ रहा है, उसमें राग कैसे हो सकता है फिर उसे साफ करना व्यवस्थित ढंग से रखना, समेटना, उस पर दाग लग जाने पर उतारना आदि कार्य तो होने की कोई बात ही नहीं है, तभी तो एक लंगोटी मात्र रखने वाले ऐलक भी आर्यिकाओं को नमस्कार करते हैं। दीदी आर्यिका बनने वाली थी, सो आज उसने बड़ी विशेष नवधाभक्तिपूर्वक गुरुवर को आहार दिया था। आहारोपरांत जिनालय में देव-वन्दना (सामायिक) आदि आवश्यक को सम्पन्न किया, लगभग दो बजे दीदी को बाजों के साथ शुभ मुहूर्त में पाण्डाल में ले जाया गया। पाण्डाल में गुरुवर पहले से ही विराजमान थे। दीदी ने सभी बहनों के साथ गुरुवर को नमस्कार किया, श्रीफल भेंट किया और अपने स्थान पर बैठ गई। मंच सम्बन्धी व्यवहारिक क्रियाएँ सम्पन्न होने के बाद दीदी ने गुरुवर से दीक्षा की प्रार्थना की तो साथ में अन्य ब्रह्मचारिणी बहनों ने भी दीक्षा लेने की भावना शीघ्र ही पूर्ण हो, इसी उद्देश्य को लेकर श्रीफल भेंट करके आशीर्वाद लिया। दीदी के निवेदन के पूर्व संचालक महोदय ने जब दीक्षार्थी दीदी का परिचय देते हुए कहा कि श्वेताम्बर धर्म के चौरड़िया कुल (परिवार) में जन्म लेने वाली दीक्षार्थी बहन कुसुम दीदी के साहस और पुरुषार्थ को कहने का सामर्थ्य हमारे पास नहीं है अर्थात् हम शब्दों से नहीं कह सकते हैं कि इन्होंने किस प्रकार अपना धर्म परिवर्तन करके सच्चे धर्म को अपनाया, यह बड़े आश्चर्य की बात है। आज हम जैनकुल में उत्पन्न होकर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का समागम प्राप्त करके भी मिथ्या देवों की आराधना करने में लग जाते हैं और एक भव्यात्मा दीदी जिसके खून में सरागी देवों की श्रद्धा का संस्कार होने पर भी सच्चे धर्म

की शरण लेकर यह आज आर्यिका पद प्राप्त कर हमारी आदर्श बनने जा रही हैं। कुछ ही देर में ये हमें मोक्षमार्ग दिखाने वाली बन जाएगी। धन्य हैं इनको, आज इनके दर्शन पाकर हमारा नगर भी धन्य हो गया। जनता ने जब दीदी का परिचय सुना तो सभी दाँतों तले अंगुलि दबाकर रह गए, सबकी आँखें खुली रह गईं। सभी के हाथ अपने आप उनके चरणों में जुड़ गए और मस्तक सहज ही विनयावनत हो गया। साथ ही सभी के मुख से धन्य हो, धन्य हो आदि प्रशंसनीय शब्द निकल पड़े। जन-सैलाब से भरा सारा पाण्डाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था।

दीदी ने गुरुवर से दीक्षा का निवेदन करने के लिए अपनी लाड़ली बहन सरला दीदी के साथ बैठकर एक सुन्दर-सा भजन बनाया था। उसी को अपने सुरीले कण्ठ से गाकर मानो कह रही हो कि अब वह अपने जीवन में कभी भजन नहीं गाएगी। यह उसके जीवन का अंतिम भजन है क्योंकि आर्यिकाएँ राग-रंग पूर्वक गाती नहीं हैं, ऐसी मूलाचार की आज्ञा है ऐसा गुरुवर ने कुछ दिन पहले ही बताया था। गुरुवर ने समाज से स्वीकृति लेकर दीदी की दीक्षा विधि प्रारम्भ की थी। दीक्षा विधि में अंकन्यासादि क्रियाएँ ब्रह्मचारिणी बहन सरला (जो अब संघ में बड़ी दीदी बनने वाली थी) दीदी से करवाई थी, शेष सभी संस्कार गुरुवर ने अपनी लाड़ली शिष्या ब्र. कुसुम के सिर पर अपने ही करकमलों से किए थे। केशलोंच की क्रिया पाण्डाल में ही स्त्री वर्ग की तरफ बने हुए मंच पर पुरुष वर्ग की तरफ पर्दा डालकर की गई थी। दीदी पहले कई बार अपने हाथों से बालों को उखाड़ कर फेंक चुकी थी अर्थात् उसे केशलोंच करते कई वर्ष बीत चुके थे इसलिए उसके लिए केशलोंच कोई कठिन बात नहीं थी, लेकिन देखने वालों की आँखों से तो दीदी के एक-एक बाल के साथ आँसुओं की धारा बह रही थी। दिगम्बर धर्म में यही तो सबसे कठिन परीक्षा है। निर्दयतापूर्वक हँसते-हँसते केशों को निकालते देखकर अन्य-मतावलम्बी भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं और बड़े-बड़े विद्वान्-पण्डित भी दीक्षा लेने के भाव नहीं बना पाते हैं। केशलोंच की सफलता ज्ञान का नहीं वैराग्य का फल है। अब तो दीदी के हर दो महीने से चार महीने के बीच में केशलोंच करने का संकल्प होने

वाला था। चाहे कंठगत प्राण ही क्यों न हो या बिस्तर से हिलने की भी क्षमता न हो तो भी उस सीमा का उल्लंघन जैन साधु नहीं कर सकते अर्थात् चार माह के पहले तो उनको अनिवार्य रूप से केशलोंच करना ही होता है। कैंची से कटवाने की कल्पना तो वे जिंदगी में कभी कर ही नहीं सकते हैं। यदि अपने हाथ से केशलोंच करने की क्षमता न हो तो किसी अन्य के द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।



दीदी की दीक्षा विधि सानन्द सम्पन्न हो गई थी। पूज्य गुरुवर ने दीदी का नाम “आर्यिका विशालमति” रखा था शायद गुरुवर ने यह नाम बहुत पहले से सोच रखा होगा, क्योंकि वे जानते थे कि इसका दिल इतना उदार है कि जो भी अपने कल्याण का उद्देश्य लेकर इसके पास आएगा यह सभी को अपने विशाल हृदय में समाहित कर लेगी। इसीलिए उन्होंने दीदी को इस सार्थक नाम से अलंकृत किया था। नाम की घोषणा होते ही सारा पाण्डाल आचार्य परम्परा के आचार्यवर्यों की जयकारों से गूँज उठा था। आचार्य ज्ञानसागर जी, आचार्य विद्यासागर जी, आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज तथा नवदीक्षिता आर्यिका विशालमति माता जी का जय-जयकार सर्वत्र सभी लोग कर रहे थे। सूर्यास्त के लगभग एक घंटे पहले ही कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हो गया था, क्योंकि गुरुवर का कहना था कि दीक्षा जैसे धार्मिक आयोजनों में आकर भी कोई रात्रि में भोजन करे यह अच्छी बात नहीं है, समय पर कार्यक्रम पूरा होने से सभी लोग समय पर भोजन-पानी कर लेते हैं। रात्रि-भोजन महा पाप है। गुरुवर की भावना के अनुसार समय पर कार्यक्रम हो जाने से श्रावकों ने समय पर भोजन कर लिया तो त्यागी-व्रतियों ने भी समय पर अपनी वसतिका में आकर प्रतिक्रमणादि आवश्यक कर लिए।

फाल्गुन शुक्ला छठ के दिन आर्यिका माता जी जब आहार चर्या पर निकली तो श्रावकों में उनका प्रथम आहार देखकर अथवा प्रथम दिन आहार देकर अपना जीवन सार्थक करने की प्रबल भावनाएँ थीं, इसलिए पिड़ावा के कई घरों में पड़गाहन करने वालों की भीड़ लगी थी तथा उन्हीं

के आजू-बाजू आस-पास पड़गाहन देखने वाले कतार लगाकर खड़े थे पड़गाहन करने वाले अपना-अपना भाग्य आजमा रहे थे, सबको विश्वास था कि आज नवीन आर्यिका माता जी का सबसे पहला आहार हमारे यहीं होगा, लेकिन होना तो आखिर एक जगह ही था। देखने वाले सोच रहे थे चलो अपन भी शुद्ध वस्त्र पहन लेते हैं ताकि अपने को भी एक ग्रास तो देने को मिल ही जाएगा। आज के दिन एक ग्रास दे देना भी विशिष्ट पुण्य लाभ का हेतु है, क्योंकि आज ये पहली बार आहार करने के लिए चर्या पर निकली है। कई संतोषी प्राणी सोच रहे थे अरे भाई आज तो बहुत भीड़ है अपन तो कल आहार देंगे, कल भीड़ कम हो जाएगी, लेकिन उन्हें पता नहीं था कि कल तक पता नहीं क्या हो जावे और आहार देने की भावना मन में ही रह जावे इसीलिए तो कहा है—“शुभं शीघ्रम्” अच्छे कार्य जल्दी ही कर लेना चाहिए। आर्यिका माता जी का पड़गाहन एक भाग्यशाली श्रावक के यहाँ हुआ। प्रतिग्रह होते ही देखने वालों ने ताली बजाकर और जय-जयकार करते हुए उन श्रावकों को मौन बधाई देते हुए प्रतिग्रह हो जाने की खुशियों को व्यक्त किया था। जब आर्यिकाश्री का आहार प्रारम्भ होने लगा तब उन्होंने सांकेतिक भाषा में श्रावकों से कहा—जो भी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करेगा, वही मेरा आहार शुरू करवाएगा। आर्यिकाश्री का संकेत समझते ही सभी के चेहरों की कांति फीकी पड़ गई। सभी श्रावक पीछे हट गए। चाहे कितना भी कठिन नियम क्यों न हो ? यदि पुण्य का उदय है भाग्य में आहार लिखा है तो विधि मिलेगी। आर्यिकाश्री का भाग्य भी अच्छा था इसलिए एक युगल सामने आया उसने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके पूज्या आर्यिकाश्री का आहार प्रारम्भ करवाया। युगल के सामने आते ही सबने शांति की श्वास ली, सभी को विश्वास हो गया कि आर्यिकाश्री का पुण्य प्रबल है इसलिए इनकी इतनी कठिन विधि भी सहज रूप से मिल गई। संघस्था ब्र. बहन लीला ने भी आज प्रथम आहार के अवसर पर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प किया था। (यद्यपि उसके केशलोच भी हो चुके थे, लेकिन उसको विशेष जानकारी नहीं होने के कारण उसने अभी तक ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प नहीं किया था) आर्यिकाश्री

की कठिन प्रतिज्ञा सुनने के बाद भी सभी आहार देने के लिए लालायित थे कि न सही प्रथम ग्रास देने को मिले या आहार की शुरूआत करवाने का सौभाग्य मिले बाद के ग्रास तो हम भी दे ही सकते हैं। उनके चेहरों के उत्साह से वे समझ गई कि इनकी आहार दान देने की प्रबल भावना है इसलिए इन्हें अवसर अवश्य देना चाहिए, यही विचार कर वे मौन भाषा में बोली-यदि आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प नहीं ले सकते हैं तो कम से कम एक वर्ष का संकल्प करके भी आहार दान का अवसर प्राप्त कर सकते हैं। इस संकेत को सुनते ही अनेक लोग आहार देने के लिए आगे आ गए, बहुत सारे लोगों ने आर्यिकाश्री को आहार-दान दिया लेकिन जिनने उनके जन्म के साथ-साथ सद्संस्कारों से संस्कारित करके आज नारी जगत् के सर्वोच्च पद तक पहुँचाया वे माता-पिता तथा उनके पारिवारिक-जन भैया-भाभी, चाचा-चाची, मामा-मौसी आदि सभी बाहर खड़े-खड़े आर्यिकाश्री की आहार-चर्या को देख रहे थे। अपनी ही बेटी के हाथों में रोटी के दो ग्रास रखने के लाभ से वंचित रह जाने के कारण उनकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। वे एक वर्ष क्या जीवन भर के लिए भी ब्रह्मचर्य ले लेते तो उन्हें आहार देने का अवसर नहीं मिलना था, क्योंकि वे सरागी धर्म को छोड़कर वीतरागी धर्म के प्रति आस्था जागृत नहीं कर पाए थे। इसलिए बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शनादि के साधनों को प्राप्त करना दुर्लभतम कहा गया है। प्रभु की कृपा एवं पूज्य गुरुवर के आशीर्वाद से आर्यिकाश्री का आहार सादर सम्पन्न हुआ था। इसी अवसर पर इसी नगर की मधु जैन ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर संघ में प्रवेश किया था।

□

आर्यिका माता जी गुरुवर की छत्रछाया में अपने व्रतों का निश्चिंतता से पालन करने लगीं, उनकी इच्छा वर्षों के बाद पूरी हुई थी, इसलिए वे बहुत प्रसन्न थीं। एक दिन वे गुरुवर से बोलीं-गुरुवर अशुद्धि के समय में एक छोटी पिच्छी और एक छोटा-सा कमण्डलु या कोई ऐसा लकड़ी का पात्र रखने की आज्ञा चाहती हूँ, क्योंकि मुझे उस समय में इन कमण्डलु-पिच्छी का उपयोग करके उन्हीं से पुनः मंदिर, शास्त्र आदि का परिमार्जन

करने में ग्लानि आती है। आर्यिकाश्री की बात सुनकर गुरुवर बोले—आर्यिका जी, ऐसा कैसे हो सकता है ? भले ही आर्यिकाओं के उपचार से महाव्रत होते हों, फिर भी उनके एक साड़ी को छोड़कर शेष परिग्रहों का त्याग तो होता ही है, वे एक बार में एक साड़ी का ही निःस्पृह भाव से उपयोग करती हैं इसलिए दूसरे दिन दूसरी साड़ी पहनने के बाद भी उन्हें दो साड़ी रखने का परिग्रह अथवा दोष और पाप नहीं लगता है शेष पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र, उपकरण होते हैं, ये पाँच समितियों का पालन करने में सहयोगी बनकर मुनियों का उपकार करते हैं, अतः इन्हें उपकरण कहा है। उपकरण के रूप में जिनेन्द्र भगवान् ने एक पिच्छी-कमण्डलु की ही आज्ञा दी है। और इसके साथ इनमें आसक्ति भाव रखने का भी निषेध किया है। आसक्ति रखने से वे उपकरण भी परिग्रह का रूप धारण कर लेते हैं। अतः किसी भी परिस्थिति में दिगम्बर जैन साधु दो पिच्छी दो कमण्डलु भले ही वे अल्प मूल्य वाले हों अथवा बिना पैसे के ही क्यों न मिलते हों, दो नहीं रखते हैं। गुरुवर की बात को आर्यिकाश्री समझ गई और सहज ही उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया तथा भविष्य में भी पुनः उनसे मन में तत्सम्बन्धी विकल्प नहीं किया। वास्तव में समझदार शिष्य तो वही है, जो गुरु की आज्ञा-पालन ही नहीं करता, अपितु भविष्य में भी उस सम्बन्धी विकल्प नहीं करता है।

आर्यिकाश्री का प्रथम वर्षायोग पूज्य गुरुवर के साथ ही कुचामन सिटी (राजस्थान) में स्थापित हुआ था। यहाँ पर पण्डित विद्याकुमार जी रहते थे, उन्होंने पूज्या आर्यिकाश्री एवं संघस्थ सभी बहनों को ज्ञानदान (पढ़ाने) की भावना से गुरुवर का आशीर्वाद लेकर पढ़ाना शुरू किया था। उन्होंने पंचस्तोत्र, सहस्रनाम, बृहद्स्वयंभूस्तोत्र, दश-भक्तियाँ आदि धार्मिक पाठ तथा संस्कृत व्याकरण भी पढ़ायी थी। आर्यिकाश्री ने उस ज्ञान को आत्मसात् कर लिया था। इनके अर्थ आदि को भी इस ढंग से पढ़ लिया था कि वे स्वयं गृहस्थों एवं संघ में आने वाले नए सदस्यों को पढ़ा सकें। आर्यिकाश्री की बुद्धि तीक्ष्ण थी, इसलिए पण्डित जी को ज्यादा मेहनत करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। एक दिन आर्यिकाश्री ने सोचा

पण्डित जी के सात प्रतिमाओं के व्रत हैं, वे उन व्रतों में आने वाले अतिथि संविभाग व्रत का पालन किस प्रकार करते हैं, देखना चाहिए। वे जिनालय से यह संकल्प लेकर निकली, कि यदि पण्डित जी प्रतिग्रह करेंगे तो मैं आहार करूँगी अन्यथा ज्ञानामृत का पान करते हुए क्षुधा परीषह को सहन करूँगी। आर्यिकाश्री कुचामन शहर की गलियों में जहाँ श्रावकों का निवास था, अपनी विधि का अन्वेषण करती हुई कहीं पर भी पण्डित जी के नहीं मिलने से जिनालय की तरफ आ रही थी तो श्रावकों ने सोचा चलो अपन पण्डित जी से कहते हैं, कि आप पड़गाहन कर लो, हो सकता है आर्यिकाश्री की विधि मिल जावे। भाग्य सही होता है तो बाह्य निमित्त भी सही-सही मिलते जाते हैं। मंदिर पहुँचते-पहुँचते पण्डित जी ने पड़गाहन करके आर्यिकाश्री का निरन्तराय आहार करवा दिया। इस प्रकार आर्यिकाश्री कई बार वृत्तिपरिसंख्यान व्रत करती रहती थीं। कई बार विधि मिल जाती थी तो कभी न्यूनतम सामग्री लेकर ही आहार पूरा हो जाता था। एक बार उन्होंने संकल्प लिया कि चौके में भोजन दिखाते समय जो सर्वप्रथम वस्तुएँ दिखायेंगे अर्थात् प्रथम थाली में जो दिखाएँगे, पानी के साथ उन्हीं वस्तुओं को ग्रहण करूँगी। उस दिन एक गृहिणी भोजन की थाली लाकर दिखाने की तैयारी कर रही थी तब तक किसी दूसरी ने यह सोचकर कि भोजन की थाली आती है, तब तक मैं मसालों की थाली ही दिखा देती हूँ, उसने मसाले की थाली दिखा दी। उस दिन आर्यिकाश्री ने जब अपने नियम के अनुसार केवल सौंफ और पानी लेकर आहार पूरा कर दिया। तब अनुमान से सबको समझ में आया, कि आज माता जी का पहली दिखाई जाने वाली थाली की वस्तुएँ ही लेने का नियम था। इसलिए माताजी ने केवल सौंफ ही ली क्योंकि हमने सबसे पहले मसालों की थाली दिखाई थी। यह भी एक वृत्तिपरिसंख्यान तप है, इसमें साधु अपने भाग्य की परीक्षा करता है। इस प्रकार के वृत्तिपरिसंख्यान में गाँव की सभी गलियों में श्रावक के द्वार पर जाना अनिवार्य नहीं होता है और न ही अलाभ ही होता है अर्थात् भोजन का लाभ नहीं मिले ऐसा भी नहीं होता, इसमें भोजन मिल भी सकता है और नहीं भी मिले, यह भी संभव है।



वर्षायोग के उपरांत गुरुवर का विहार कूकनवाली की तरफ हुआ। यह गाँव गुरुवर का पुराना परिचित था। यहाँ पूर्व में पूज्य गुरुवर के साथ आर्यिकाश्री जब ब्रह्मचारिणी थीं, तब वर्षायोग हुआ था इसलिए वहाँ के लोग चाहते थे, कि जिस कुसुम दीदी ने हमें धर्म सिखाया वे आर्यिका बन गईं सो हमारे घर पर भी उनके आहार हो जावे तो हमारा घर पवित्र हो जाएगा। उनकी भावना फलित हुई। आर्यिकाश्री भी पूज्य गुरुवर के साथ कूकनवाली पहुँच गईं। यहाँ उन्हें शास्त्र भण्डार में एक गोम्मटसार जीवकाण्ड की प्रति मिली जिसकी टीका पण्डित खूबचन्द शास्त्री ने की थी। पण्डित जवाहरलाल जी एवं पण्डित विद्याकुमार जी की प्रेरणा से अब उन्हें करणानुयोग पढ़ने की विशेष ललक उत्पन्न हो गई थी और थोड़ा-थोड़ा करणानुयोग में प्रवेश हो जाने से उत्साह और आकर्षण भी बढ़ गया था इसलिए उस ग्रन्थ को देखते ही उनका मन-मयूर नाच उठा, उनकी आत्मा हर्ष से भर गयी। वे संघस्थ बहनों को गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रन्थ बताते हुए बोली—देखो, यह ग्रन्थ करणानुयोग का है, अपन सब लोग मिलकर इस ग्रन्थ को पढ़ेंगे। यद्यपि मैंने इस ग्रन्थ को कभी नहीं पढ़ा है और शायद तुम लोगों ने भी नहीं पढ़ा होगा। लेकिन अब अपन सब मिलकर इसका अध्ययन करेंगे। आर्यिकाश्री की बात सुनकर बहनें बोलीं—पूज्य माता जी आप हमें यह ग्रन्थ पढ़ाना, हम लोग सभी आपसे ग्रन्थ पढ़ेंगे। वे बोलीं, नहीं मैंने यह ग्रन्थ पढ़ा ही नहीं है तो मैं कैसे पढ़ा पाऊँगी। हाँ, अपन सब एक साथ बैठकर पढ़ेंगे, जहाँ समझ में नहीं आएगा, अपन गुरुवर से समझ लेंगे। इस प्रकार शास्त्र पढ़ने का निर्णय लेकर वे सब अर्थात् ब्र. सरला वासिम, ब्र. कंचन भीलवाड़ा, ब्र. संतोष कुचामन सिटी, ब्र. लीला भीण्डर, ब्र. मधु पिड़ावा गुरुवर से ग्रन्थ के अध्ययन का आशीर्वाद लेने गईं, गुरुवर ने आर्यिकाश्री को ग्रन्थ पढ़ाने का तथा शेष सभी को ग्रन्थ पढ़ने का आशीर्वाद दिया। आर्यिकाश्री ने अच्छा दिन देखकर देव-शास्त्र-गुरु का स्मरण करके शास्त्र पढ़ाना शुरू किया। प्रभु-कृपा एवं गुरुवर के आशीर्वाद से आर्यिकाश्री ने कैसे और किस प्रकार एक ही प्रति से स्वयं एवं पाँच बहनों को ग्रन्थ का अध्ययन करवा दिया, कुछ समझ में ही नहीं आया।

अल्प समय में ही ग्रन्थ पूरा हो गया। पढ़ाते समय वे कभी-कभी परीक्षाएँ भी लेती थीं, ताकि विषय अच्छी तरह तैयार हो जावे और प्रश्न-पत्र बनाते समय स्वयं की भी धारणा अच्छी बन जावे। उनकी भावना सफल हुई संघस्थ सभी बहनों को गोम्मटसार-जीवकाण्ड अच्छी तरह समझ में आ गया। आर्यिकाश्री को अपनी भावनाओं के सफल होने का हर्ष था और आगे भी करणानुयोग पढ़ने-पढ़ाने में उनमें आत्मविश्वास जागृत हो गया था, इससे भी वे बहुत प्रसन्न थीं। गुरुवर ने भी आर्यिकाश्री को इसी प्रकार आगे भी अध्ययन-अध्यापन करने में सफलता मिले, इसके लिए अपना शुभाशीष दिया।



यद्यपि आर्यिकाश्री पठन-पाठन में लगी रहने से बहुत प्रसन्न थीं, फिर भी ८-१५ दिन में उनके दिमाग में एक विकल्प उठता रहता था कि मैं अकेली हूँ संघ में और कोई आर्यिका नहीं है, यह आगम विरुद्ध है, लेकिन मैं क्या करूँ, मजबूर हूँ, इस प्रकार सोचते-सोचते कभी-कभी उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे। तब वे अपने मन को यह कहकर समझा देती थीं कि अब तो कुछ ही दिनों में ब्र. लीला की दीक्षा हो जाएगी, हम दो हो जाएँगी। तब सभी विकल्प समाप्त हो जावेंगे। अभी तक ग्रन्थ का अध्ययन-अध्यापन चल रहा था, सो आर्यिकाश्री पूरे दिन उसके चिंतन-मनन में लगी रहती थीं, लेकिन जैसे ही ग्रन्थ का अध्ययन पूरा हुआ, उनके मन में विशेष विकल्प उत्पन्न होने लगे। एक दिन वे ब्र. लीला से बोलीं—बहन लीला तुम्हारी प्रतिज्ञा के दस माह लगभग पूरे होने वाले हैं, तुम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गुरुवर के चरणों में दीक्षा का श्रीफल भेंट करो। आर्यिकाश्री की बात सुनते ही ब्र. लीला को भी अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई, उसने आर्यिकाश्री की आज्ञानुसार उसी दिन पूज्य गुरुवर के चरणों में दीक्षा के लिए श्रीफल भेंट कर दिया। उसकी भावनाओं का समर्थन करते हुए सभी ब्रह्मचारिणी बहनों ने गुरुवर से दीक्षा देने की प्रार्थना की। आर्यिकाश्री ने भी बहन की दीक्षा के साथ-साथ अपने अकेलेपन की वेदना भी गुरुवर के सामने रखी। चारों ओर से दीक्षा का माहौल बनने लगा।

गुरुवर ने बहन एवं संघस्थ सभी की भावना के अनुसार माघ शुक्ला द्वादशी को बहन लीला को दीक्षा देकर उनका नाम आर्यिका विज्ञानमति रखा। लीला की दीक्षा होते ही आर्यिकाश्री के सभी संकल्प-विकल्प समाप्त हो गए। हम उम्र वाली अपनी साधर्मी आर्यिका साथी को प्राप्त करके आर्यिकाश्री बहुत संतुष्ट और प्रसन्न थीं।

आर्यिका दीक्षा के उपरान्त पूज्य गुरुवर का विहार मारोठ ग्राम की ओर हुआ। गुरुवर पहले भी वर्षायोग, शीतयोग और ग्रीष्मकाल भी यहाँ कर चुके थे, इसलिए वहाँ का सारा जनमानस उनसे परिचित था और उनके प्रति समर्पित भी था। वहाँ के लोग गुरुवर को भक्ति-श्रद्धा से अपना भगवान् मानते थे। पूज्य आर्यिकाश्री भी ब्रह्मचारिणी अवस्था में यहाँ गुरुवर के साथ रह चुकी थी। इसलिए वे उनकी चर्या, वैराग्य और प्रवचन शैली से प्रभावित थे। मुख्य रूप से यहाँ की श्राविकाएँ जब से कुसुम दीदी की दीक्षा हुई थी तभी से उनके अपने नगर में आने का इंतजार कर रही थी उन्होंने जब सुना, कि गुरुवर के साथ आर्यिकाश्री भी हमारे नगर में आएँगी तो वे बड़ी प्रसन्न हो गई थीं, पूज्य गुरुवर के साथ आर्यिकाश्री का भी मारोठ में प्रवेश हो गया। पूज्य गुरुवर का स्वास्थ्य ठीक नहीं होने के कारण ग्रीष्म काल यहीं व्यतीत करना पड़ा था। इसी ग्रीष्मकाल के बीच में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के तृतीय पट्टाधीश आचार्य गुरुवर धर्मसागर महाराज का वर्षायोग लूँणवा में होना निश्चित हुआ था इसी हेतु वे ससंघ लूँणवा की तरफ आ रहे थे, उनका संघ रास्ते में मारोठ नगर में भी आया। आर्यिकाश्री भी गुरुवर के साथ पूज्यवर के संघ की आगवानी करने के लिए बहुत दूर तक गई थीं। पूज्य आचार्य महाराज के संघ में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य पूज्य वीरसागर जी महाराज की प्रथम शिष्या आर्यिका वीरमति माताजी भी विराजमान थीं। गर्मी की तीव्रता के कारण उनका स्वास्थ्य अचानक बिगड़ गया। वे वृद्ध थीं और कमजोर भी थीं इसलिए मारवाड़ की गर्मी सहन नहीं कर पाई, उनको उल्टी-दस्त होने लगे। कई बार उल्टी तथा दस्त हो जाने से उनकी हालत एक-दम बिगड़ गई। उनके जीवन के शेष रहने की

संभावना समाप्त होती जा रही थी। जैसे ही आर्यिकाश्री ने सुना कि पूज्या बड़ी माता जी का स्वास्थ्य बिगड़ गया है तो वे तत्काल अपनी अनुजा आर्यिका श्री विज्ञानमति के साथ उनकी सेवा करने के लिए पहुँच गईं। वैय्यावृत्य अंतरंग तप है, इस तप की भावना करके जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकता है, वज्रवृषभनाराच संहनन का बंध भी इससे होता है। सेवा-वैय्यावृत्य करने वाले भव-भव में नीरोग रहते हैं। आर्यिकाश्री ने भी इस तप के पालन हेतु साधर्मी वात्सल्य से ओतप्रोत होकर आर्यिका माता जी के पैर दबाये, मालिश की और उनके सिर को अपने गोदी में रखकर घी की मालिश करती हुई णमोकार मंत्र सुनाने लगी। आचार्य संघ की सभी आर्यिकाएँ भी उनको सम्बोधन कर रही थी। उनके साथ आर्यिकाश्री भी माता जी को भेदज्ञान, शरीर और आत्मा की भिन्नता याद दिला रही थी। उन्होंने माता जी को पूज्य चरित्र चक्रवर्ती महाराज के जीवन के संस्मरण सुनाए, उनकी तपस्या, उपसर्ग सहन करने वाली घटनाएँ याद दिलाई। अस्वस्थ आर्यिका की श्वास मंद होने लगी थी, तब उन्हें गजकुमार, सुकुमाल, सुकौशल आदि धीर-वीर मुनिराजों की याद दिलाकर आत्मा की याद दिलाई। उन्हें आत्मस्थ करने की कोशिश करते हुए णमोकार मंत्र सुनाया और थोड़ी ही देर में उन्होंने णमोकार मंत्र सुनते-सुनते आर्यिकाश्री की गोद में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। जैसे ही उनके प्राणों का विसर्जन हुआ आर्यिकाश्री की आँखों में आँसू छलक आए। उस समय ऐसा लग रहा था मानो आर्यिकाश्री के अन्दर का वात्सल्य ही आँसू के बहाने बाहर आ रहा हो। धन्य हो आपको तथा आपके हृदय में स्थित वृद्ध-सेवा के भाव को। उसी भाव के कारण आपने एक अपरिचित साधु की भी वात्सल्य एवं विनयपूर्वक सेवा करके अपना जीवन सफल किया था।

आर्यिकाश्री का यह दूसरा वर्षायोग पूज्य गुरुवर के साथ इसी मारोठ नगर में ही हुआ था। यहाँ समाज छोटी है, पर उनकी आन्तरिक भक्ति गुरुवर को बार-बार खींच कर अपने नगर में बुला ही लेती है। इस वर्षायोग में गुरुवर ने चार महीने का अखण्ड मौन लेकर साधना करने का विचार बनाया था, इसलिए उन्होंने मौन लेने के पहले संघ तथा समाज के सभी

कार्य आर्यिकाश्री को सौंप दिए थे और स्वयं मौन लेकर ध्यान-साधना में लीन रहने का भाव बनाया था। वे प्रातः ग्यारह बजे से लगभग पाँच-छह बजे तक ध्यान करते थे। पूरे दिन में उठना, बातचीत करना, आए-गए के साथ व्यवहार निभाना आदि का उन्होंने त्याग कर दिया था। इसलिए ये सभी काम आर्यिकाश्री को ही करने थे। यह भी एक गुरुसेवा है, क्योंकि गुरुवर की साधना में अनुकूलता मिलाना वैय्यावृत्य तप है, आर्यिकाश्री ने इन सब कार्यों को कुशलता-पूर्वक किया था। इन सब कार्यों को करने के बावजूद भी वे अध्ययन-अध्यापन तथा संघस्थ आर्यिका एवं बहनों को मोक्षमार्ग में अग्रसर करने के लिए वैराग्य बढ़ाने का कार्य भी अपना कर्तव्य समझ कर करती थीं। यहाँ आर्यिकाश्री ने श्रावकों को यम, संयम, नियम लेना सिखाने की एक नई युक्ति निकाली थी। उन्होंने कागज पर छोटे-छोटे नियम लिखकर पर्चियाँ एक डिब्बे में रखवा दीं और श्रावकों को प्रेरणा दी कि प्रतिदिन इनमें से एक पर्ची निकालकर उसमें जो लिखा है, उस नियम का पालन करो। श्रावकों ने आर्यिकाश्री के निर्देशन के अनुसार प्रतिदिन पर्ची निकाल कर नियम लेना शुरू कर दिया। एक दिन आर्यिकाश्री ने सोचा आज मैं भी अपने भाग्य को आजमाती हूँ, उन्होंने भी एक पर्ची उठाकर खोल ली। उसमें लिखा था टिककर अर्थात् दीवाल आदि का सहारा लेकर नहीं बैठना। पूज्य आर्यिकाश्री की आदत टिककर बैठने की थी फिर भी उन्होंने पूरे दिन बिना टिके बैठकर अपना नियम भली प्रकार से निभाया। इससे उनमें आत्म-विश्वास उत्पन्न हो गया कि मैं बिना टिके भी बैठ सकती हूँ, इस आत्म-विश्वास के बल पर उन्होंने टिककर बैठना छोड़ दिया। इसी तरह एक दिन उन्होंने पुनः पर्ची उठाई। उसमें लिखा था ५ मिनट में भोजन करना। जब आर्यिकाश्री आहार करने गई तो उनके पुण्योदय से वहाँ पहले ही घड़ी लगी हुई थी उन्होंने ५ मिनट में ही अपना आहार सम्पन्न कर लिया। इसी प्रकार आर्यिकाश्री जब कभी छोटे-मोटे नियम लेकर अपने भाग्य की परीक्षा करती रहती थीं। यही उनका तपाराधना के बहुमान का प्रतीक था। वे सोचती थीं कि यह शरीर साथ नहीं देता है, मैं बड़े-बड़े तप नहीं कर पाती हूँ तो छोटे-छोटे तप तो कर ही सकती हूँ, इस प्रकार के उत्तम

भाव होने से उनके छोटे-छोटे नियम भी तपाराधना में गर्भित हो जाते थे। धन्य हो आर्यिकाश्री आपने शारीरिक शक्ति नहीं चलने के बाद भी आर्यिका दीक्षा धारण करके मनुष्य जन्म को सफल किया। आपको बारम्बार नमन-नमन-नमन।



वर्षायोग का काल होने पर भी यहाँ मारवाड़ प्रदेश होने से जेष्ठ-वैशाख महीने जैसी ही गर्मी का अहसास हो रहा था। गर्मी के कारण हाथ-पैरों में जलन, मुँह सूखना, प्यास की बाधा आदि तकलीफें भाद्र माह आने के बाद भी विशेष कम नहीं हुई थी। एक दिन सायंकाल आर्यिकाश्री को कमण्डलु सुखाना था, क्योंकि पानी प्रातःकाल का गर्म किया हुआ था। उबला नहीं होने से उसकी मर्यादा शाम तक की थी। उसमें थोड़ा-सा पानी था। उस पानी को देखकर वे सोच रही थीं, कि इस पानी का क्या किया जाए धूल में फेंक दिया जाए या इससे हाथ पैर मुँह धो लिए जाएँ। यदि धूल में फेकेंगे तो यह व्यर्थ ही चला जाएगा और हाथ-पैर धो लेंगे तो थोड़ी ठंडक मिल जाएगी हाथ-पैर की जलन ठीक हो जाएगी। बार-बार मन की आवाज आ रही थी कि हाथ-पैर धो ले अच्छा रहेगा लेकिन बीच-बीच में आत्मा की आवाज आ रही थी कि नहीं, नहीं धूल में फेंक दे अच्छा रहेगा। इससे ज्यादा लाभ होगा हाथ-पैर धोने की अपेक्षा, क्योंकि हाथ-पैर-मुँह धोना शरीर का संस्कार कहलाता है, अभी आहार-चर्या का समय भी नहीं है कि शुद्धि करने के लिए हाथ-पैर धोना उचित हो। यह सच है कि हाथ-पैर धोने से गर्मी और जलन की वेदना कम हो जाएगी, किन्तु ऐसा करने से हमेशा-हमेशा के लिए थोड़ी-सी तकलीफ में हाथ-पैर धोने की आदत पड़ जाएगी, क्योंकि एक बार अनुकूलता मिला लेने पर आत्मविश्वास डगमगाने लगता है, दूसरी बात बार-बार हाथ-पैर धोने से शरीर साफ-सुथरा, सुन्दर दिखने लगता है, उसमें आकर्षण उत्पन्न होने लगता है। जिससे ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट होने की संभावनाएँ उत्पन्न होती हैं। आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र महाग्रन्थ के सातवें अध्याय में लिखा है—

**स्त्रीरागकथा-श्रवण-तन्मनोहराङ्ग-निरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरस-स्वशरीर-संस्कार-त्यागाः पञ्च** (त.सू. ७/७) अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत को पुष्ट रखने के लिए पाँचवीं भावना अपने शरीर के संस्कार को त्याग करना कही है, हमें आचार्य महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहिए। आत्मा की सटीक आवाज सुनकर आर्यिकाश्री ने पानी को धूल में फेंक देना उचित समझा। धन्य हो आर्यिकाश्री आपको, आप छोटी-छोटी बातों का और छोटे-छोटे कार्यों में आगम को आधार बनाकर कितना गहरा चिन्तन करती और उसको जीवन में उतार कर सबको इसी प्रकार से करने की शिक्षा देती थी।



कूकनवाली में जब से आर्यिकाश्री का पूज्य गोम्मटसार-जीवकाण्ड का अध्ययन पूरा हुआ, तब से उनके गोम्मटसार-कर्मकाण्ड पढ़ने के विचार बनने लगे थे। यहाँ आकर आपने ग्रन्थ भण्डार देखा भाग्य से यहाँ भी उन्हें एक गोम्मटसार-कर्मकाण्ड की एक प्रति जिसकी हिन्दी टीका पंडित मनोहरलाल जी शास्त्री ने की थी, मिल गई। इसको देखते ही उन्होंने हाथ-जोड़कर पिच्छी लेकर ग्रन्थ की वन्दना की, नमस्कार किया, विनयपूर्वक उपधान करके ग्रन्थ का अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ किया। आर्यिकाश्री को टीका संक्षिप्त होने से और गणित का विषय होने से पढ़ने-पढ़ाने में कठिनाई महसूस हो रही थी, वे सोच रही थी कि कहीं इसका विस्तृत वर्णन मिल जावे तो इसको पढ़ने में सुविधा हो जाएगी। तभी एक दिन एक श्रावक ने आर्यिकाश्री को गोम्मटसार-कर्मकाण्ड की एक प्रति लाकर भेंट की। उसने बताया लूँणवा में विराजमान पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज एवं आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज ने यह शास्त्र आपके लिए भेजा है। अभी-अभी इसका वहाँ विमोचन हुआ था। आचार्यकल्प श्रुतसागर जी महाराज की प्रेरणा से पूज्या आर्यिका श्री आदिमति माता जी ने इसकी यह टीका की है। उस ग्रन्थ को पाकर आर्यिकाश्री का मन प्रफुल्लित हो गया, पूज्य आचार्य संघ का साधर्मी वात्सल्य देखकर वे गद्गद् हो गईं, उन्होंने परोक्ष में ही पूज्य मुनिसंघ को नमोऽस्तु एवं आर्यिका

माता जी को वन्दामि किया। उसी शास्त्र से आर्यिकाश्री ने संघस्थ सभी त्यागी-व्रतियों को बंध-व्युच्छिन्ति, उदय तथा सत्त्व-व्युच्छिन्ति आदि को कण्ठस्थ करवाया और आद्योपान्त ग्रन्थ का अध्ययन करवाया, जिससे सबके अज्ञान का नाश एवं ज्ञान की वृद्धि हुई, यह श्रुताध्ययन का साक्षात् फल है।

पूज्य गुरुवर की प्रेरणा से प्रायः कर सभी वर्षायोगों में एक न एक आचार्य प्रणीत शास्त्र का प्रकाशन होता ही था। यह बात सभी जानते थे इसलिए गुरुवर का मौन होने पर भी श्रावकों ने कई बार उनके चरणों में निवेदन किया—गुरुवर, अबकी बार कौन-सा ग्रन्थ प्रकाशित होना है। गुरुवर का मौन था इसलिए वे कुछ उत्तर नहीं देते थे। एक दिन पण्डित विद्याकुमार जी सेठी ने निवेदन किया—गुरुदेव मूलाचार प्रदीप की प्रतियाँ अनुपलब्ध हैं, आपकी अनुकम्पा और आज्ञा हो तो आचार्यप्रवर भट्टारक सकलकीर्ति महाराज द्वारा विरचित मूलाचार प्रदीप का प्रकाशन अपने यहीं से हो जाए। गुरुवर ने पण्डित जी को ग्रन्थ प्रकाशन का शुभाशीष दे दिया। आशीर्वाद पाते ही पण्डित जी ने ग्रन्थ के सम्पादन का कार्य पूज्या आर्यिकाश्री (विशालमति माताजी) को सौंपना चाहा, लेकिन आर्यिकाश्री ने स्वयं सम्पादन का कार्य न लेकर पण्डित जी की सम्पादन में सहायता करने के लिए ही हाँ भरी, क्योंकि उन्होंने सोचा कि इस बहाने से ग्रन्थ का अध्ययन भी हो जाएगा और सम्पादन में सहयोग करके जिनवाणी की सेवा करने का अवसर प्राप्त होगा। आर्यिकाश्री ने इस ग्रन्थ की पण्डित लालाराम जी द्वारा अनूदित टीका का अध्ययन शुरू किया। उनके अध्ययन करने का उद्देश्य मुख्य रूप से मूलाचार के अनुसार अपनी चर्या बनाने का था, इसलिए जब वे इसको पढ़ने बैठतीं तो सब कुछ भूल जाती थीं, वे उसी में खो जाती थीं अर्थात् मूलाचार रूप ही हो जाती थीं। एक दिन उन्होंने अपनी अनुजा आर्यिका विज्ञानमति अर्थात् मुझसे मूलाचार की बातें बताते हुए बोलीं—माता जी, सुनो अपने को हिलते हुए पत्थर पर पैर नहीं रखना चाहिए। हिलते-डुलते हुए पाटा, चौकी, तख्त आदि पर बैठना/सोना नहीं चाहिए और न ही हिलती हुई चौकी पर शास्त्रादि ही रखना चाहिए और न ही शास्त्र



विराजमान कर पढ़ना ही चाहिए। मैंने पूछा—पूज्या आर्यिकाश्री ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए? ऐसा पूछने पर वे बोलीं—माता जी, हिलते हुए पाटा आदि का प्रयोग करने से हिंसा होती है। उनके ऊपर पैर आदि रखते ही जब वह हिलता है तब उसके नीचे स्थित जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं चौकी, पाटा आदि का पाया जब हिलता है, तब उसके नीचे से निकलने वाले जीव उस पाए के नीचे दबकर मृत्यु की गोद में चले जाते हैं। इससे हमारे अहिंसा महाव्रत में महान् दोष उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अपने को अपनी पुस्तक ग्रन्थ, कॉपी, लेखनी आदि कोई भी वस्तु किसी को भेजकर नहीं मँगवाना चाहिए। जैसे—अपनी प्रतिक्रमण की पुस्तक किसी जगह पर रखी है तो किसी से कहना कि मेरी पुस्तक वहाँ रखी है, जाओ उठाकर ले आओ। चाहे प्राणान्त भी हो रहा हो तो भी हमें किसी असंयमी को जाओ, आओ, बैठो आदि नहीं कहना चाहिए। इससे अपने को ईर्यापथ समिति में दोष लगता है, क्योंकि वह बिना देखे जाएगा, आएगा, उठाएगा इसमें जितनी हिंसा होगी, उसका पाप अपने को भी लगेगा। मैं आर्यिकाश्री की सारी बातें सुनकर विस्मय से उन्हें देखती रही कि हमारी पूज्य माता जी ग्रन्थाध्ययन से अपनी चर्या को/व्रतों को तो सुधारती ही हैं, साथ ही अपने सम्पर्क में आने वालों को और साथ में रहने वाले हम लोगों को भी उसी अनुरूप चलने के लिए प्रेरित करती हैं। स्वयं पाप से बचती हैं और हम लोगों को भी पापों से बचाती हैं। धन्य हो आर्यिका माता जी को, आपके चरणों में हमारा बारम्बार प्रणाम—प्रणाम।

वर्षायोग में भाद्रपद का शुक्ल पक्ष प्रारम्भ हो चुका था। इन दिनों में लोग विशेष रूप से धर्मध्यान करते हैं। पूज्य आर्यिकाश्री की प्रेरणा से मारवाड़ की आग उगलती गर्मी में भी कई श्रावकों ने दशलक्षण में १०-१० उपवास तो कई ने पंचमेरु के ५-५ उपवास किए तो कई लोगों ने अनन्त जी का व्रत किया। तो कई लोगों ने रत्नत्रय का तेला करने का साहस बनाया था। यहाँ लगभग १८ वर्ष की एक बालिका ने भी १० उपवास करके जवान और प्रौढ़ उम्र लोगों को संदेश दिया था कि धर्म करने के लिए उम्र का कोई सम्बन्ध नहीं है, धर्म पचपन में ही नहीं, बचपन में भी हो सकता है। उन

सबकी साधना को देखकर आर्यिकाश्री ने भी सोचा मैं भी रत्नत्रय की आराधना करूँ। इस व्रत को १००८ भगवान् मल्लिनाथ स्वामी ने पूर्व भव में धारण किया था। फलस्वरूप उन्हें तीर्थंकर पद प्राप्त हुआ। आर्यिकाश्री ने इस पवित्र व्रत को करने की भावना गुरुवर के चरणों में रखी। गुरुवर ने दो उपवास तक तो आशीर्वाद दे दिया, किन्तु तीसरे दिन उपवास करने के लिए मना कर दिया तो आपको बहुत दुख हुआ। उन्होंने बार-बार गुरुवर से-मेरा स्वास्थ्य अच्छा है, उपवासों में मुझे कोई तकलीफ नहीं हैं, आपके शुभाशीष से आज भी उपवास अच्छा हो जाएगा आदि-आदि कहते हुए पुनः पुनः गुरुवर से प्रार्थना की, विनय किया पर गुरुदेव ने मना कर दिया सो मना ही था, इसलिए आप उत्कृष्ट भावना होने के बाद भी गुरुवर की आज्ञा का पालन करने के लिए बिना क्लेश और विकल्प किए आहार-चर्या पर निकल गई। वास्तव में योग्य शिष्य को अपनी भावना से बढ़कर गुरु की भावना/आज्ञा होती है। जिसने गुरु के चरणों में अपना समर्पण किया है, उसके जीवन में गुरु-आज्ञा सर्वोपरि और श्लाघनीय होती है। पूज्या आर्यिकाश्री भी वर्षों से भायी गई भावनाओं को तिलांजलि देकर भी गुरु आदेश का पालन पर प्रसन्न रहीं। हमारे अन्दर भी गुरु-आज्ञा पालन का अद्भुत सम्बल आए। इसी भावना से नमन-नमन।



यहाँ से गुरुवर का विहार कुचामन सिटी की तरफ हुआ। वहाँ से सुजानगढ़ पहुँचे, जहाँ विशाल रत्न चैत्यालय हैं, जिसके दर्शन करके सभी का मन प्रफुल्लित हो गया। १५-२० दिन तक यहाँ संघ का प्रवास रहा। वहाँ के सरस्वती भण्डार के दर्शन करके तो अलौकिक आनन्द आया। यहाँ भी पूज्य आर्यिकाश्री ने कई ग्रन्थों का स्वाध्याय किया। यहाँ से विहार करके गुरुवर सीकर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही गुरुवर का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ने लगा। गुरुवर को सर्दी का प्रकोप हो गया था। जिससे उन्हें श्वास लेने में तकलीफ होने लगी थी। पूज्य आर्यिकाश्री ने चिकित्सकों, वैद्यों को बुलाकर दिखाया। वैद्यों ने शुद्ध प्रासुक औषधि की बात कही पर गुरुवर ने औषधि लेना स्वीकार नहीं किया। जिससे स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया।

जब गुरुवर ने औषधि के लिए मना कर दिया तो भी पूज्य आर्यिकाश्री ने शुद्ध घरेलु औषधि दिखाकर आहार में दिलवाने का प्रयास किया किन्तु उन्होंने कोई भी औषधि स्वीकार नहीं की तो उन्होंने श्रावकों को जयपुर से सुशील जी वैद्य को बुलाने की सलाह दी। ताकि उनके आ जाने से बाह्य उपचार के माध्यम से रोग शमन हो सके। वैद्य जी आ भी गए लेकिन गुरुवर ने उनका बाह्य उपचार लेने के लिए भी मना कर दिया। तब आर्यिकाश्री को बहुत चिंता होने लगी। लेकिन उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था। (गुरुवर की स्थिति नाजुक देखकर पूज्य आर्यिकाश्री ने समीपस्थ ग्राम में विराजित मुनि संघ को समाचार दिए कि गुरुवर की समाधि का समय सामने आया—सा लगता है, इसलिए आप यहाँ पधार कर सहयोग करने की कृपा करें। मुनिसंघ ने आर्यिकाश्री की प्रार्थना स्वीकार करके, आने की तैयारी कर ली लेकिन कर्म योग से वे आ नहीं पाए उसके पहले ही गुरुवर का समाधिमरण हो गया।) गुरुवर की हालत देखकर आर्यिकाश्री ने सोचा पता नहीं कब गुरुवर इस जड़ देह को छोड़कर प्रयाण कर जाए। इसलिए मुझे मोह छोड़कर उनके अन्तिम क्षणों को सुधारने का प्रयास करना चाहिए। अब हमें उनके सामने संघ, समाज आदि की चर्चाएँ छोड़कर दिन-रात बारह भावना, वैराग्य भावना, समाधिमरण आदि पाठ करना चाहिए तथा स्वाध्याय करते हुए उन्हें सभी तरह से निर्विकल्प तो कर देना चाहिए।

एक दिन आर्यिकाश्री गुरुवर से बोलीं—गुरुवर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, जीवन का कोई भरोसा नहीं है। यह शरीर दिन-प्रतिदिन जवाब देता जा रहा है अर्थात् यह रत्नत्रय में सहायता देने को तैयार नहीं है, अतः हम लोग आपको पाठ सुनाकर आपकी सेवा करना चाहते हैं। उन्होंने सहज रूप से पाठ सुनाने के लिए हाँ कह दिया। पाठ और स्वाध्याय के बाद आर्यिकाश्री को लगा कि गुरुवर कुछ बोलना चाह रहे हैं, लेकिन उनके गले में कफ अटक जाने के कारण उनसे बोला नहीं जा रहा है, इसलिए वे कुछ संकेत दे रहे थे, उसको आर्यिकाश्री क्षणभर में ही समझ गई और जल्दी से संकेत देकर पट्टी और बत्ती मंगवा दी, तब गुरुवर ने स्वयं समाधिपूर्वक मरण के लिए जो त्याग उन्होंने मन में किया था वह प्रत्याख्यान पट्टी पर

लिखकर बताया। संघ तथा समाज से क्षमायाचना का संकेत भी उन्होंने पट्टी पर लिख दिया। पट्टी पर लिखे संकेत को पढ़कर आर्यिकाश्री संतुष्ट हुई कि गुरुवर अपने आप में सावधान हैं। वे स्वयं ही समाधिमरण की पूर्ण रूप से तैयारी कर चुके हैं, फिर भी आर्यिकाश्री की आँखों में आँसू आ गए पर उन्होंने अपने आँसुओं को आँखों में ही रोक लिया। संयमी जीव इन्द्रिय-विजेता होते हैं, वे जब चाहें आँखों में से पानी निकाल सकते हैं और जब चाहे निकलते हुए पानी को वहीं रोक सकते हैं, उन्होंने सोचा यदि गुरुवर को मेरे आँसू दिख गए तो निश्चित रूप से विकल्प उत्पन्न होंगे क्योंकि मुझे जैनधर्म की बारहखड़ी से लेकर आज तक सभी कुछ उन्होंने ही दिया है, उनका मेरे प्रति असीम धर्मानुराग है और मेरा तो उनसे अति मोह है। इसलिए उन्होंने साहस के साथ गुरुवर से जाने-अनजाने में किए गए अपराधों की क्षमा माँगी, साथ ही संघस्थ सभी सदस्यों की तरफ से भी क्षमायाचना की। जो विधि आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार के सल्लेखना अधिकार में लिखी है, वैसा ही यहाँ हो रहा था, सारा दृश्य आगमिक विधि से संवेदनशीलता लिए हुए था। उसी परम्परा का निर्वाह गुरुवर ने और पूज्य आर्यिकाश्री ने किया था। वैसे भी गुरुवर पूर्व में ही हम लोगों को कह चुके थे कि तुम सभी को आर्यिकाश्री के साथ ही रहना है और उन्हीं की आज्ञा का पालन करना है तथा उन्हीं के निर्देशनों को ध्यान में रखते हुए धर्मध्यान करना है। समय-समय पर पूज्या आर्यिकाश्री को भी हम सभी के जीवन-विकास के संदर्भ में सूत्रात्मक तरीके से संकेत देते रहते थे कि तुम्हें ही इन बहनों को क्रमशः मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ाते हुए आर्यिका पद तक पहुँचाना है। अब आज अंतिम बार भी विशेष रूप से गुरुवर ने पूज्या आर्यिकाश्री को संघस्थ सभी सदस्यों के निर्वाह और निर्माण का संकेत दिया था।

गुरुवर का स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा था। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल के सभी आवश्यकों में सहभागी बनते हुए पूज्या आर्यिकाश्री गुरुवर की सेवा में तत्पर थीं। वे प्रसन्नतापूर्वक देववन्दना, प्रतिक्रमण, स्तवन आदि सभी गुरुवर के साथ ही करती थीं। आज भी वे गुरुवर के साथ

दैवसिक प्रतिक्रमणादि करके अपनी वसतिका में लौटी थीं, पर आज उनका मन ज्यादा ही व्यग्र था, वह न पाठ में लग रहा था, न सामायिक में, बस बार-बार गुरु के पास ही जा रहा था। उनके आरोग्य सम्बन्धी चिन्ता में ही लीन था। यह आर्तध्यान नहीं है वरन् धर्मध्यान है, क्योंकि इसमें उद्देश्य उनके रत्नत्रय की सुरक्षा अथवा रत्नत्रय के साथ समाधिपूर्वक मरण हो यह बना हुआ था। उन्हें चारों तरफ से आवाजें सुनाई दे रही थीं। यद्यपि कोई कुछ भी नहीं कह रहा था, लेकिन उन्हें ऐसी अनुभूति हो रही थी, कि गुरुवर का स्वास्थ्य अधिक गिर गया है, उनके जीवन की अंतिम घड़ियाँ आ चुकी हैं, तुम यहाँ क्या कर रही हो, जाओ जल्दी से उन्हें णमोकार मंत्र सुनाओ, उन्हें सम्बोधन दो ताकि उनके जीवन भर की साधना रत्नत्रय आराधना उनके साथ में जावे, वे बोधि के साथ समाधि करें अर्थात् पण्डितमरण कर सकें। उन्होंने इस आवाज को सुनकर बहनों से संकेत करके कहा—जरा देखो कोई गुरुवर के समाचार लेकर आया है क्या? उनका पूर्वाभास सत्य निकला। लगभग नौ बजे कुछ श्रावक हमारी वसतिका में आए और बहनों को बुलाकर गुरुवर की गम्भीर हालत के बारे में बताया तो बहनों ने पूज्या आर्यिकाश्री को यथावत् गुरुवर के स्वास्थ्य के बारे में बता दिया। गुरुवर के स्वास्थ्य की बात सुनकर आर्यिकाश्री तत्काल पिच्छी से परिमार्जन करती हुई गुरुवर की वसतिका में पहुँच गयीं। गुरुवर और हमारी वसतिका के बीच में केवल जिनालय ही था, इसलिए वसतिका के बाहर जाने की आवश्यकता नहीं थी। यद्यपि रात्रि में आर्यिकाएँ/स्त्रियाँ मुनिराज की वसतिका में नहीं जाती हैं, लेकिन यहाँ विशेष कारण था, गुरुवर की समाधि का समय था, कोई अन्य साधु उन्हें सम्बोधन करने वाला नहीं था, इसलिए आर्यिकाश्री दोनों आर्यिकाओं तथा बहनों के साथ पहुँच गई थीं। गुरुवर की हालत देखकर आर्यिकाश्री तथा छोटी आर्यिका श्री विद्युत्मती माता जी समझ गई कि गुरुवर अब ज्यादा समय नहीं निकालेंगे, अब शायद इनकी अन्तिम घड़ियाँ चल रही हैं, इसलिए उन्होंने गुरुवर से औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण करने की प्रार्थना की। गुरुवर ने तत्काल प्रतिक्रमण करने के लिए सिर हिलाकर हाँ भर दी। मानो वे यह इंतजार ही कर रहे हो, कि कोई मुझे

मरण के समय में जो किया जाता है, वह औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण करवा दें, आहार आदि का त्याग वे पहले ही कर चुके थे। प्रतिक्रमण में जब सिद्ध भक्ति और प्रतिक्रमण भक्ति पूर्ण हुई निष्ठितकरण वीरभक्ति के कायोत्सर्ग का समय आया। गुरुवर कायोत्सर्ग में लीन हो गए, लेकिन आर्यिकाश्री और हम लोग गुरुवर को टकटकी लगाकर देख रहे थे, उन्हें कायोत्सर्ग में ही २-३ हिचकियाँ आयी और वे इस जड़ शरीर को छोड़कर प्रयाण कर गए। पहली हिचकी आते ही हम सबने तथा पास बैठे हुए श्रावकों ने णमोकार मंत्र का जाप करना शुरू कर दिया, इस प्रकार पूज्य गुरुवर ने णमोकार मंत्र को सुनते-सुनते बोधि के साथ पण्डितमरण को प्राप्त किया।

पूज्य गुरुवर के जैसे ही प्राण निकले आर्यिकाश्री की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। अपने उपकारी का वियोग होने पर किसको दुख नहीं होगा। सामान्य से इस जड़ शरीर का पालन-पोषण और इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वालों का ही वियोग हो जावे तो व्यक्ति रोता है, बिलखता है, बेहाल हो जाता है, फिर जिसने आत्मोन्नति के मार्ग पर अंगुली पकड़कर एक-एक कदम चलाया हो, गिरने से बचाया हो, सम्हाला हो, माता-पिता दोनों बनकर प्रत्येक कार्य करना सिखाया हो, उसके वियोग में यदि दुख हो तो विस्मय नहीं है। यद्यपि आर्यिकाश्री अनित्यादि १२ भावनाओं का चिंतन करती जा रही थी, वे यह भी सोच रही थी कि जिसका संयोग होता है, उसका वियोग निश्चित रूप से होता है। मौत अकाट्य सत्य है, इसे टाला नहीं जा सकता है। आदि-आदि सोचकर आँसुओं को रोकने की कोशिश कर रही थी, लेकिन आँसू तो रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। वे तो उल्टे बढ़ते ही जा रहे थे। आखिर व्यक्ति कितनी देर तक रो सकता है अधिक से अधिक एक अंतर्मुहूर्त तक उसके बाद उसमें कोई न कोई परिवर्तन अवश्य होगा। आर्यिकाश्री ने अपने मन को समझाया तो थोड़ी देर आँसू रुक गए, किन्तु जिसने वर्षों से जिनकी छत्र-छाया में अपनी आत्मा को साधनारत बनाया हो, वह साया/उन गुरुवर की छाया आज उनके ऊपर से उठ गई थी, इसलिए अब वह कैसे आगे का मार्ग पूरा करेगी, ऐसे-ऐसे अनेक विचार आँखों से आँसुओं की धारा बहा देते थे। वे पुनः मन को समझाती

लेकिन मन पुनः पुनः उन्हीं विचारों में डूब जाता था। उन्हें देखकर संघस्थ सभी सदस्यों के भी आँसू आ जाते थे, फिर भी हम लोग सभी निश्चिंत थे, क्योंकि हमें विश्वास था, कि गुरुवर के चले जाने पर भी हमारा मार्ग प्रशस्त करने वाली आर्यिकाश्री हमारे सामने हैं। उनके आँचल में रहकर हम सभी सुरक्षित हैं, आज की पूरी रात रोते चुप होते मुश्किल से बीती थी, दूसरे दिन आर्यिकाश्री के साथ सभी ने उपवास किया था। फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को गुरुवर का समाधिमरण हुआ रात्रि होने के कारण नवमी के दिन उनकी देह का संस्कार दीवान जी की नसियाँ में ही किया गया था।



जब से गुरुवर का स्वास्थ्य बिगड़ा था तभी से पूज्या आर्यिकाश्री आहार ढंग से नहीं कर पा रही थीं अर्थात् इस औदारिक शरीर को चलाने के लिए जितने आहार की आवश्यकता थी, उतना नहीं ले पा रही थीं, क्योंकि आहार करते समय भी उन्हें चिंता लगी रहती थी, कि पीछे कहीं कोई अनहोनी नहीं हो जावे संघ में बड़ी होने के कारण गुरुवर के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी उन्हीं की थी, इसलिए वे कभी आधा तो कभी अल्पाहार करके ही आ जाती थीं। अतः शरीर आहार की कमी और उसके साथ चिंता के कारण कृश हो गया था, अब गुरुवर की समाधि हो जाने से उनमें रही-सही शक्ति भी समाप्त-सी हो गई थी। फिर भी आज उनका उपवास था, क्योंकि ऐसी ही आगम की आज्ञा है। दूसरा दिन आने-जाने वालों के साथ गुरुवर की चर्चा करते-करते और गुरु के वियोग की अनुभूति करते हुए निकला। उस समय किसी को भी विश्वास नहीं हो रहा था कि अचानक ७-८ दिन में ऐसा भी हो सकता है, क्योंकि गुरुवर को कहीं कोई बीमारी नहीं थी इसलिए भी सबको अधिक दुख हो रहा था।

अष्टमी को तो पूरी रात्रि जागते-जागते ही निकली थी। आज नवमी को जैसे-तैसे करके संघस्थ बहनों और आर्यिकाओं की प्रार्थना से आर्यिकाश्री की थोड़ी नींद लगी तो स्वप्न में स्वर्गों के विमान आते हुए दिखे, आकाश से देवों का आगमन दिखा तो उन्होंने हड़बड़ाकर घबराते हुए उठकर देखा तो सामने कुछ नहीं था, ऐसा लगभग १०-१२ दिन तक होता रहा था।

पंचम गुणस्थान वालों के राग हो या द्वेष १५ दिन से ज्यादा नहीं रह सकता है। पूज्या आर्यिका माता जी का मन भी १०-१२ दिन में पूर्णतः शान्त हो गया था। बाहर से भी और भीतर से भी जिससे सीकर के श्रावकों को धर्मोपदेश मिलने लगा था। अष्टाह्निक पर्व सामने आने से आर्यिकाश्री के उपदेशों से प्रभावित होकर समाज ने सिद्धचक्र महामण्डल विधान करवाने की भावना रखी। आर्यिकाश्री के आशीर्वाद से सिद्धचक्र मण्डल विधान चल रहा था। उसी बीच में गुरुवर की स्मृति-स्वरूप पूज्य गुरुवर के जीवन का परिचय एवं उनके भक्तों के द्वारा लिखे गए संस्मरणों के प्रकाशन की भूमिका बनी थी। उन संस्मरणों के साथ ही विद्वानों के लिए भी वह स्मृति ग्रन्थ उपयोगी बन सके। इसके लिए बृहद्द्रव्यसंग्रह का भी प्रकाशन करने की सलाह पण्डितों ने दी थी, इसलिए उस ग्रन्थ के प्रथम भाग में गुरुवर के कर्तृत्व तथा व्यक्तित्व रखा गया तथा दूसरे भाग में बृहद्द्रव्यसंग्रह महाग्रन्थ प्रकाशन करने का निर्णय किया गया था, इसके संकलन का कार्य मुख्य रूप से आर्यिकाश्री ने और सम्पादन का कार्य पण्डित जवाहरलाल जी भीण्डर तथा पण्डित चेतनप्रकाश जी पाटनी किशनगढ़ वर्तमान में जोधपुर निवासी ने किया था।

एक दिन आर्यिकाश्री स्वाध्याय करते-करते बोली-देखो अपने देखते ही देखते गुरुवर चले गए अपन लोग उनको नहीं रोक पाए। वास्तव में आयु पूर्ण होने के बाद कौन-किसको मरने से बचा सकता है। जब तीर्थंकर भगवान् भी किसी को मरने से नहीं बचा सकते तो तुम और हम कौन से खेत की मूली हैं। अब हम गुरुवर की स्मृति बनाए रखने के लिए एक नियम लेते हैं। संघस्थ सभी सदस्य उनकी बात को अर्थात् नियम को पालने की स्वीकृति देते हुए हाथ जोड़कर नियम बताने का इंतजार करने लगे। आर्यिकाश्री सबकी भावना देखते हुए बोलीं-अपन लोग तली हुई भोग सामग्री को खाने का त्याग कर देते हैं, क्योंकि तली हुई वस्तुएँ शरीर के लिए अति आवश्यक नहीं हैं और अपने व्रतों की रक्षा के लिए इनका त्याग करना आवश्यक भी है। तले हुए पदार्थ मात्र रसनेन्द्रिय की पुष्टि करने वाले होते हैं। पदार्थों को तल देने से उनकी पौष्टिकता समाप्त हो जाती है



और गरिष्ठता बढ़ जाती है आदि-आदि तले पदार्थों से होने वाली हानियों को बताया, जिससे भविष्य में कभी त्याग के प्रति अनुत्साह न हो। आर्यिकाश्री की बात को सुनकर लगभग सभी सदस्यों ने तले हुए पदार्थों को खाने का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया।



पूज्य गुरुवर की समाधि के कुछ दिनों बाद ही परिचित-अपरिचित साधु-संतों के समाचार आने लगे, कि आप हमारे संघ में सम्मिलित होकर रत्नत्रय की आराधना करें। हम सम्मानपूर्वक आपको अपने संघ में स्थान देंगे, किन्तु आर्यिकाश्री का मन पहले से ही किसी पुरुषवर्ग के संघ में रहने का नहीं था, क्योंकि उनकी शुरु से ही धारणा थी कि पुरुषों के साथ पुरुषों को तथा स्त्रियों के साथ स्त्रियों को रहना चाहिए। उन्हीं की आपस में मित्रता आना-जाना, हँसी-मजाक तथा आपसी व्यवहार होना चाहिए। इससे गृहस्थों का ब्रह्मचर्याणुव्रत तथा महाव्रतियों के ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन अच्छी तरह से होता है, इसलिए उन्होंने किसी भी संघ को कोई उत्तर नहीं दिया था और न ही विहार करके उनके संघ में प्रवेश ही किया था। फिर भी आर्यिकाश्री को लगता था कि जीवन में एक गुरु तो अवश्य होना ही चाहिए, चाहे हम उनके साथ रहें या नहीं रहें, उनका संरक्षण और समय-समय पर उनके निर्देशन तथा आशीर्वाद तो आवश्यक है ही और स्त्रीवर्ग के लिए तो वह आवश्यक ही नहीं अति-आवश्यक है। दूसरी बात यदि मुझे किसी गुरु की शरण में जाना ही है तो उनके संरक्षण में रहना है, प्रायश्चित्तादि ग्रहण करना ही है तो मैं कहीं और क्यों जाऊँ मैं वहीं जाऊँ जो हमारे गुरुवर पूज्य विवेकसागर जी महाराज के गुरुभाई और पूज्य दादा गुरु १०८ आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य हैं, जिनको स्वयं गुरुवर ने ही आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित किया है, जिनकी चर्या आगम के अनुकूल है और जो आर्यिकाओं के गणधर बनने के योग्य हैं, इसमें हमारी गुरु-परम्परा भी एक रहेगी और अपने वाले तो अपने ही होते हैं, चाहे वे गलती करने पर डाँट दें, तिरस्कार कर दें, पर समय पर आवश्यकता पड़ने पर वे ही काम आते हैं, ऐसी नीति है इसलिए मैं यदि कहीं जाऊँगी

तो उन्हीं गुरुवर की शरण में जाऊँगी और कहीं नहीं। इस प्रकार विचार बनाकर उन्होंने अपनी बात संघस्थ सदस्यों के सामने रखी। संघस्थ सदस्यों ने आर्यिकाश्री की बात को स्वीकार किया, जिससे आर्यिकाश्री के विचारों को प्रोत्साहन मिला। यहाँ से आर्यिकाश्री ने अपने पूर्व परिचित कूकनवाली, मारोठ, नावा आदि स्थानों पर होते हुए अजमेर, किशनगढ़ की तरफ विहार किया। यहाँ पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के बहुमात्रा में भक्त हैं, क्योंकि उनकी शिक्षा-दीक्षा और पूज्य गुरुवर ज्ञानसागर जी महाराज की समाधि भी यहीं नसीराबाद में हुई थी। पूज्य आर्यिकाश्री के इस क्षेत्र में आते ही यहाँ के लोगों ने बड़े सम्मान से उन्हें अपने नगर में प्रवेश करवाया और गुरुवर की चर्चा सम्बन्धी बातें बताने लगे। समय-समय पर ही नहीं लगभग प्रतिदिन यहाँ दो-चार श्रावक तो आर्यिकाश्री को आचार्यश्री की बातें सुना ही देते थे, इससे आर्यिकाश्री के भाव जल्दी से जल्दी गुरुवर के दर्शन एवं उनके चरणों में जीवन समर्पण करने के होने लगे। एक दिन किसी श्रावक ने बताया कि पूज्य आचार्यश्री ने सिद्धक्षेत्र नयनागिरि में २३ दीक्षाएँ दी हैं, उनमें ग्यारह दीक्षाएँ बहनों की हुई हैं अर्थात् ११ आर्यिका दीक्षा हुई है। लेकिन वे उन्हें अपने साथ संघ में नहीं रखेंगे। उनका स्वतंत्र संघ बनाकर कुछ ही दिनों में अलग विहार करवा देंगे। यह समाचार सुनकर आर्यिकाश्री के दिल में गुरुवर के प्रति और भी विशेष भक्ति जाग्रत हुई, क्योंकि ऐसे ही विचार आर्यिकाश्री के भी थे। वैसे तो आर्यिकाश्री ने जब ब्रह्मचारिणी अवस्था में सबसे पहले मदनगंज-किशनगढ़ में पूज्य गुरुवर के दर्शन किए एवं आहार दिया था, तभी से वे उनकी चर्चा से प्रभावित थी, किन्तु उसके बाद उन्हें पुनः दर्शन का योग नहीं मिल पाया था, इसलिए बाह्य में बहुत दूरी हो गयी थी, पर अन्तरंग में भक्ति तो उसी दिन से बनी हुई थी।

अभी संघ में सबसे बड़ी खुद आर्यिकाश्री, दूसरी आर्यिका विज्ञानमति जी, तीसरी आर्यिका विद्युत्मति जी तथा ब्र. कंचन दीदी ब्र. संतोष दीदी, ब्र. मधुदीदी जो आर्यिकाश्री की दीक्षा के समय से साथ थीं और ब्र. ज्ञानानन्द जी जो वयोवृद्ध थे गुरुवर के साथ वाले थे। इस प्रकार सात सदस्य थे।

यद्यपि आर्यिकाश्री को संघ में पुरुष वर्ग को रखना कतई पसन्द नहीं था, लेकिन ब्रह्मचारी जी गुरुवर के अनन्य भक्त थे। अब वे इस वृद्धावस्था में कहाँ जाएँगे ऐसा सोचकर रख लिया था। अजमेर, किशनगढ़ तथा नसीराबाद की समाज के लोगों ने देखा कि यह आर्यिका संघ हमारे ही गुरुवर के शिष्य की शिष्याएँ हैं अर्थात् आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के द्वितीय शिष्य आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज की शिष्याएँ हैं। गुरुवर की ही परम्परा का अनुशरण करने वाली हैं तो वहाँ के पूज्य दादागुरु के अनन्य भक्त जिनकी धारणा गुरुवर के द्वारा दी गयी युक्ति, तर्क और स्याद्वादमय शैली से तत्त्व को यथार्थ समझने के बाद ही समाप्त हुई थी, कि पंचमकाल में सच्चे साधु नहीं होते हैं, इस युग में जितने भी साधु होते हैं, वे सब द्रव्यलिंगी होते हैं। उन्होंने तभी से गुरुओं के चरणों में अपना मस्तक झुकाना प्रारम्भ किया था। यहाँ ब्रह्मचारी विद्याधर की मुनिदीक्षा, गुरुसेवा, साधना, निस्पृहता आदि देखकर उनकी आत्मा प्रसन्नता से कह उठी थी, कि पंचमकाल में भी भावलिंगी संत होते हैं और उनका जयकार लगाने के लिए मुखर हो उठी थी। उन्होंने आर्यिकाश्री की तीक्ष्ण बुद्धि के बारे में सुनकर सोचा कि आचार्य महाराज की परम्परा को अर्थात् अनेकान्त धर्म को आगे बढ़ाने में यह एक सशक्त साधन बन सकती है, यदि इन्हें समयसार आदि का सही-सही ज्ञान हो जावे तो इसलिए हमें इनके साथ बैठकर स्वाध्याय करना चाहिए। ऐसा विचार कर कुछ पण्डित, कुछ तत्त्व जिज्ञासु तो कुछ भेड़िए की चाल चलने वाले पूज्य आर्यिकाश्री के चरणों में आकर कुछ-कुछ शंकाएँ पूछने लगे। जिन शंकाओं का समाधान वे आचार्य महाराज से करके संतुष्ट हो चुके थे, उन्हीं शंकाओं को आर्यिकाश्री के सामने रखने लगे, जब आर्यिकाश्री अपने स्वाध्याय के अनुसार उन प्रश्नों का उत्तर देतीं, तब वे आचार्य महाराज के द्वारा बताए गए समाधानों और युक्तियों को बताते, आर्यिकाश्री उनमें से कुछ को नोट कर लेती थीं और शेष को अपने मस्तिष्क में बिठाती थीं। इस प्रकार ग्रीष्मकाल में आर्यिकाश्री का समय अजमेर, किशनगढ़ और नसीराबाद में ज्ञानियों के साथ चर्चा करते हुए आर्यिकाश्री का समय आनन्द से व्यतीत हुआ। चर्चा

के समय में तो वे सब कुछ भूल जाती थीं। आर्यिकाश्री भी दीक्षा गुरु की परम्परा के अनुसार एक ही स्थान पर बहुत ज्यादा नहीं रुकती थीं। इसलिए तीनों ही स्थान वालों को लाभ मिल गया था। तीनों ही नगर वालों ने पूज्या आर्यिकाश्री को वर्षायोग अपने नगर में करवाने के लिए श्रीफल भेंट किए थे। उन सबका भाव था कि पूज्या आर्यिकाश्री के मुखारविन्द से झरने वाला धर्मामृत हमको पीने के लिए मिले। जिससे हम भी पापों से बच जाएँगे और हमारी पीढ़ियाँ संस्कारित हो जाएँगी, आबालवृद्ध सभी धर्म करना समझ जाएँगे, इन्हीं भावनाओं से तीनों स्थान वाले बार-बार आर्यिकाश्री के चरणों में प्रार्थना करने आ रहे थे, लेकिन आर्यिकाश्री किसी को कोई निर्णयात्मक उत्तर नहीं दे रहीं थीं। जैन साधु कभी वचनबद्ध नहीं होते हैं, क्योंकि आगे भविष्य में कब-कौन-सी परिस्थिति सामने आ जावे और वे यदि दिए हुए वचन के अनुसार कार्य नहीं कर पावें तो उनके वचन झूठे हो जाते हैं। साधु सत्य महाव्रती होते हैं। वे झूठ कैसे बोल सकते हैं इसलिए पूज्या आर्यिकाश्री ने न नसीराबाद वालों को कुछ कहा था और न ही किशनगढ़ वालों को। अजमेर वालों का भाव विशेष होते हुए भी इन दोनों नगर वालों का जोर देखकर वे माध्यस्थ हो गए। उनका सबको एक ही उत्तर था कि समय आने पर जैसा होगा वैसा देखा जाएगा। जिसके भाग्य में लिखा होगा वहीं वर्षायोग होगा।

दोनों ही नगर वालों की भक्ति में कोई अन्तर नहीं था। विशेष यही था, कि नसीराबाद की पूरी समाज एकत्रित होकर वर्षायोग के लिए प्रयास कर रही थी और किशनगढ़ के मुट्ठी भर लोग वर्षायोग का भाव बनाने वाले थे। वर्षायोग का समय निकट आता जा रहा था। पूज्या आर्यिकाश्री का यह प्रथम वर्षायोग था, जिसका निर्णय उन्हें केवल अपने बल पर ही करना था। आज तक गुरुवर के चरणों की छत्र-छाया में रहने से उन्हें कुछ भी नहीं करना पड़ता था। वास्तव में बड़ों का साया जिसके सिर पर होता है, वह कितना भाग्यशाली और किस्मत वाला होता है, यह बात अब पूज्या आर्यिकाश्री को समझ में आ रही थी, फिर भी उन्हें विशेष चिन्ता नहीं थी क्योंकि वे वर्षों से गुरुवर के चरणों में रहकर उनके अनुभवों से सभी कुछ

सीख चुकी थीं। नसीराबाद से संघ का विहार मोराजड़ी की तरफ हुआ। यह किशनगढ़ और नसीराबाद के लगभग बीच में है। यहाँ उपसर्ग-विजेता भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा है। यहीं पूज्या आर्यिकाश्री ने वर्षायोग के लिए स्थान/रास्ता चुनने का निर्णय किया था। भक्तों की दृष्टि से नसीराबाद समाज का पलड़ा भारी था, किशनगढ़ वालों को भी विश्वास था कि वर्षायोग नसीराबाद वालों को ही मिलेगा। और नसीराबाद वाले तो पूर्ण निश्चित थे कि इस वर्षायोग का लाभ तो हमें ही मिलने वाला है। पूज्या आर्यिकाश्री की भावनाओं का झुकाव भी नसीराबाद की तरफ ही था। दोपहर में विहार के पूर्व वे भगवान् के दर्शन करने गईं। उन्होंने भगवान् से वर्षायोग सानन्द सम्पन्न होने की प्रार्थना करके पूछा भगवन्! हम लोग किस तरफ चले जाएँ। यद्यपि वीतरागी भगवान् बोलते नहीं हैं, पर भक्त अपनी भक्ति के वशीभूत होकर उनसे सब कुछ पूछ लेता है। इसी भक्ति के वशीभूत हो आर्यिकाश्री ने भी पूछ लिया। तभी न जाने क्यों एक दम उनके अन्दर से आवाज आई किशनगढ़ वाले कम हैं, तो क्या हो गया क्या संख्या कम होने से भक्ति भी कभी कम होती है। भक्ति का कोई तोल नहीं होता है, भक्ति तो अतुलनीय होती है। तुझे किशनगढ़ जाना चाहिए। अपने अंतरंग की आभास-मय ध्वनि को सुनकर आर्यिकाश्री ने किशनगढ़ की तरफ ही संसंघ विहार कर दिया। नसीराबाद वालों ने रास्ता रोक लिया और रोते-बिलखते पूज्या आर्यिकाश्री के चरणों में गिर पड़े, उस समय का वह माहौल बड़ा करुणाजनक बन गया था। उस दृश्य को देखकर किशनगढ़ वालों ने भी कह दिया कि पूज्या माता जी आप नसीराबाद ही चले जाइये, हम उनकी वेदना को नहीं देख सकते हैं, लेकिन नदी भी निकलने के बाद कभी वापस लौटती है नहीं, वह तो आगे ही बढ़ती जाती है। उसी प्रकार साधु भी अपने गन्तव्य की तरफ बढ़ जाने के बाद पीछे मुड़कर नहीं देखता है। वह आगे ही बढ़ता है। यद्यपि आर्यिकाश्री को नसीराबाद वालों पर दया आ रही थी। अहो करुणा/दया तो सम्यग्दृष्टि का चिह्न है, आर्यिकाश्री के हृदय में भी दया आए बिना कैसे रह सकती थी, लेकिन समय के पहले और भाग्य से ज्यादा किसको कौन दे सकता है?

बाह्य पुरुषार्थ भी तभी सार्थक होता है, जब अन्तरंग में उपादान की क्षमता होती है, किशनगढ़ वालों का वर्तमान पुरुषार्थ भले ही कम दिख रहा था, पर पूर्व का पुरुषार्थजन्य पुण्य उनके खाते में था, इसलिए उन्हें वर्षायोग का लाभ मिल रहा था। वे सभी किशनगढ़ की तरफ विहार देखकर भौंचक्के से रह गए थे, उन्हें तो कई दिनों तक यह सत्य-सा नजर नहीं आ रहा था पर था सत्य। वर्षायोग स्थापना के ७-८ दिन पहले ही संघ किशनगढ़ पहुँच चुका था। समाज वालों ने बड़े धूमधाम से नगर अगवानी की थी। १००८ दिगम्बर जैन चन्द्रप्रभ बीस पंथी मंदिर में वर्षायोग की स्थापना हुई।

स्थापना के उपरांत प्रतिदिन छहढाला को आधार बनाकर आर्यिकाश्री के प्रवचन होते थे, जो वर्षायोग के अन्त तक चलते रहे थे, फिर भी छहढाला पूरी नहीं हो पाई थी। दोपहर में एक पण्डित जी न्यायदीपिका ग्रन्थ का तो एक पण्डित जी समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय पूज्या आर्यिकाश्री के चरण-कमलों में बैठकर किया करते थे। यहाँ के श्रावक आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की साधना, चर्या के संदर्भ में बताते रहते थे, कि गुरुवर आहार में न नमक लेते हैं और न ही शक्कर लेते हैं, फिर भी आहार के समय मुखमुद्रा से ऐसा लगता है, मानो वे अति स्वादिष्ट भोजन कर रहे हों, उससे प्रभावित होकर जब लोग उनको दिए गए भोजन में से एक-दो ग्रास चखते हैं, तब समझ में आता है, कि इस भोजन का ग्रास हमारे गले भी नहीं उतर रहा है, धन्य हो आपको गुरुवर जो हँसते-हँसते किस प्रकार ऐसे नीरस भोजन को सहज रूप से ग्रहण कर लेते हो और भी उनके मुख से अनेक-अनेक प्रकार की कठिन-कठिनतम साधना की चर्चा सुन-सुनकर पूज्या आर्यिकाश्री को ऐसा लगने लगता था कि काश मुझमें आकाश मार्ग से गमन की क्षमता होती तो मैं भी उड़कर गुरुवर के चरणों में पहुँच जाती। इन सब बातों से उनकी पूर्व की बनी हुई धारणा दृढ़ होती जा रही थी, कि मैं आचार्य विद्यासागर जी महाराज की शरण में जाकर उन्हें ही प्रायश्चित्त, निर्देशन, आज्ञादि देने वाले गणधर बनाऊँगी। संघस्थ सभी सदस्य उनके अनुचर थे, उनकी सहमति से ही चलने वाले थे, इसलिए संघ सम्बन्धी ऐसा विकल्प नहीं था, कि यदि संघ वाले कोई मना

कर देंगे तो क्या होगा। एक बार एक श्रावक परिवार गुरुवर के दर्शनार्थ जा रहा था। वे लोग जाने के पहले जब पूज्य आर्यिकाश्री के पास आये तब वे बोलीं—पूज्य गुरुवर को हम सभी संघ वालों का बारम्बार नमोऽस्तु कहना और आचार्य महाराज से कहना कि हम लोग अर्थात् विशालमति माता जी संघ सहित आपके दर्शन करना चाहती हैं, इसके लिए आपका शुभाशीष चाहती हैं, जिससे शीघ्रातिशीघ्र उन्हें आपके आचरण से परिपूर्ण चरणारविंद के दर्शन हो सकें। श्रावकों ने पूज्य गुरुवर के चरणों में आर्यिकाश्री की अरजी यथावत् रख दी। गुरुवर ने पूज्या आर्यिकाश्री को और संघस्थ सभी को आशीर्वाद दिया। श्रावकों से जब आर्यिकाश्री ने गुरुवर का आशीर्वाद प्राप्त किया तो उनको विश्वास हो गया कि हमें गुरुवर अवश्य ही शरण देंगे। वे मन ही मन गुरुवर के चरणों में पहुँचने की योजनाएँ बनाने लगी।



वर्षायोग के कुछ ही दिन बीते होंगे, कि आर्यिकाश्री की हम उम्र साथी आर्यिका विज्ञानमति का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। तत्काल वैद्य जी को बुलाकर औषधि की गई लेकिन प्रबल पाप का उदय होने से कोई लाभ नहीं हुआ। बीमारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। किसी भी वैद्य की औषधि काम नहीं कर रही थी, तो आर्यिकाश्री ने श्रावकों से डॉक्टरों को दिखा कर रोग का निदान करवाने के लिए कहा। कई चिकित्सकों को बुलाकर दिखाया गया लेकिन रोग पकड़ में नहीं आ पाया, जिससे स्वास्थ्य गिरता ही गया लगभग एक-डेढ़ महीना व्यतीत हो गया, आर्यिका का शरीर कृश होता जा रहा था। आर्यिकाश्री अपनी अनुजा आर्यिका की सेवा में लग गयीं। वास्तव में सम्यग्दृष्टि सेवा करते समय ये मेरे से बड़ा है या छोटा, ज्ञानी है या अज्ञानी, जवान है या वृद्ध इन सब बातों को नहीं देखता है, वह तो परिस्थिति के समय अर्थात् जब जिसको जैसी आवश्यकता होती है, वैसी सेवा करता ही है। आर्यिकाश्री आर्यिका को औषधि और पथ्य किस प्रकार कितना और कब चलना है, इन सबका ध्यान रखते हुए प्रतिदिन आहार करवाने जाने लगी। उनकी शौचादि के समय किस रूप में सहायता करना

है, कब मालिश आदि करना है कब स्वाध्याय आदि सुनाकर उन्हें ब्रतों में स्थिर रखते हुए उनका साहस बनाए रखना है आदि-आदि सभी बातों का ख्याल रखते हुए भी वे अपने आवश्यकों में सजग रहती थीं। उन्होंने जो कार्य गृहस्थों के करने योग्य थे, वे किशनगढ़ की समाज के योग्य व्यक्तियों को अपना कर्तव्य समझाते हुए सौंप दिए थे। पूज्य आर्यिकाश्री के वात्सल्य एवं मीठी वाणी से प्रभावित समाज का प्रत्येक व्यक्ति उनसे कुछ निर्देशन प्राप्त करने के लिए तत्पर रहता था और दुनियादारी के सभी काम छोड़कर उनकी आज्ञा का पालन करता था। एक श्राविका ने घी-तेल आदि लगाकर सेवा की जिम्मेदारी ली थी। कुछ श्रावक श्रेष्ठियों ने जब तक स्वास्थ्य ठीक नहीं हो जाता तब तक धर्मशाला में ही आहारदान देकर अपने धन और शरीर का सदुपयोग करने का आशीष पूज्या आर्यिकाश्री से लिया था। एक श्रावक ने जो धनाढ्य नहीं था पर उदार दिल वाला था, दयालु-सेवाभावी था, उसने जहाँ कहीं से हो डॉक्टर-वैद्य को बुलाना, औषधि लाना, औषधि के अनुसार उसके पथ्य आदि की व्यवस्था आर्यिका को अपनी पुत्री के समान ही समझकर करने का बीड़ा उठाया था। हर क्षेत्र में आर्यिकाश्री को सफलता मिल रही थी। उनका पुण्य और पुरुषार्थ काम कर रहा था, किन्तु रुग्ण आर्यिका के न जाने कितने भारी पाप का उदय था, कि स्वास्थ्य ठीक होने की बात तो बहुत दूर कभी-कभी तो मौत ही दरवाजे पर आकर खड़ी हो जाती थी, किन्तु आर्यिकाश्री की आन्तरिक विशुद्धि, प्रभुभक्ति एवं सेवाभाव के आगे उसकी कुछ चल नहीं पा रही थी, इसलिए वह अपना वार नहीं कर पाई अथवा रुग्ण आर्यिका की आयु कर्म की प्रबल अनुभाग शक्ति के आगे हार मानकर वह भाग जाती थी। जब कभी डॉक्टर कह देता था कि अब इनको भगवान् का नाम लेने दो, इनको औषधि आदि देने से कोई लाभ नहीं है, उनकी बात सुनकर आर्यिकाश्री की आँखें नम हो जाती थीं, मुश्किल से आँसुओं को रोककर वे रुग्ण आर्यिका को सम्बोधन करतीं, उनको स्वास्थ्य ठीक होने का आश्वासन देती, णमोकार मंत्र सुनाकर भगवान् से स्वास्थ्य लाभ की प्रार्थना करतीं, धार्मिक अनुष्ठान, जाप्यानुष्ठान आदि करती। उस समय उनको ऐसा लगता था कि अभी तो पूज्य गुरुवर



की समाधि हुए एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ है और ये कैसे पाप का उदय आया कि मेरा साथी भी जाने की तैयारी कर रहा है। इनके चले जाने पर संघ में बचेगा ही कौन? छोटी आर्यिका वृद्ध हैं, पका पान है उनका तो कोई पता नहीं कि कब गिर जावे अर्थात् शरीर को छोड़ कर चली जावे। दूसरी कोई आर्यिका संघ में है नहीं आखिर मेरी जिंदगी कैसे निकलेगी ? क्या मैंने जिस डर से वर्षों तक दीक्षा नहीं ली थी वही घटना मेरे साथ पुनः घटने वाली है, क्या मुझे फिर अकेला रहना पड़ेगा? नहीं, नहीं भगवान् ऐसा नहीं होगा, ऐसा सोचते-सोचते उनकी अंतरात्मा चीख पड़ती थी, वे कहती नहीं, भगवान् मैं आर्यिका की समाधि नहीं होने दूँगी। मुझे विश्वास है, प्रभु की कृपा से इनको शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ होगा। इस प्रकार के विकल्पों में कई बार उनका मानस उलझ जाता था, पर अन्तरात्मा आत्मविश्वास और सकारात्मक विचारों से भरी थी, इसलिए वे बार-बार आगमानुसार प्रासुक औषधि और वैद्य चिकित्सकों को बदल-बदलकर उपचार करवाने में लगी रहती थीं। इधर रुग्ण आर्यिका को भी अपने गिरते हुए स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्थिति को देखकर लगने लगा, कि शायद यह शरीर अधिक समय तक टिकने वाला नहीं है। इसलिए मुझे कुछ त्याग-तपस्या करके मनुष्य भव को सफल करना चाहिए। ऐसा विचार करके एक दिन वह पूज्या आर्यिकाश्री से बोली-पूज्या माता जी, मैंने आर्यिका दीक्षा लेकर भी कोई त्याग-तपस्या नहीं की और यह गाड़ी तो शायद रवाना होने वाली है, अतः आप मुझे कुछ त्याग करवा दीजिए, जो मेरी मौत होने पर भी साथ जावे। उनकी बात सुनकर पूज्या आर्यिकाश्री सोच में पड़ गई क्योंकि मृत्यु का अहसास तो उन्हें भी हो रहा था कि कब ये शरीर को छोड़कर चली जायेगी इसका कोई भरोसा नहीं है। आज की रात भी निकलेगी या नहीं यदि निकल गई तो पता नहीं दिन पूरी कुशलता पूर्वक व्यतीत हो पाएगा। फिर भी आशा पर आसमान टिका है, सो ही वे औषधि करने में लगी थीं उन्हें प्रसन्नता थी, कि मेरा साथी भले ही अल्प उम्र में ही जाने की स्थिति में है, फिर भी वह सतर्क है, सावधान है और सहर्ष समाधि करने की तैयारी में लगा है। आर्यिका ने जब पुनः पुनः त्याग-व्रत ग्रहण करने की प्रार्थना की तो

आर्यिकाश्री ने कहा—आप यह नियम कर लो कि जीवन में एक दिन में तीन रस से अधिक ग्रहण नहीं करूँगी अर्थात् दूध, दही, घी, गुड़ (शक्कर), नमक तथा तैल, इन छह रसों में से कोई तीन रसों को ही ग्रहण करूँगी। औषधि आदि में इन रसों की छूट है नियम लेते ही आर्यिका का स्वास्थ्य अच्छा होने लगा। पूज्या आर्यिकाश्री का यह दूरदर्शित्व गुण कितना मौलिक था। रोगी भी संतुष्ट हो जावे और वर्षों तक यह नियम पालते रहने पर भी स्तत्रय आराधना में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं हो, वास्तव में बड़ों की बुद्धि ऐसी विस्मयकारी ही होती है। उनके द्वारा किया गया कार्य अनर्थक और विफल नहीं होता है। आखिर उनका पुरुषार्थ सफल हुआ। एक युवा चिकित्सक जो क्षय रोग का विशेषज्ञ था। उसने दूर से ही आर्यिका को देखकर बता दिया कि इनको क्षयरोग है। बीमारी का निदान होते ही औषधियों ने अपना काम चालू कर दिया स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। दवाई लगते ही आर्यिकाश्री ने संतोष की श्वास लीं। उन्हें आत्म-शांति मिली। एक स्तत्रयधारी को मोक्षमार्ग में चलते हुए साधर्मी को सहयोग देने में सफलता मिलने पर किसको प्रसन्नता नहीं होगी और वह भी अपने सहपाठी और निकटतम साथी हो तो कहना ही क्या? उसी समय डॉक्टर ने एक सलाह भी दी, कि इन्हें क्षय रोग है इसलिए आप सब लोगों को इनकी सेवा करने में सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि यह संक्रामक रोग है। इनके पास जो भी ज्यादा रहेगा उसको यह रोग हो सकता है। फिर भी आर्यिकाश्री निर्भीकता से अपनी साधर्मी आर्यिका के आहार करवाने जाती थीं। दिन में कई बार उनके कमरे में जाना, उन्हें सम्बोधन करके उनके भावों को स्तत्रय में स्थिर बनाए रखने के लिए वे लगभग एक घंटे तक भगवती आराधना का स्वाध्याय सुनाती थीं। इस ग्रन्थ में समाधिमरण का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है, अतः वे इस ग्रन्थ को सुनाती थीं ताकि बीमारी में यदि समाधि हो तो आगमोक्त विधि से हो और स्वास्थ्य लाभ हो और अंत तक स्तत्रयाराधना में संयम के प्रति उत्साह बना रहे। पूज्या आर्यिका श्री के सत्प्रयासों से आर्यिका का स्वास्थ्य धीरे-धीरे ठीक होने लगा। उन्होंने लगभग ८ माह के बाद किशनगढ़ से नसीराबाद की तरफ विहार

अपनी अनुजा आर्यिका के स्वास्थ्य को दृष्टि में रखते हुए किया था। उन्हें पता था कि इतनी लम्बी और बड़ी बीमारी के बाद आर्यिका के शरीर में कितनी कमजोरी आयी होगी, इसलिए वे नसीराबाद में बहुत दिन रुकी रहीं, ताकि उनकी औषधि और पथ्य यथावत् चलता रहे। यहाँ के श्रावकों ने आर्यिकाश्री की भावना के अनुसार रुग्ण आर्यिका की अच्छी तरह सेवा की जिससे उनका स्वास्थ्य अच्छी तरह ठीक हो गया। यहाँ के श्रावकों ने आर्यिकाश्री हमारे यहाँ बहुत दिनों तक रुके इसलिए एक संस्कृत पढ़ाने वाले अध्यापक को बुलाकर संस्कृत का अध्ययन शुरू करवा दिया। आर्यिकाश्री को भी बहुत दिनों से संस्कृत पढ़ने की भावना थी, वह यहाँ पूरी हुई।

यहाँ पर पूज्य आर्यिकाश्री ने धर्म की गंगा हमेशा-हमेशा बहती रही है, इसी उद्देश्य से गुरुवर के नाम से “विवेक जागृति महिला मण्डल” की स्थापना की। जिसका मुख्य उद्देश्य ज्ञानार्जन करके परिणामों को सुधारना था। समय-समय पर नगर में आए हुए साधु-संतों को आहार, विहार, निहार आदि में सहयोग करना था। वह महिला मण्डल आज भी है और आवश्यकता पड़ने पर समाज को पंचायत को भी सहयोग देता है। साथ ही कभी पंचायत सक्रिय नहीं हुई तो अपने बलबूते पर साधु का वर्षायोग तक करवा लेता है। उस महिला मण्डल ने पूज्य आर्यिकाश्री की शिक्षाओं को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन को भी संस्कारित किया था। हम लोग भी विद्युतमति माता जी की समाधि के समय लगभग १७ महीने तक वहाँ रुके थे, तब भी उसी महिला मण्डल ने हम लोगों की परिचर्या की थी। यहाँ आर्यिकाश्री ने गुरुवर आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज के चरणों की स्थापना दादागुरु ज्ञानसागर जी महाराज की समाधि स्थल पर करवाई थी। इसी प्रकार मारोठ, कुचामन सिटी, कूकनवाली आदि स्थानों पर भी गुरुवर के चरणचिह्न की स्थापना पूज्या आर्यिकाश्री की प्रेरणा से हुई थी। चरण चिह्न स्थापना करवाने का उद्देश्य सभी लोग उन चरण-चिह्न के दर्शन करके उनके जीवन को आदर्श बनाकर अपने जीवन को उन्नत बनाएँ।



इस वर्ष पुनः नसीराबाद वालों के भाव संघ का वर्षायोग करवाने के थे, उन्होंने पुनः अपनी अरजी लगाई, आर्यिकाश्री के चरणों में प्रार्थना की लेकिन इस वर्ष भी उनके पुण्य का पलड़ा भारी नहीं रहा, इसलिए इस १९८७ का वर्षायोग अजमेर शहर में हुआ। यहाँ एकान्त मत का बहुत बोलबाला था। एक पण्डित जी एकान्त पक्ष के मंदिर में स्वाध्याय करते थे। उनके श्रोतागण जिन्होंने किशनगढ़ वर्षायोग के समय पूज्य आर्यिकाश्री के आध्यात्मिक प्रवचन एवं ज्ञान चर्चा आदि के बारे में सुन रखा था, वे आपके पास आकर चर्चा करने लगे। उनमें से कुछ वास्तव में चर्चा करने आते थे तो कुछ परीक्षण करने आते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने आर्यिका संघ का आहार देखा वो जिस चौके में आहार देखने गया था, उस चौके में योग से दाल-सब्जी देने के योग्य नहीं बची थी, सो आर्यिका माता जी प्रसन्नता पूर्वक पानी से रोटी ले रही थीं, उनकी इस आहार चर्चा को देखकर उसका हृदय परिवर्तित हो गया। वह प्रतिदिन पूज्या आर्यिकाश्री के पास चर्चा करने आने लगा। उन २-४ व्यक्तियों के साथ वे पण्डित जी भी पूज्या आर्यिकाश्री की गोम्मटसार ग्रन्थ के स्वाध्याय में आने लगे किन्तु कुछ ही दिनों में उनको वहाँ से (एकान्त मत वालों) आने के लिए इस भय से सख्ती के साथ मनाकर दिया गया, कि यदि पण्डित जी साधुओं के पास जाने लगेंगे तो हमारे यहाँ का स्वाध्याय ही बंद हो जाएगा और सभी मुनि भक्त बन जाएँगे तो अपने मत का क्या होगा ? आजीविका के लिए व्यक्ति को सब कुछ मंजूर करना पड़ता है और पण्डित जी को भी मजबूरी से पूज्या आर्यिकाश्री के पास आना बंद करना पड़ा। यहाँ पर प्रतिदिन प्रातःकालीन पण्डितों/ प्राज्ञवर्ग के लिए समयसार पर प्रवचन होता था, अन्त में सामान्य जन के लिए १५-२० मिनट छहढाला पर भी प्रवचन होता था। पूज्य आर्यिकाश्री की मधुरतम सहज, स्पष्ट, आगमपूर्ण शैली से प्रभावित होकर दिन-प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या वर्षायोग के अन्त तक बढ़ती ही गई थी।

यहाँ आर्यिकाश्री ने दशलक्षण पर्व के समय एक बहुत अच्छी परम्परा देखी। रत्नत्रय का व्रत करने के लिए दशलक्षण के अन्तिम चरण में बारस तिथि के दिन कुछ नवयुवक भारतीय संस्कृति के अनुकूल परिधान

अर्थात् धोती-दुपट्टा पहनकर हाथ में केतली और गमछा लिए जिनालय के परिसर में आकर रुक गए। वे सभी स्थानीय श्रावकों के ही सुपुत्र थे सभी ५ दिन के लिए अपने घर-परिवार एवं विषयभोगों को त्याग कर जिन धर्म की आराधना करते हुए ब्रह्मचारी त्यागी-व्रती जैसे बनकर रहे, वे भोजन के लिए भी अपने घर नहीं जाते थे। जो श्रावक निमंत्रण करके बुलाकर ले जाता उसके यहाँ वे मौनपूर्वक शुद्ध भोजन अन्तराय टालकर करते थे। भोजन में बाल या मरा हुआ जीव आ गया तो फिर पूरे दिन-रात कुछ भी ग्रहण नहीं करते। फिर त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा इन तीन दिनों तक निर्जला उपवास करते। उसके बाद एकम के दिन निमंत्रण के माध्यम से ही पारणा करते, इस प्रकार ५ दिन तक रत्नत्रय व्रत की आराधना करते थे। इस प्रकार का व्रत कोई ३ वर्ष, कोई १३ वर्ष तो कोई २९ वर्ष तक करके पापों को क्षय करते थे। यह उत्कृष्ट विधि है। इनमें कोई जल लेकर उपवास करते तो कोई चार दिन एकासन और चतुर्दशी का उपवास करते, किन्तु धर्माधना की विधि सभी की एक जैसी रहती, अर्थात् शौच के लिए बाहर जाना, अपनी आवश्यक क्रियाओं में प्रासुक पानी का ही प्रयोग करना, शरीर का श्रृंगार और संस्कार नहीं करना, यहाँ तक कि बाल भी नहीं सँवारना। वे अपने हाथों से द्रव्य भी नहीं धोते थे। यदि पूजन सामग्री तैयार मिल जावे तो उसका उपयोग करते। पंखा, कूलर, लाइट आदि जलाना, पंखे आदि की हवा में बैठना आदि आरम्भ-परिग्रह सम्बन्धी सभी पाप कर्मों से दूर रहकर मात्र धर्म क्रियाएँ करते हुए अपने समय को व्यतीत करते। पूज्या आर्यिका श्री को यह परम्परा अच्छी नहीं बहुत अच्छी लगी। इनके इस आचरण की विधि देखकर उनको लगा कि श्रावक भी कुछ दिन तक साधु जैसी चर्या पालन करके साधु जैसे जीवन की आनन्दानुभूति कर सकता है। अतः अपने को भी अगले वर्ष इसी प्रकार की क्रियाएँ श्रावकों को करवाना चाहिए। उन्होंने इस प्रकार की धारणा बना ली। इसी धारणा के अनुसार उन्होंने १९८८ के वर्षायोग जो सिंगोली में हुआ था। वहाँ दशलक्षण में अंतिम पाँच दिन तक श्रावकों को इसी प्रकार की धर्म आराधना करने की प्रेरणा दी थी, जिससे श्रावकों ने आर्यिकाश्री के निर्देशनानुसार धर्मध्यान

किया। जो आज समूचे भारत वर्ष के साधु-सन्तों के लिए आदर्श बन गया। सम्यग्दृष्टि और धर्मात्माजन धर्म-प्रभावना की नई विधि को अवश्य ग्रहण करते हैं। उनके विचार रहते हैं कि किसी न किसी विधि से बहुतायत भव्य जन धर्म करें, धर्म कर सके। पूज्या आर्यिकाश्री ने किशनगढ़ वर्षायोग की भाँति इस वर्ष अजमेर में भी रत्नत्रय का तेला किया लेकिन इस बार गर्मी अधिक होने से उन्हें बवासीर की तकलीफ हो गई थी, उनमें से खून बह जाने से शरीर में खून की कमी हो गई थी, फिर भी उन्होंने उत्साहपूर्वक रत्नत्रय की आराधना करते हुए तेला किया था। पूज्या आर्यिकाश्री के उपदेशों से प्रभावित होकर कई एकान्त मतावलम्बी मुनि पंथी बन गए। मुनि पंथी ही नहीं वरन् आचार्य भगवन् (विद्यासागर जी महाराज के) कट्टर अनुयायी बन गए थे। कई श्रावक जिन्होंने ३०-३५ वर्ष से एकान्तमत से भ्रमित होकर जिन-पूजन, आहार-दानादि क्रियाएँ छोड़कर अपनी जीवन शैली को असंयत बना लिया था, वे सभी अब धर्म का स्वरूप समझकर पुनः पूजन, आहार-दानादि में प्रवृत्त होकर चारित्र की ओर मुड़ गए अर्थात् अनेकान्त धर्म के अनुयायी बन गए थे। जो मुनिराज का नाम सुनना भी पसंद नहीं करते थे, वे अब एकान्त मतावलम्बियों के यहाँ आना-जाना उपदेश सुनना आदि को आत्म-पतन का कारण समझने लगे थे। यह वर्षायोग पूज्या आर्यिकाश्री की चर्या, चर्चा, उपदेश तथा वात्सल्य से अपूर्व प्रभावना का स्तम्भ बन गया था। इन्हीं सबसे प्रभावित होकर समाज ने वृहद् विधान करवा करके विशाल रथयात्रा निकाली, जिसमें सोनी जी की नसिया के भण्डार-घर की सभी आन्तरिक स्वर्ण-रजतमयी सामग्री बाहर निकालकर अपूर्व-अद्वितीय धर्म प्रभावना के लिए नगर के मुख्य चौराहों-त्रिराहों पर ले जाकर सभी को भगवान् के दर्शन कराए थे।

इसी वर्षायोग के बीच आर्यिकाश्री के साथ एक बड़ी दुखद घटना घटी, जो दुखद होकर भी सबके लिए शिक्षा देने वाली बन गई थी। एक दिन वे आहार करके वसतिका के समीप ही स्थित जिनालय में विराजमान श्री जिनेन्द्रदेव की वन्दना करके लौट रही थी तो पैर फिसलने से गिर पड़ी, उसका कारण था कि जहाँ वे पैर धोकर जिनालय में गई थीं, वहाँ मार्बल

लगा हुआ था, मार्बल में पानी दिखा नहीं उसी पानी में पैर पड़ जाने से वे फिसल कर गिर गई थीं, जिससे उनके पैर में मोंच आ गई। उस मोंच ने उनको वहाँ से हिलने तक नहीं दिया था, फिर भी वे साहस से अपनी वसतिका में पहुँची। तत्काल मोंच ठीक करने वाली एक महिला को बुलाया गया। मध्याह्न की सामायिक के बाद उसने आर्यिकाश्री का इलाज शुरू किया। स्वाध्याय का समय होने पर स्वाध्याय वालों को आर्यिकाश्री के गिर जाने की जानकारी नहीं होने से सभी आ गए। आर्यिकाश्री प्रतिदिन की भाँति आज भी उन्हें स्वाध्याय करवा रही थीं और वह महिला अपना काम कर रही थी, वह कभी पैर खींचती तो कभी झटका लगाकर इधर-उधर मोड़ देती कभी सेंक करती तो कभी अंगुलियों के माध्यम से नश को यथास्थान लाने की कोशिश करती। दोनों अपना-अपना काम कर रही थीं। उस महिला को पूज्या आर्यिकाश्री के स्वाध्याय का एक शब्द भी समझ में नहीं आ रहा था तो पूज्या आर्यिकाश्री को वह महिला पैर में क्या-क्या कर रही हैं, इसके बारे में कुछ महसूस नहीं हो रहा था, क्योंकि उनका उपयोग स्वाध्याय में ही लगा था। उनकी इस चर्या ने हम लोगों को मानो यह समझा दिया था कि स्वाध्याय करना कितना मौलिक है, यही उपसर्ग-परीषहों को सहन करने की क्षमता देने वाला है। इसी के साथ आर्यिकाश्री ने यह शिक्षा भी ले ली कि हमें कभी रास्ते में पैर नहीं धोना चाहिए। रास्ते में पैर धोने का ही यह दुष्परिणाम हुआ, कि आज मेरी ही गलती से अर्थात् रास्ते में पैर धोने से मेरे ही पैर में मोच आ गयी। यह तो ठीक हुआ, कि मैं भगवान् के दर्शन करके लौट रही थी सो हड्डी नहीं टूटी अन्यथा हड्डी टूट जाती तो क्या होता ? उन्होंने उसी दिन से रास्ते में पैर धोना बन्द कर दिया और सभी लोगों को भी यही शिक्षा देने लगी।

इसी वर्षायोग के अन्तिम चरण में पूज्या आर्यिकाश्री की प्रवचन शैली, आगमिक ज्ञान तथा चारित्र की निर्मलता से प्रभावित होकर यहाँ के सेठ भागचन्द्र जी सोनी के सुपुत्र, नगर के प्रबुद्ध वर्ग एवं मान्य पण्डित जनों ने मिलकर आर्यिकाश्री को आर्यिकारत्न की उपाधि से अलंकृत करने की योजना बनाई। सभी कार्य चुपचाप हो गया था। उपाधि की लिखित रूप

में एक तस्वीर तैयार करके उस पर सभी प्रतिष्ठित श्रावकों के हस्ताक्षर करवा लिए गए थे। संघ के किसी भी सदस्य को इसके बारे में कुछ भी पता नहीं था। एक दिन अचानक प्रवचन के बाद सेठ जी ने उठकर आर्यिकाश्री को आर्यिकारत्न की उपाधि से अलंकृत करने की घोषणा की। आर्यिकाश्री उनकी बात को एकाग्रता से सुन रही थी। उनका वक्तव्य पूरा होते ही वे बोलीं—उपाधि का अर्थ परिग्रह माना गया है। साधुओं को परिग्रह का त्याग होता है, वह उपाधि कैसे ले सकता है? मुझे स्त्री पर्याय के योग्य सर्वोत्कृष्ट आर्यिका पद मेरे गुरु ने दे ही दिया है। इस पद से बढ़कर और कौन—सा पद है, जिसको आप लोग दे सकते हैं आदि—आदि विचार रखते हुए उन्होंने उपाधि को स्वीकार नहीं किया। जिनवाणी स्तुति होने के बाद सभी लोग आर्यिकाश्री के पास आकर उपाधि लेने के लिए अनेक प्रकार के तर्क—युक्ति आदि देकर समझाने लगे और आर्यिकाश्री को उपाधि लेने के लिए मजबूर करने लगे तब आर्यिकाश्री गम्भीरता से बोलीं—यदि आप अपनी उपाधि वापस नहीं लेंगे तो मैं आहार—चर्या पर नहीं निकलूँगी। वैसे आर्यिकाश्री कभी किसी कार्य को करवाने के लिए इस प्रकार की बात नहीं कहती थीं, लेकिन इस समय उन्हें उपाधि के प्रति किंचित् भी आकर्षण नहीं होने से यह बात कहनी पड़ी थी। उनकी बात सुनकर सब लोग आश्चर्य चकित हो कर बोले—आज अधिकांश संत—साधु जिन्हें उपाधि नहीं मिल रही हो और किसी उपाधि की योग्यता भी नहीं हो तो भी उपाधि लेने की आशा लगाए रहते हैं और कभी—कभी तो सिफारिश करवा करके उपाधि देने की योजना बनवाते हैं और ये हैं जो उपाधि देने पर भी स्वीकार नहीं कर रही हैं, माता जी धन्य हैं, वास्तव में ऐसे साधु ही जैनधर्म की ध्वजा को पंचम काल के अन्त तक फहरा सकते हैं, फहराएँगे, इस प्रकार कहते—कहते आर्यिकाश्री के चरणों में बारम्बार नमन करते हुए चले गए।

□

अजमेर जिले में विचरण करते हुए लगभग दो वर्ष हो चुके थे, इसलिए आर्यिकाश्री ने सोचा एक ही स्थान तथा एक ही क्षेत्र में अधिक समय रुकने से जन—सम्पर्क बढ़ने लगता है, चाहे वह साधर्मियों से ही क्यों



न हो ? गृहस्थों का सम्पर्क असंयम को बढ़ाने वाला होता है इसलिए उनके सम्पर्क से व्रतों में दूषण लगने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इससे बचे रहने के लिए साधुओं को अलग-अलग प्रदेशों में विहार करते रहना चाहिए। इस प्रकार विचार करके उन्होंने ब्यावर, मांगलियावास, पीसांगढ़ आदि छोटे-छोटे गाँवों में विहार किया। वहाँ से नीमच, सिंगोली आदि की तरफ उन्होंने अपने कदम बढ़ाये। उस समय इन क्षेत्रों में साधुओं का आगमन कम होता था, इसलिए यहाँ के लोगों ने पूज्या आर्यिकाश्री को वर्षायोग करने के लिए श्रीफल भेंट किए थे। एक-डेढ़ वर्ष पहले जब गुरुवर का यहाँ आगमन हुआ था, तब भी बघेरवाल समाज ने वर्षायोग करवाने का पुरुषार्थ किया था, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली थी। इस बार गुरुवर नहीं थे तो भी उनकी छाया-स्वरूप पूज्या आर्यिकाश्री का वर्षायोग श्रावकों के पुरुषार्थ से सिंगोली (मध्यप्रदेश) में हुआ था।

एक दिन हम लोगों ने आर्यिकाश्री से पूछा-पूज्य माता जी, आपने उस दिन भी मटर की सब्जी नहीं ली और आज भी नहीं ली क्या अपने को मटर नहीं खाना चाहिए। आर्यिकाश्री उनकी बात सुनकर बोलीं-अपन लोग त्यागी-व्रती हैं, अपने को जल्दी-जल्दी सब वस्तुएँ नहीं खाना चाहिए अर्थात् पहली बार देखते ही नहीं खा लेना चाहिए, अपनी जिह्वा को संयमित करने का अभ्यास करने के लिए जब तक चौके में तीन बार वह वस्तु नहीं दिख जावे, तब तक नहीं खानी चाहिए। क्योंकि नई-नई वस्तु के प्रति जीव का सहज ही आकर्षण रहता है और उसका भोग करते समय स्वाद भी अलग ही रहता है। दूसरी बात जब तक तीसरी बार वस्तु देखने को मिलती है, तब तक बाजार, घर आदि में यह वस्तु पर्याप्त आ जाती है, जिससे आहार देखने वाले बच्चों आदि का मन चंचल नहीं होता है।

इसी प्रकार जब कभी कोई संघस्थ त्यागी-व्रती दिन में सोता, आलस करता अथवा इधर-उधर की बातों में समय खराब करता तो कहतीं-अपन लोगों को इस प्रकार आलस नहीं करना चाहिए क्योंकि श्रावक हमें धर्मध्यान करने के लिए आहार दान देता है, इसलिए हमें उसका उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार आलस करने से उस भोजन का दुरुपयोग करने से पाप

का बंध होता है। हमने घर इस प्रकार प्रमाद करने के लिए नहीं छोड़ा है।

जब आर्यिकाश्री का ससंघ सिंगोली में प्रवेश हुआ था, तब सिंगोली वालों को तो ऐसा लग रहा था मानो उन्हें आलौकिक निधि ही प्राप्त हो गई है। यहाँ यथासमय प्रतिवर्ष की भाँति वर्षायोग की स्थापना आनन्द से सम्पन्न हुई। यहाँ के आबालवृद्ध पूज्या आर्यिकाश्री से धर्म-लाभ ले रहे थे। आर्यिकाश्री ने यहाँ पाँच दिन के लिए स्तत्रय की आराधना/साधना का शिविर लगाया। यह प्रथम प्रयास होने पर भी उन्हें पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से सफलता मिली थी। दशलक्षण के बाद पाप कर्म के उदय से यहाँ पुनः आर्यिका माता जी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। कर्म का उदय अपना रंग दिखाने लगा। अभी किशनगढ़ में जो बीमारी हुई थी, उसकी औषधि बन्द नहीं हुई थी, उसके पहले ही नई बीमारी खड़ी हो गई थी। उनको मलेरिया के साथ पीलिया ने आकर दबोच लिया था। लगभग ढाई महीने तक इन दोनों ने मिलकर माता जी को बिस्तर में पटक दिया। यहाँ भी आर्यिकाश्री ने पुनः भरपूर सेवा की। यहाँ पर भी कुछ श्रावक एकान्त मत के पोषक थे, लेकिन आर्यिकाश्री की चर्या से प्रभावित थे। जब उन्होंने देखा आर्यिकाश्री के जीवन का हर क्षण अनुशासित और अध्यात्म तथा आगम को लक्ष्य बनाकर ही तत्त्व चर्चा और आवश्यकों को करने में व्यतीत होता है तो सबका हृदय परिवर्तित होने लगा, इसलिए उन लोगों ने भी आर्यिकाश्री के साथ स्वाध्याय करने का तथा उनके प्रवचन सुनने का लाभ लिया था। यहाँ के ये श्रावक-आर्यिका संघ को आहारदान देना, प्रतिग्रह करना आदि कार्य भी उत्साह-पूर्वक करने लगे थे। इन्हीं के समूह की एक श्राविका जो बालविधवा होने से अपने माता-पिता के यहाँ रहती थी, वह रुग्ण आर्यिका की बीमारी में भी समता और अपने आवश्यकों के प्रति सजगता देखकर उनकी सेवा-वैय्यावृत्ति करने आने लगी। वह आर्यिकाश्री के निर्देशानुसार आर्यिका को पथ्य, औषधि तथा मालिश आदि करके भक्ति तथा स्नेहपूर्वक एक माँ के समान देखभाल करने लगी। फलस्वरूप “जैसी संगति बैठीए वैसा ही फल दीन” की कहावत चरितार्थ हुई अर्थात् सेवा करने वाली उस श्राविका को भी वैराग्य आने लगा और उसकी धारणा थी कि पंचमकाल

में साधु नहीं होते निर्मूल हो गई। वह भी आज आर्यिका वरदमती बनकर अपना कल्याण कर रही हैं। यहाँ पर आर्यिकाश्री ने अन्तिम तीसरा तेला किया और अनेक लोगों को तेला करने की प्रेरणा भी दी थी।

इस बार भी आर्यिकाश्री ने अपनी अनुजा आर्यिका को मौत के मुख से बचा लिया था। इस बार उन्हें उनकी बीमारी से विशेष विकल्प हुए थे क्योंकि उनकी धारणा थी, कि इस वर्षायोग के बाद हम लोग अर्थात् आर्यिका संघ आचार्य गुरुवर के दर्शन करने अवश्य ही चले जाएँगे। मैं उनसे २-३ वर्ष में हुए सभी दोषों का प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि कर लूँगी। मुझे गुरुवर की छत्र-छाया मिल जाने से मेरा भार कम हो जाएगा। वास्तव में गुरु के बिना जीवन में है ही क्या? गुरु ही तो शिष्य को अपनी गलतियों का अहसास करवाकर निर्दोष बनाते हैं। गुरु ही कुम्भकार के समान अपने हाथ का सहारा देकर और ऊपर से डाँट-फटकार रूपी चोट मार कर शिष्य रूपी घड़े को खोट से रहित बना देते हैं। कभी-कभी तो वे गुरु-दर्शन की अनुभूतियों में सब कुछ भूल जाती थी। वे सोचती रहती थीं, कि मैं जब गुरु के सबसे पहले दर्शन करूँगी तो गुरुस्तुति पढ़ूँगी, गुरुवर की तीन परिक्रमाएँ लगाऊँगी। सिद्ध, श्रुत और आचार्यभक्ति पढ़कर गुरुवर की वन्दना करूँगी, उनको नमस्कार करूँगी और उनके चरणों में अपना जीवन समर्पण करके जीवन के अन्तिम क्षण तक के लिए संसाररूपी महासागर को तैरने के लिए एक खेवटिया प्राप्त कर लूँगी। आदि-आदि उनकी सब कल्पनाओं पर पानी फिर गया था, इसलिए उन्हें अपने पाप/अंतराय कर्म पर कभी-कभी बहुत गुस्सा आता था, क्योंकि इन दो बड़ी बीमारियों से आर्यिका को बहुत कमजोरी आ गई है, अब ये ५०० किलोमीटर का लम्बा विहार कैसे कर पाएँगी ? दूसरी बात गुरु जी अब पुनः यही कहकर मना कर देंगे कि आर्यिका का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इसलिए अभी नहीं आना है। अब पुनः यहीं राजस्थान में ही विहार करना पड़ेगा। ५-६ महीने बाद जब आर्यिका का स्वास्थ्य थोड़ा ठीक हुआ तब उन्होंने पास में ही ९-१० किलोमीटर दूरी पर स्थित बोराव (राजस्थान) की तरफ विहार किया। यह छोटा-सा गाँव है। यहाँ १५-१७ जैन समाज के घर हैं, लेकिन यहाँ के

लोगों के दिल बहुत विशाल हैं। यहाँ के श्रावकों की भक्ति, सेवा, वैय्यावृत्य आदि बहुत प्रशंसनीय हैं। उनकी भक्ति देखकर ही आर्यिकाश्री ने यहाँ २०-२२ दिन तक रुकने का विचार बनाया ताकि सर्दी के कारण आर्यिका को कहीं पुनः बीमारी लौटकर न आ जावे और यहाँ दवाई तथा पथ्य भी व्यवस्थित ढंग से चलता रहे क्योंकि अभी भी थोड़ा ही चलने पर बुखार आ जाता था। वहाँ पर आर्यिकाश्री ने जो मार्ग श्रावकों को दिखाया वह आज भी उनमें मौजूद है।

□

यहाँ एक दिन रुग्ण आर्यिका का दीक्षा दिवस आया। माघ शुक्ला द्वादशी के दिन, तो वे बोली आर्यिकाश्री मेरा आज दीक्षा दिवस है मुझे दीक्षा लिए चार वर्ष पूरे हो गए हैं, मैंने कुछ भी तप-त्याग-साधना नहीं की है, अतः मुझे कुछ त्याग-तप करवा दीजिए। मुझे उपवास, ऊनोदर, रस-परित्याग आदि कुछ छोटा-मोटा व्रत दे दीजिए, ताकि मेरा मन संतुष्ट हो जाए। आर्यिका की बात सुनकर उन्होंने किसी भी तप-त्याग के लिए हाँ नहीं भरी, कह दिया कि आपका स्वास्थ्य अभी ठीक नहीं है, इसलिए जब आप ठीक हो जाओ तब कर लेना अभी नहीं। आर्यिकाश्री की बात सुनकर उनका मन उदास हो गया तो उन्होंने जब आर्यिकाश्री से पुनः प्रार्थना की तो वे बोली अच्छा तो एक नियम ले लो कि आज पूरे दिन में किसी को भी अर्थात् किसी चेतन स्त्री-पुरुष, बच्चे आदि को नहीं देखूँगी। नियम सुनकर आर्यिका एक बार तो ठिठक सी गई लेकिन बड़े बहुत बड़े होते हैं, वे अपने छोटों की साधना भी करवाते हैं और उनके स्वास्थ्य का भी ख्याल रखते हैं, यही सोचकर नियम स्वीकार कर लिया। उस दिन का इन्द्रिय संयम आज तक भी आर्यिका (मुझे) संयम का सोपान देता है। धन्य हो, ऐसी आर्यिकाश्री की सोच को उन्हें बारम्बार नमन-नमन।

यहाँ के श्रावकों की भक्ति से आर्यिका पूर्ण स्वस्थ हो गई। उनकी कमजोरी भी लगभग समाप्त हो गई। जब आर्यिकाश्री का विहार होने लगा तो यहाँ के श्रावकों ने अतिशय क्षेत्र चाँदखेड़ी की पद-यात्रा करने की भावना रखी अर्थात् आर्यिकाश्री के साथ ही सभी को पैदल चलकर यात्रा

करनी थी। उनकी भावना को देखते हुए पूज्य आर्यिकाश्री ने शुभाशीष दिया। लगभग ६०-७० श्रावक गण बोरव से रावतभाटा, कोटा, झालावाड़ होते हुए लगभग १५-२० दिन में तीर्थ-वन्दना सानन्द सम्पन्न हुई। यात्रा के बाद लौटकर आर्यिकाश्री अनेक स्थानों पर विहार करते हुए तीर्थक्षेत्र श्री चंवलेश्वर की वन्दना करने पहुँचीं। यद्यपि आर्यिकाश्री इस क्षेत्र की वन्दना गुरुवर के साथ पहले भी कर चुकी थीं, फिर भी उनमें पार्श्वनाथ भगवान् के प्रति विशेष भक्ति होने से और संघस्थ सदस्यों की वन्दना नहीं हुई थी, इसलिए उनको वन्दना कराने के लिए आर्यिकाश्री यहाँ आई थीं। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ का समवसरण आया था। विन्ध्यावली क्षेत्र के भीमा वन में भगवान् ने केवलज्ञान होते ही समवसरण में प्रथम देशना देकर भव्यों को मोक्ष का मार्ग दिखाया तत्पश्चात् इसी क्षेत्र पर भगवान् का समवसरण भी आया था इसलिए यह तीर्थक्षेत्र उसी आभामण्डल से आज भी सभी का मन मोहित करता है। संघस्थ सदस्यों ने प्रथम बार इस अपूर्व विशुद्धि प्रदाता क्षेत्र के दर्शन किए थे। वास्तव में तो उन सभी की भावनाओं को साकार रूप देने के लिए ही आर्यिकाश्री रास्ता न होने पर भी अलग से क्षेत्र पर पधारी थीं। यहाँ चँवले के रंग वाली भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की मनोज्ञ मनभावन प्रतिमा है। दर्शन करते ही सभी का मन आह्लादित हो उठा। सभी की चेतना प्रभु के गुणों में लवलीन हो गई। प्रातःकालीन वंदना करके सभी ने नीचे आकर आहार-चर्या की। मध्याह्न में सभी ने पुनः वन्दना की। पूज्या आर्यिकाश्री के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए सभी उनके पीछे-पीछे पर्वत पर वन्दनार्थ चले। सभी ने प्रभु की वन्दना की, स्तुति की, पाठ आदि किए। संध्याकालीन वन्दना के बाद जब पर्वत से नीचे आने का समय आया, तब पूज्या आर्यिकाश्री बोलीं—मैं तो आज रात भर यहीं प्रभु के चरणों में बैठकर ध्यान करूँगी। सुनते ही हम सभी के दिल काँपने लगे। इतनी ठण्ड में जहाँ दिन में सूर्य का दर्शन भी दुर्लभ है और धूप निकले तो भी उसका स्पर्श गरम नहीं लग रहा था। इतनी भयंकर शीत लहर के समय में भी पूरी रात पर्वत के ऊपर बैठना कैसे संभव होगा? जिनालय भी चारों तरफ से खुला है, पूरी रात हवा अंदर प्रवेश करती रहेगी।

गर्मी होती तो फिर भी ठीक था, पर सर्दी की रात शीत लहरों के साथ कैसे व्यतीत होगी ? हवा तो हवा होती है, गर्मी की लू वृक्षों को सुखा कर निर्जीव-सा कर देती है तो सर्दी की ठण्डी हवाएँ दाह उत्पन्न करके हरे-भरे वृक्षों को जलाने में समर्थ होती हैं, आखिर श्रावक पर्वत के ऊपर सर्दी से बचने की कितनी व्यवस्था कर पाएँगे, आदि-आदि सोचकर हम सभी हैरान थे, सभी परेशान हो रहे थे, लेकिन बड़ों के सामने बोलने का साहस सबमें कहाँ होता है? फिर भी सभी ने साहस बटोर कर कहा-पूज्या आर्यिकाश्री आपका कोमल शरीर पर्वत पर चलने वाली शीत-लहर को सहन नहीं कर पाएगा। रात्रि में यहाँ रहने से आपका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा, अतः आप आज रात्रि की अपेक्षा कल प्रातःकाल से शाम तक पूरे दिन प्रभु-चरणों में ध्यान लगा लेना। हम सब भी आपके साथ ध्यान करने की कोशिश करेंगे। पूज्या माता जी रात्रि में आप भले ही अपने भेदविज्ञान से अध्यात्म के बल से ठण्ड को सहन कर लेंगी, पर हम लोगों को तो सर्दी लगेगी ही लगेगी, उसे मिटाने के लिए हम भगवान् के सामने चादर-चटाई ओढ़कर भी नहीं बैठ सकते, अतः आप अभी नीचे चलने की कृपा करें। आप स्वयं भी अनुभव कर रही हैं कि अभी सूर्य है, तब भी कितनी ठण्डी हवा चल रही है तो रात में पता नहीं क्या होगा? आदि-आदि विभिन्न प्रकार से सभी संघस्थ त्यागी-व्रतियों ने प्रार्थना की, निवेदन किया, लेकिन कुछ नहीं हुआ और पूज्या आर्यिकाश्री प्रतिक्रमण, आचार्य-वन्दनादि आवश्यक करके श्री जिनेन्द्रदेव के चरणों में ध्यान लगाकर बैठ गई। सारी रात ध्यान करती रहीं। भगवान् की कृपा से उन्हें कुछ नहीं हुआ। धन्य हो ऐसे साधकों को जिन्हें सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि बाधाएँ आत्म-ध्यान से विचलित नहीं कर पाती हैं। उन्हें तो शरीर की नहीं मात्र आत्म-कल्याण की ही चिंता रहती है, उसी ओर उनका लक्ष्य बना रहता है। वे बुद्धिपूर्वक प्रतिकूलताओं को मिलाकर कर्म-निर्जरा करने में लगे रहते हैं। उनके समान ही हमें भी साहस मिले, इसी भाव से उन्हें कोटिशः प्रणाम।



इस वर्ष का वर्षायोग रामगंजमण्डी (राजस्थान) में हुआ। रामगंजमण्डी

वाले श्रावकों ने पूज्या आर्यिकाश्री की दीक्षा के पूर्व पूज्य गुरुवर का वर्षायोग करवाने के लिए अथक पुरुषार्थ किया था, परन्तु किस्मत ने साथ नहीं दिया था, इसलिए वह वर्षायोग भानपुरा में हो गया था। उसी समय से ब्र. कुसुम दीदी अर्थात् आर्यिकाश्री के मन में उनके प्रति सहानुभूति भरी हुई थी संवेदना थी, उसी संवेदना की फलश्रुति था यह वर्षायोग। इस वर्षायोग का एक-एक पल एक-एक वर्ष जैसा लग रहा था, उनकी भावनाएँ बलबती होती जा रही थीं। उनमें गुरुवर आचार्य महाराज के दर्शन करने की आकुलता बढ़ती जा रही थी। फिर भी वर्षायोग निष्ठापन हुए बिना विहार कैसे हो सकता था ? इसलिए वे दीपावली आने का इंतजार कर रही थीं। इसी बीच एक दिन उन्होंने सोचा मैं प्रतिदिन जब आहार के लिए निकलती हूँ बहुतायत मुझे दो-तीन फलों के ठेले मिल ही जाते, इसलिए आज मैं यह नियम लेकर निकलती हूँ कि रास्ते में कोई फलों का ठेला मिलेगा तो आहार करूँगी। योग से उस दिन फलों का एक भी ठेला नहीं मिला। आर्यिकाश्री का अलाभ हो गया। यह भी अपने भाग्य की परीक्षा का अवसर होता है। इस वर्षायोग में आर्यिकाश्री ने गुरु-दर्शन के लिए कुछ-कुछ विशेष अनुष्ठान भी किए थे। उनकी गुरुदर्शन की उत्तम भावनाओं को देखकर एक दिन एक श्रावक-श्रेष्ठी ने आर्यिकाश्री से निवेदन किया कि हम आपके गुरुदर्शन की भावना को पूर्ण करने में सहयोगी बनना चाहते हैं, अर्थात् हम दो परिवार मिलकर आपको राजस्थान से मध्यप्रदेश तक के विहार में आहार-दान आदि देकर सेवा/वैय्यावृत्य का लाभ लेना चाहते हैं। आर्यिकाश्री ने उन्हें प्रसन्नता से आशीर्वाद दिया। वर्षायोग के पश्चात् आर्यिकाश्री का सीधा विहार मंगल मुहूर्त में चाँदखेड़ी के भगवान् आदिनाथ स्वामी के दर्शन से प्रारम्भ हुआ। कुछ ही दिनों में मध्यप्रदेश के अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ़ में त्रयपद धारक शांति-कुन्धु-अरनाथ भगवान् की खड्गासन प्रतिमाओं के दर्शन कर सबका मन आह्लादित हो गया।

जब श्रमणसंस्कृति के उद्धारक आचार्यवर्य ने सुना कि मेरे गुरुभाई आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी की शिष्या आर्यिका विशालमति ससंघ

गुना के आसपास पहुँच चुकी हैं, तो उन्होंने ब्रह्मचारिणी बहनों को उनके पास जाकर परिचर्या, सेवा, वैयावृत्य करके मार्ग की थकान को दूर करने की प्रेरणा दी। गुरुवर का निर्देशन मिलते ही बहनों ने बजरंगगढ़ जाकर जब पूज्या आर्यिकाश्री को गुरुवर का शुभाशीष दिया तो उनका मन गद्गद् हो गया, उनके अन्तरंग की खुशियों के आँसू आँखों में छलक आए। यहाँ से गुना होते हुए संघ अशोकनगर पहुँचा। जहाँ कुण्डलपुर वर्षायोग में गुरुवर के कर-कमलों से स्तनत्रय निधि प्राप्त करने वाली आर्यिका प्रशांतमति माता जी का संघ विराजमान था। आर्यिकासंघ ने पूज्य आर्यिकाश्री की भव्य अगवानी की। यहाँ के श्रावक अच्छे धर्मात्मा हैं, वैयावृत्य करने में कुशल हैं, इसलिए आर्यिकाश्री ने राजस्थान से मध्यप्रदेश तक विहार करने की थकान को मिटाने के लिए तथा आर्यिकासंघ के साथ साधर्मी वात्सल्य का निर्वाह करने हेतु ७-८ दिन तक यहाँ विश्राम किया। उसके बाद गुरुवर की दर्शन पिपासा को शांत करने के लिए गुरुवर की दिशा में विहार किया, किन्तु किस्मत में कब क्या होना लिखा है, उसको भगवान् के अलावा कोई नहीं जान सकता है, इसलिए कभी विपरीत पुरुषार्थ करने वाले के भी कार्य की सिद्धि हो जाती है और कभी सही दिशा में पुरुषार्थ करने वाला भी धर्म से नीचे गिर जाता है। आर्यिकाश्री का पुरुषार्थ सही दिशा में होने पर भी उनकी किस्मत पक्ष में नहीं थी, इसलिए कुछ ही दूरी पार हुई कि आर्यिकाश्री के सीने में भयंकर दर्द होने लगा तात्कालिक अनेक उपचार करने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ तो वहीं रात्रि-विश्राम करके प्रातःकाल उन्हें अशोकनगर वालों की भक्ति एवं आग्रह से पुनः अशोकनगर ही लौटना पड़ा। ऐसे वक्त पर ही बोधि की दुर्लभता समझ में आती है आर्यिकाश्री को भी बोधिदुर्लभ भावना और पूर्वोपार्जित कर्मोदय का चिन्तन करके संतोष करना पड़ा। वैद्यों की औषधि से तथा यहाँ के आहारदान एवं सेवा करने में प्रसिद्ध चाचा (छोटे चाचा और बड़े चाचा) एवं ब्रह्मचारिणी सविता जी एवं माया जी की सेवा से ४-६ दिन में ही आर्यिकाश्री को स्वास्थ्य में लाभ मिल गया, लेकिन यहाँ के लोगों ने कहा—अभी स्वास्थ्य लाभ होने के बाद भी कमजोरी समाप्त नहीं हुई है, इसलिए कुछ दिन यहीं पर हम लोगों को



धर्म-लाभ दीजिए। श्रावकों के विशेष-आग्रह पर आर्यिकाश्री ने यहाँ णमोकारमंत्र का शिविर लगाया अर्थात् णमोकारमंत्र में कितनी मात्राएँ होती हैं, इसे किस प्रकार पढ़ना चाहिए। इसको पढ़ते समय किस प्रकार श्वास लेना चाहिए। किस प्रकार छोड़ना चाहिए, कितने श्वासोच्छ्वासों में एक णमोकारमंत्र का उच्चारण होता है। इस प्रकार श्वासोच्छ्वास-पूर्वक णमोकार मंत्र का जाप करने से क्या लाभ होता है ? इन सबको समझा कर उनका प्रयोग भी करवाया था। जिसने २७ श्वासोच्छ्वासों में एक कायोत्सर्ग (९ बार णमोकार मंत्र) ठीक समय पर किया, उसे समाज के द्वारा पुरस्कार/सम्मान भी दिया गया। इस शिविर में लगभग ८-१० दिन लगे थे। सबको बहुत आनन्द आया था। बहनें पूज्या आर्यिकाश्री की वैयावृत्य करती जाती थीं और गुरुवर की साधना के बारे में बताते हुए गुणगान करती थीं, जिससे आर्यिकाश्री को बहुत सम्बल मिलता था। उस समय गुरुवर के गुणों को सुनते जाने से उन्हें वैयावृत्य के समय, समय व्यर्थ होना नहीं लगता था। उस समय वे बहनों को दीक्षा लेने की प्रेरणा भी देती जाती हैं। जब उन बहनों की आँखों में अपनी किसी निजी परिस्थिति के कारण दीक्षा की तात्कालिक असमर्थता बताते-बताते पानी भर आता तो आर्यिकाश्री उन्हें समझाती कि वास्तव में असिधारा जैसे कठिन व्रत को बाल्यावस्था में धारण करके भी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहे, यह सत्य है, लेकिन इसमें निराश होने की कोई बात नहीं है, हमें अपने मन में हीनता की भावना नहीं लाना चाहिए। हमारे मन में यदि हीनता की भावना आने लगे तो विषम परिस्थितियों से जूझकर भी दीक्षा लेने वाली पवित्रात्माओं के जीवन प्रसंगों को याद करना चाहिए। इस प्रकार प्रेरणा देते हुए वे स्वयं की भावना होते हुए भी कितनी दुर्लभता से दीक्षा ले पाई, उस सम्बन्धी संस्मरण सुनाती थी। कभी प्रभुभक्ति और गुरुकृपा की महत्ता बताती थीं। कभी आर्यिकापद में की जाने वाली साधना को बताकर उनकी निराशा को आशा में बदल देती थी। इस प्रकार एक-दूसरे के भावों का आदान-प्रदान देखकर सबके हृदय गद्गद् हो जाते थे। इस प्रकार आर्यिकाश्री शरीर की सेवा करवाते हुए स्वाध्याय करती रहती थीं।



एक दिन आर्यिकाश्री से बहनों ने साधना के बारे में कुछ सूत्र बताने की प्रार्थना की तो आर्यिकाश्री बोलीं—अपने को दीवाल की तरफ मुँह करके कुछ समय के लिए अर्थात् ५-१० मिनट तक संकल्प करना चाहिए, कि मैं इतनी देर तक न किसी को देखूँगी, न किसी से बोलूँगी और न ही किसी की बात सुनूँगी। ऐसा करने से इन्द्रिय विजय का अभ्यास होता है। इसी प्रकार २ मिनट तक मैं बुद्धिपूर्वक किसी में भी चाहे चेतन हो या अचेतन राग-द्वेष, अच्छा-बुरा का भाव नहीं करूँगी। इस प्रकार वे अनेक प्रकार से साधना करने की विधि समझाती थीं। एक दिन कुछ बहनें उनके दर्शन करने आईं, उनमें से एक ब्रह्मचारिणी बहन ने आर्यिकाश्री से कहा—माता जी, मैं उपवास नहीं कर पाती हूँ, मुझे उपवास करने में बड़ी तकलीफ होती है। आर्यिकाश्री उसकी वेदना सुनकर वात्सल्यपूरित शब्दों में बोलीं—बहन इतनी अधीर क्यों होती हो, हमें कभी जीवन में किसी भी क्षेत्र में अधीर नहीं होना चाहिए। मैं तुम्हें उपवास करने की विधि बतलाती हूँ तुम उसी विधि से उपवास करना, तुम्हें उपवास करने में कोई तकलीफ नहीं होगी। तुम सबसे पहली बार अन्न का त्याग करना, फिर दूसरी बार भर-पेट लौकी आदि २-४ हल्की-फुल्की वस्तुएँ लेना तीसरी बार केवल पानी लेकर उपवास करने का अभ्यास करना, इस विधि से तुम पाँचवी बार पूरा निर्जल उपवास कर लोगी। तुम्हें किसी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं होगी, बहन सभी कार्य अभ्यास साध्य हैं। ब्रह्मचारिणी को आर्यिकाश्री की बात अच्छी लगी। उसको आर्यिकाश्री के प्रति आस्था थी, इसलिए उसने उपवास करना शुरू कर दिया, आज भी वह जेष्ठ-वैशाख माह तक में उपवास कर लेती हैं। कभी कोई दीक्षा लेने के लिए कहती तो आर्यिकाश्री उनको आश्रय देने का आश्वासन अवश्य देती थीं। जिससे उनकी भावनाएँ प्रबल हो जाती थीं। जिस प्रकार घड़े के जल में कमल के संसर्ग से उसका शीतलपना और सुगंधितपना बढ़ता है तथा अग्नि के संयोग से दोनों गुण नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार उत्तम पुरुषों के आश्रय से मुनियों का रत्नत्रय बढ़ता है, व्रतियों का मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है और नीच पुरुषों के आश्रय से रत्नत्रय गुण

घटता है, मलिन हो जाता है, अतः हमें सदैव गुणियों की/उत्तम पुरुषों की संगति करना चाहिए।

यहाँ से अर्थात् अशोकनगर से अतिशय क्षेत्र थूबौन जी, चन्देरी जी, ललितपुर क्षेत्रपाल जी, सीरोन जी, देवगढ़ आदि क्षेत्रों की वन्दना करते हुए गुरुवर पथरिया में विराजमान थे, इसलिए उसी दिशा में आर्यिकाश्री का विहार हुआ था। वहाँ गुरुवर के सान्निध्य में पंचकल्याणक महामहोत्सव जिनबिम्ब प्रतिष्ठा का कार्यक्रम चल रहा था इसलिए विश्वास था कि गुरुवर पंचकल्याणक तक तो निश्चित रूप से वहाँ रुकेंगे अन्यथा अनियत विहारी गुरुवर का क्या विश्वास ? कब वे पिच्छी उठाकर चल दें, कुछ कहा नहीं जा सकता है। इसलिए पूज्या आर्यिकाश्री का भाव था, कि वहीं पर गुरुवर के दर्शन हो जाएँ तो अच्छा है। इसी विचार से स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं होने पर भी वे जल्दी-जल्दी विहार कर रही थीं। आखिर चलते-चलते वह दिन आ गया जब आर्यिकाश्री को गुरु-दर्शन के लिए की गई इंतजार की घड़ियाँ समाप्त हुईं। आर्यिकाश्री ससंघ संभावित फरवरी १९९० में सायंकाल पथरिया के जिनमंदिर पहुँचीं। पुण्य का योग प्रबल था, इसलिए इधर से आर्यिकाश्री संघ सहित पहुँचीं और उधर से गुरुवर संघ सहित पाण्डाल से मंदिर में पधारे। जैसे ही गुरुवर ने पाद-प्रक्षालन करके कायोत्सर्ग किया। पूज्या आर्यिकाश्री ने और हम सभी ने गुरुवर को नमोऽस्तु किया और तीन प्रदक्षिणा दीं, उस समय गुरुवर की मुद्रा ऐसी लग रही थी मानो चतुर्थकाल में कोई मुनिराज खड्गासन मुद्रा में स्थित होकर ध्यान में लीन हो। दर्शन करते ही उनकी आँखों में सुकुमाल-सुकौशल आदि महा-मुनिराजों की तस्वीरें उभर आई थी। उस समय ऐसी अनुभूति हो रही थी, मानो उन्हीं मुनिराज के दर्शन/गुरुवन्दन करके पूर्वोपार्जित पापों का प्रक्षालन कर रहे हों। पूज्य आर्यिकाश्री सहित आर्यिकात्रय ने गुरु-चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु करके मौनपूर्वक ही कुशलता पूछी और गुरुदर्शन की अपार खुशियों को परिमित शब्दों में प्रकट करने का साहस बनाया था। उस समय आर्यिकासंघ के दर्शन की खुशियों को देखकर चारों ही तरफ खड़े श्रावक सब कुछ भूल गए थे, उनको भी लग रहा था कि वास्तव में गुरु-वन्दना

का आनन्द कैसा और कितना होता है ? उसी आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए वे गुरुवर एवं आर्यिकाश्री का जय-जयकार कर रहे थे। गुरुवर ने आर्यिकासंघ को मुस्कुरा कर आशीर्वाद दिया और मानो मौन से ही सब कुछ कह दिया हो अर्थात् आर्यिकाश्री को शरण दे दी हो। उस समय सूर्य नारायण भी मानो आर्यिकाश्री के द्वारा की जाने वाली गुरु-वन्दना को देखने के लिए ही रुका हो, सो दर्शन होने के बाद अस्ताचल को चला गया। सूर्यास्त हो जाने से गुरु अपनी वसतिका में एवं आर्यिकाश्री भी अपनी वसतिका में चली गईं।

आज पूरी रात आर्यिकाश्री को गुरुवर की वीतराग मुद्रा ही दिखती रही थी। वही उनकी आशीर्वाद और सौम्य-शान्त मुद्रा जो सम्यग्दृष्टि का चिह्न होती है, सामने घूमती रही थी। उनकी मधुर मुस्कान आर्यिकाश्री के रोम-रोम में समा गई थी। दूसरे दिन प्रातःकाल आर्यिकाश्री ने संघ सहित गुरुवर की सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और आचार्यभक्तिपूर्वक गुरु-वन्दना की। गुरुवर ने अपना शुभाशीष देकर आर्यिका संघ को उपकृत किया। तीसरे दिन पूज्य गुरुवर ने आर्यिकाश्री को चर्चा करने के लिए समय दिया क्योंकि यही आगम की आज्ञा है कि ३ दिन तक आगंतुक साधु की चर्चाओं को देखना चाहिए। उसके बाद ही उनसे चर्चा आदि करना चाहिए। चर्चा में गुरुवर ने आर्यिकाश्री से कहा—आर्यिकाएँ पंच-परमेष्ठी में नहीं आती हैं वस्त्रधारी पूज्य नहीं होता है, इसलिए आर्यिकाओं की परिक्रमा, पाद-प्रक्षालन पूजन नहीं होती है। आहार-चर्चा में आर्यिकाओं को ये भक्तियाँ नहीं करवाना चाहिए, उन्हें अपने पद के योग्य ही नवधाभक्ति स्वीकार करना चाहिए। आचार्य गुरुवर के संकेत मात्र से आर्यिकाश्री ने सब कुछ समझ लिया। परिक्रमा और पाद-प्रक्षालन तो वे पहले ही नहीं करवाती थी। मात्र दीक्षा गुरु की आज्ञा से अर्घ्य चढ़वाती थीं, सो उसे भी आचार्य महाराज के निर्देशन से बन्द कर दिया था। इसी प्रकार अशुद्धि के समय पिच्छी को नहीं रखना चाहिए, यह आगम के अनुकूल नहीं है। आर्यिकाश्री ने उसी समय से अशुद्धि के समय पिच्छिका रखना भी बन्द कर दिया। एक दिन गुरुवर बोले हम साधुओं को विद्युत के प्रकाश का प्रयोग करना उचित

नहीं है, विद्युत की उत्पत्ति में महान् हिंसा होती है। पूज्या आर्यिकाश्री ने गुरुवर के इशारे को ही निर्देश और आगम समझकर तत्काल ही विद्युत प्रकाश में पढ़ना-लिखना छोड़ दिया। पूज्या आर्यिकाश्री का आचार्य भगवन् के प्रति समर्पण का यही जीता-जागता उदाहरण था, उन्होंने उनकी सारी बातें सहज रूप से बिना तर्क-वितर्क किये ही स्वीकार कर लीं, स्वीकार ही नहीं की वरन् तदनु रूप आचरण भी किया। पंचकल्याणक महोत्सव का मेला होने से दर्शनार्थियों का ताँता लगा हुआ था। फिर इसके साथ में यह भी एक विशेष बात थी, कि लोगों ने पूज्या आर्यिकाश्री के संदर्भ में सुन रखा था कि वे संघ सहित गुरुवर के प्रथम दर्शनार्थ आ रही हैं, सो भी अनेकानेक त्यागी-व्रती विशेष तौर पर वहाँ आ पहुँचे थे। कई ब्रह्मचारिणी बहनें जिन्होंने पूज्य गुरु-मुख से कई बार पूज्या आर्यिकाश्री के संदर्भ में सुना था, सो भी अपने अन्य कार्यों को छोड़कर इस अनूठे गुरु-शिष्य के मिलन को देखकर सातिशय पुण्यार्जन हेतु ही आई थी। एक पंथ दो काज की कहावत सार्थक हो रही थी। पंचकल्याणक का मेला और गुरु दर्शन के साथ आर्यिकासंघ के दर्शन का लाभ। उन्होंने जब पूज्या आर्यिकाश्री के दर्शन किए तो वे दंग रह गईं, उनके वस्त्र/साड़ी देखकर तो वे और भी विस्मित हुईं क्योंकि आज तक उन्होंने कभी किसी आर्यिका को इतनी मोटी और गंदी साड़ी पहने नहीं देखा था और वे ऐसी पीली-सी गंदी खादी की मोटी साड़ी भी सहज रूप से पहने थीं, उन्हें न साड़ी के मोटे होने का विकल्प था और न ही गंदी होने का। उनकी धारणा थी, कि मैंने साड़ी शरीर को सजाने के लिए नहीं पहनी है न ही सुन्दरता के लिए पहनी है, मैंने तो स्त्री के योग्य लज्जा एवं शील की रक्षा के लिए साड़ी पहनी है। दूसरी बात आर्यिकाओं की साड़ी आकर्षक नहीं होना चाहिए, इससे वैराग्य की वृद्धि होती है, यह सब बातें सहज ही सिद्ध हो रही थीं। साड़ी गंदी है, यह विकल्प आर्यिकाओं का नहीं श्रावकों का है, वास्तव में यह काम श्रावकों का है, आर्यिकाओं का नहीं। पूज्या आर्यिकाश्री की साड़ी देखकर किसी को ग्लानि आ रही थी तो कई लोग उन्हें धन्य-धन्य कहते हुए उनकी चरण-वन्दना कर रहे थे और सोच रहे थे कि वास्तव में आर्यिकाएँ तो ऐसी ही

होनी चाहिए। आज इनको देखकर हमें सीता-अंजना आदि आर्यिकाओं की याद आ रही है।



पथरिया में ५-७ दिन ही गुरु-चरणों की छाँव मिली फिर गुरुवर के शुभाशीष से सिद्धक्षेत्र नैनागिरि की वन्दना के लिए आर्यिकाश्री का ससंघ विहार हुआ। यहाँ से वरदत्तादि ५ मुनिराजों ने सिद्ध अवस्था को प्राप्त किया है, सो यह सिद्धक्षेत्र कहलाता है और यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी का समवसरण आया था, अतः इसे तीर्थक्षेत्र भी कहते हैं। इसी पावन पुनीत क्षेत्र की वन्दनार्थ विहार किया था। विहार करते-करते नैनागिरि क्षेत्र के समीप ही पहुँचने वाले थे, पर २-३ किलोमीटर पूर्व ही सूर्य ने अपनी किरणों को समेट लिया वह अपना सारा परिकर लेकर अस्ताचल में चला गया और रात्रि ने अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया तो फिर दिगम्बर साधु-साध्वी कैसे चल सकते हैं? उनका गमनागमन तो सूर्य के साथ ही होता है अतः पूज्या आर्यिकाश्री ने भी संघ सहित जंगल में ही कदम रोक लिए। उन्होंने आगे बढ़ने से मना कर दिया। श्रावकों ने बहुत प्रार्थना की, कि पूज्य माता जी यह डाकुओं के आने-जाने का स्थान है, रात्रि में कभी भी अचानक उनका समूह आ सकता है, यदि रात्रि में डाकू दल आ गया तो क्या होगा? अपन लोग लगभग आधा घंटे में इस भयंकर जंगल से बाहर हो जाएँगे, जिससे रात्रि निर्भीक होकर व्यतीत हो सकेगी, अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करने के बाद भी आर्यिकाश्री के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा वे सात भयों से रहित सम्यग्दृष्टि के समान णमोकार मंत्र पढ़कर और गुरु का स्मरण करके एक समतल स्थान देखकर रुक गईं। सभी को णमोकार मंत्र पढ़ने के लिए कहा, ताकि किसी को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हो और स्वयं के भी रत्नत्रय में किसी प्रकार की बाधा नहीं आवे। वे बारम्बार भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के चरणों में परोक्ष रूप से नमस्कार करके अपने आवश्यकों में लीन हो गईं। वास्तव में कठिन परिस्थितियों से गुजरना ही परीक्षा है, उसमें उत्तीर्ण होने वाला ही सही साधक माना जाता है उन ही साधकों में एक आर्यिकाश्री भी थीं, उन्होंने मृत्यु की भी परवाह

नहीं करते हुए जंगल में रुकना स्वीकार किया, किन्तु साधु धर्म के प्रतिकूल रात्रि में चलना स्वीकार नहीं किया। यह कोई आर्यिकाश्री की हठ नहीं थी, आग्रह नहीं था और न ही इसमें कोई अहंकार का भाव ही था, यह तो उनकी मात्र रत्नत्रय को निर्मल बनाए रखने के लिए नियमों में दृढ़ता थी इसलिए उचित और प्रशंसनीय ही थी।

प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही आर्यिकाश्री ने विहार किया। क्षेत्र बहुत दूर नहीं था। थोड़ी देर में ही आर्यिकाश्री ने संघ सहित भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की वन्दना की। यहाँ पार्श्वनाथ भगवान् की अवगाहना के बराबर अर्थात् ९ हाथ ऊँचा खड्गासन आकर्षक जिनबिम्ब है, सबने प्रथम बार ही इस सिद्धक्षेत्र की वन्दना की थी, इसलिए सबको विशेष ही आनन्द आया था। दो-तीन दिन तक इस क्षेत्र पर रुककर आर्यिकाश्री ने प्रभु की वन्दना की, यहीं पर शेष मंदिर भी मनभावन है, यहाँ पर लोगों ने पूज्यवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के वर्षायोग में हुए अनेक अतिशय सुनाए और यहीं गुरुवर ने २३ दीक्षाएँ दीं, जिनमें ११ आर्यिकाओं में से उनके कर-कमलों से सर्वप्रथम दीक्षित आर्यिका गुरुमति जी थीं। गुरुवर की चर्चा से आर्यिकाश्री का मन बहुत प्रसन्न हो जाता था, इस प्रकार यहाँ दोनों प्रकार का आनन्द आया था।



यहाँ से विहार करके आर्यिकाश्री रास्ते में मिलने वाले अतिशय क्षेत्रों की वन्दना करते हुए कुण्डलपुर पहुँचीं। यहीं पर पूज्य गुरुवर भी विराजमान थे। उन्हीं के आशीष से आर्यिकाश्री को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यहाँ गुरुवर ने आर्यिकाश्री को यहाँ होने वाली आचार्यप्रवर पूज्यपाद स्वामी के द्वारा रचित तत्त्वार्थसूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि तथा न्यायदीपिका ग्रन्थ की वाचना का लाभ लेने के लिए बुलाया था। यहाँ से १००८ श्री श्रीधरकेवली भगवान् का निर्वाण हुआ था। यहीं पर्वत पर अद्भुत चमत्कारी दर्शनार्थियों के मन को सहज ही आकर्षित करने वाला जिनेन्द्र भगवान् का महामहिम मनोज्ञ जिनबिम्ब है, जिसको दुनिया “कुण्डलपुर के बड़े बाबा” के नाम से जानती है। इनके चरणों से गुरुवर का विशेष लगाव है अर्थात् वे बड़े

बाबा के भक्त हैं इसलिए लोग उन्हें छोटे बाबा कहने लगे हैं। यह सबकी गुरुवर के प्रति श्रद्धा/समर्पण का भाव है। यहाँ तक पहुँचने के पूर्व ही अर्थात् रास्ते में ही आर्यिकाश्री का स्वास्थ्य नरम-गरम होने लगा था। रास्ते में एक छोटे गाँव के चिकित्सक ने बताया था, कि आपके फेफड़ों में पानी भर गया है, लेकिन आर्यिकाश्री ने कोई ध्यान नहीं दिया, उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि डॉक्टर लोगों को दिखाओ तो वे कोई न कोई बीमारी बता ही देते हैं और विहार करते हुए बड़े बाबा तथा छोटे बाबा के चरणों में पहुँच गईं।

यहाँ लगभग ढाई महीने तक गुरुवर के मुखारविन्द से सर्वार्थसिद्धि और न्यायदीपिका की वाचना का भरपूर लाभ आर्यिकाश्री एवं संघस्थ सभी लोगों ने लिया। कोई बीमारी पर ध्यान नहीं देने या औषधि नहीं करवाने से बीमारी ठीक नहीं होती। वह अन्दर ही अन्दर अपना प्रभाव जमाती रहती है। यद्यपि गुरुवर की आध्यात्मिक शैली से सिद्धान्त ग्रन्थ तथा न्याय ग्रन्थ को पढ़ने में सरलता आ जाने से श्रुत का रसास्वादन करते हुए उन्हें अन्दर की बीमारी का अहसास भी नहीं हुआ था, वे साक्षात् गुरुवर की भक्ति का अवसर मिलने से प्रसन्न थीं। एक दिन आहार के बाद वे गुरुवर की वन्दना करती हुई बोलीं—गुरुवर! रोज-रोज आहार के लिए जाना अच्छा नहीं लगता है और उपवास करने की क्षमता नहीं है, ऊनोदर करो तो भी यह शरीर अस्त-व्यस्त होने लग जाता है। आहार में थोड़ी-सी कमी पड़ जावे या थोड़ा इधर-उधर हो जावे तो यह अपना रंग दिखाना शुरू कर देता है फिर भी आहार करना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है। आर्यिकाश्री की आन्तरिक व्यथा को सुनकर उसका समाधान करते हुए गुरुवर बोले—आहार के लिए जाते क्यों हो, इसे (शरीर को) ले जाया करो ताकि विकल्प न हो। उन्होंने अति संक्षेप में सूत्रात्मक उत्तर दिया था। आर्यिकाश्री उनके संक्षिप्त उत्तर का रहस्य क्षण भर में ही समझ गयी। गुरुवर का गूढ़ उत्तर सुनकर पूज्य आर्यिकाश्री गुरुवर का गुणगान करते हुए बोलीं—गुरुवर आपकी चर्याओं की प्रशंसा तो स्वर्ग लोक के देव भी करते हैं, आपकी आगमानुकूल चर्या को देखकर हमें भी गौरव की अनुभूति होती है और मन होता है कि



हम भी आप जैसे ही निर्विकल्प रहें। आपके समान ही नमक-मीठा आदि सबका त्याग करके नीरस भोजन करें लेकिन शरीर साथ ही नहीं देता है, इस प्रकार कहते हुए उन्होंने अन्त में कहा—गुरुवर आप धन्य हैं, आप इतने बड़े संघ के नायक हैं। इतने सारे साधु आपकी आज्ञा का पालन करते हैं। फिर भी आपको किंचित् भी मद नहीं है। पूज्या आर्यिकाश्री की बात सुनकर गुरुवर बोले—“मैं संघ का नायक नहीं मैं तो इन सबका ज्ञायक हूँ।” गुरुवर का अध्यात्म से भरा और सटीक उत्तर सुनकर पूज्या आर्यिकाश्री तो कृतकृत्य हो गईं। उन्होंने धन्य-धन्य करते हुए गुरुवर के चरणों में नमस्कार किया और इस बात को गुरु-प्रदत्त सूत्र समझकर अपने हृदय में स्थापित कर लिया।



गर्मी का मौसम तो था ही फिर कुण्डलपुर में तो चारों तरफ की पहाड़ियों से टकराकर रात्रि तक में गर्म हवाएँ चलती रहती थीं। इतनी भयंकर लू लपटों के बीच भी गुरुवर शीतल तलघर के समान अपनी आत्मा में विराजमान होकर सहजता से उष्ण परीषह सहन कर रहे थे। प्रातः और सायंकालीन कक्षाएँ चल रही थीं। गुरुवर की अमृत वाणी का पान वर्षों के प्यासे चातक पक्षी को लम्बे इंतजार के बाद मानों स्वाति नक्षत्र की बूँदें प्राप्त हुईं अथवा संतप्त धरती जैसे आषाढ की वर्षा को अपने में समा लेती है। वैसे ही वे भी गुरुवर के वचनामृत को अपनी आत्मा में आत्मसात् करती जा रहीं थी। अध्यात्म की चर्चा सुनते-सुनते आर्यिकाश्री को लगा कि एक बार इसका प्रयोग करके देखना चाहिए। शरीर और आत्मा की भिन्नता का अभ्यास करने के लिए वे गुरुवर के पास जाकर बोलीं—हे भगवन्! मैं आज पूरी रात बड़े बाबा के चरणों में बैठकर व्यतीत करना चाहती हूँ। पहले तो गुरुवर कुछ नहीं बोले फिर थोड़ी देर में शुभाशीष का हाथ उठा दिया। गुरुवर का आशीर्वाद प्राप्त कर वे बड़े बाबा के पास ध्यान में मग्न बाहर से बेखबर आत्मा और परमात्मा में लीन होकर बैठी रहीं। उन्हें यह भी भय नहीं लगा कि यह अतिशय क्षेत्र है, न जाने यहाँ कितने देवी-देवता रात्रि में प्रभुभक्ति करने आते होंगे। कहीं वे कुछ कौतुक करके मुझे डरा देंगे मुझे

कहीं बीमार कर देंगे अथवा नीचे पटक देंगे तो क्या होगा आदि किसी भी प्रकार का कोई विकल्प उनके मन में नहीं आया। सही है ऐसा विकल्प आता भी क्यों गुरुवर की छत्रछाया के साथ वे उनका शुभाशीष लेकर ही प्रभु चरणों में बैठी थीं। उन दिनों में ३-४ मंजिल ऊपर की छत पर भी रात्रि में पसीना बहता रहता था और आप बड़े बाबा के उस गर्भगृह में बैठकर भक्ति में ऐसी तल्लीन रहीं मानो कोई विशेष तलघर में बैठी हों। धन्य हैं पूज्या आर्यिकाश्री यदि स्त्री पर्याय का बंधन नहीं होता और आपका उत्तम संहनन होता तो आप न जाने क्या-क्या कैसी-कैसी साधना करतीं। कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, ऐसी तपस्विनी, ज्ञानी, ध्यानी पूज्या आर्यिकाश्री के चरणों में बारम्बार नमन।

वर्षायोग का समय पास आने वाला था, यद्यपि पूज्या आर्यिकाश्री की भावना तो यही थी कि गुरु-चरणों में ही वर्षायोग करने का सौभाग्य मिले पर गुरुवर की आज्ञा न होने से उनके शुभाशीष से ही कुण्डलपुर से शाहपुर (गणेशगंज) की ओर वर्षायोग हेतु विहार हुआ। कुण्डलपुर से शाहपुर की दूरी अधिक नहीं है, पर पूज्या आर्यिकाश्री ने जिस बीमारी पर ध्यान नहीं दिया था वह अंदर में धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते अपने उफान पर आने लगी थी। आखिर तिरस्कृत हुआ कोई कब तक शांति से बैठ सकता है। वह बीमारी भी अति रोष में आ गई। उसने अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया। शाहपुर पहुँचते-पहुँचते मलेरिया के साथ-साथ काले मोतीझरा ने भी दबोंच लिया। वर्षायोग की स्थापना में ही बुखार आ गया, दिन में ७-८ बार अतिसार होने लगे साथ ही वर्षा की अधिकता के कारण शीत-प्रकोप भी शुरू हो गया, जिससे जमीन का स्पर्श भी असह्य हो गया। पानी के स्पर्श मात्र से उनके शरीर का एक-एक रोम खड़ा होने लगा। यहाँ की महिलाएँ बहुत अच्छी थीं, आज भी अच्छी हैं, यहाँ की महिलाओं के द्वारा की गई सेवा वास्तव में प्रशंसनीय है, आदर्श और स्तुत्य है। यहाँ की एक महिला ने तो आर्यिकाश्री की शौच तक को साफ करने का बीड़ा उठाया था। आर्यिकाश्री के शौच जाकर लौटते ही वह तत्काल साफ कर देती थीं चाहे उसे कितनी भी बार कपड़े बदलने पड़े, उसको उसमें न थकान आती

थी और न ही बार-बार सफाई करने में ग्लानि ही आती थी। कुछ महिलाओं ने आर्यिकाश्री की चर्याओं एवं स्वास्थ्य का ख्याल रखते हुए उन्हें बिना गैस, चूल्हा आदि जलाए ही गरम-गरम आहार चलाने की जिम्मेदारी ली थी, क्योंकि किंचित् मात्र भी ठंडा भोजन हाथ में आ जाने पर वह शीत के कारण उछलने लगता था, चाहे वह रोटी का ग्रास हो या सब्जी हो अथवा वह औषधि ही क्यों न हो इसलिए महिलाएँ अपनी चतुराई से भोजन को ठण्डा नहीं होने देती थी। वे आर्यिकाश्री को चर्या के नाम से कोई विकल्प उत्पन्न नहीं होने देती थी। जब पूज्या आर्यिकाश्री आहार, शौच अथवा जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने जातीं तब भी वे उस स्थान तक पाटे अथवा चटाइयाँ बिछा देती थीं, ताकि उनको जमीन पर पैर नहीं रखना पड़े जिससे शीत का प्रकोप नहीं बढ़े। लगभग दो महीने तक दोनों ही बीमारियों ने आर्यिकाश्री का पीछा नहीं छोड़ा, लेकिन यहाँ की श्राविकाओं की गुरु-भक्ति से डरकर वर्षायोग पूरा होते-होते उन्हें भी विदाई लेनी ही पड़ी अर्थात् आर्यिकाश्री का स्वास्थ्य ठीक हो गया।



इस वर्षायोग में पूज्य गुरुवर के आशीर्वाद से बाल ब्रह्मचारिणी बहन अंगूरी जी सागर, स्थानीय नगर गौरव बाल ब्रह्मचारिणी बहन मीना जी (शाहपुर), ब्र. श्यामाबाई जी (आर्यिका साधुमति जी एवं आर्यिका साधनामति जी की माँ) एवं राधाबाई जी पथरिया ने आर्यिकाश्री के चरणों का सान्निध्य प्राप्त किया था। एक दिन ब्रह्मचारिणी बहन मीना अपनी बड़ी बहन माधुरी के साथ पूज्या आर्यिकाश्री के पास बैठी थी। उन दोनों को देखकर पूज्या आर्यिकाश्री बोलीं—तुम दोनों को देखकर ऐसा लग रहा है मानो ब्राह्मी-सुन्दरी बैठी हों। यह सुनकर ब्रह्मचारिणी मीना बहन की बड़ी बहन माधुरी को लगा कि मेरी छोटी बहन ने तो व्रत ले ही लिया है, अब मुझे भी व्रत ले लेना चाहिए। पूज्य आर्यिकाश्री के मन में मेरे प्रति विशेष कल्याण की भावना है, मुझे उनकी भावनाओं को पूरा करना चाहिए। उसकी बहन ब्रह्मचारिणी मीना का बहुत दिनों से भाव था कि मेरी माधुरी बहन व्रत ले ले पर उसे वैराग्य नहीं आ रहा था, वैराग्य के बिना व्रत लेने से व्रत नियम

अच्छे से नहीं निभ सकते हैं, वे भार रूप से अनुभव में आने लगते हैं। उसने माधुरी को कई बार समझाया भी था, पर उसे भोगों के प्रति आकर्षण होने से उसके भाव मोक्षमार्ग पर बढ़ने के नहीं होते थे। यद्यपि वह धर्म करती थी, धर्मात्मा थी, साधु-संतों की सेवा, आहारदान आदि सभी कार्य करती थीं, किन्तु उसके मोक्षमार्ग में बढ़ने के भाव नहीं होते थे, वह तो अपनी शादी की कल्पनाओं में ही खोई रहती थी। उसी सम्बन्धी तैयारियाँ भी करती रहती थीं। पर आज जब पूज्या आर्यिकाश्री के मुख से ब्राह्मी-सुन्दरी बनने की बात सुनी तो उसका हृदय परिवर्तित हो गया, उसके मन से भोगों के प्रति आकर्षण समाप्त होने लगा, उसको अब आर्यिकाश्री की सेवा-वैय्यावृत्य में विशेष आनन्द आने लगा। वह पूज्या आर्यिकाश्री की एक-एक बात को सुनकर जीवन में उतारने का प्रयास करने लगी। आखिर वर्षायोग के अंतिम चरण तक उसके मन में वैराग्य का अंकुर उत्पन्न हो गया। उसने पिच्छी परिवर्तन के मांगलिक अवसर पर ५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प लेकर पूज्या आर्यिकाश्री की पिच्छिका लेने का सौभाग्य प्राप्त किया और पूज्या आर्यिकाश्री की ब्राह्मी-सुन्दरी बनने की भावना पूरी करने का एक सफल प्रयास किया। उसने पूज्य गुरुवर के शुभाशीष से संघ में प्रवेश लेकर जीवन को बहुत अच्छा बना लिया। उसने आर्यिका वृषभमति जी बनकर दो वर्ष पूर्व समाधिमरण पूर्वक प्राणों का विसर्जन करके अपने मनुष्य-भव को सार्थक किया था। धीरे-धीरे आर्यिकाश्री का स्वास्थ्य ठीक हो गया, पर फेफड़ों में भरे पानी को सुखाने से उनकी झिल्लियाँ सिकुड़ गई थीं, जिससे उनमें ऑक्सीजन सही न पहुँचने के कारण चलने में तकलीफ होती थी, उन्हें लगभग २००-३०० मीटर चलकर विश्राम करना आवश्यक होता था, उन्हें थकान की अनुभूति भी होती थी। वे एक-दो मिनट विश्राम लेकर ही आगे चल पाती थीं, फिर भी उनके पास साहस था और व्रतों के प्रति बहुमान भी था, इसलिए धीरे-धीरे चलकर वे बण्डा पहुँच गईं। यह बुन्देलखण्ड की प्रसिद्ध नगरी है, यहाँ के बहुत सारे भाई-बहन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किए हुए थे, उनमें से कई मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक बन चुके थे, तो कई घर में रहकर मुनि-आर्यिका बनने की

साधना कर रहे थे और बहुत सारे भाई-बहनें आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेने के लिए संकल्पबद्ध हो अपनी चर्या में सुधार कर रहे थे। यहाँ के बहन-भाईयों ने आर्यिकाश्री की वैय्यावृत्य के साथ उनसे त्रिलोकसार, पंचस्तोत्र, स्वयंभूस्तोत्र आदि पढ़कर धर्म, ज्ञान की वृद्धि करके समय एवं सान्निध्य का उपयोग किया था। यहाँ गुरुवर के आशीर्वाद से आर्यिकाश्री ने लगभग ३-४ माह तक रहकर स्वास्थ्य लाभ लिया और ज्ञान दान देकर धर्म की प्रभावना की थी, उसके बाद यहाँ से सागर के लिए विहार हुआ बण्डा और सागर के बीच कर्रापुर गाँव में भी आर्यिकाश्री ने १५-२० दिन रुककर श्रावकों को धर्मलाभ दिया था। यहाँ के लोगों को संभवतः पहली बार आर्यिका संघ का समागम मिला था, इसलिए सबने आर्यिकाश्री की चर्या को देखकर अपने जीवन को धर्ममार्ग में अग्रसर किया था। यहाँ अहिंसा का प्रचार-प्रसार तथा मांसाहार को रोकने के लिए शाकाहार रैली आदि कार्यक्रम भी नव-जवानों ने बड़े उत्साह के साथ किए थे। यहाँ पर आर्यिकाश्री की साधना एवं वात्सल्य से प्रभावित होकर यहाँ की एक लगभग १७-१८ वर्ष की बालिका सीमा जैन ने ब्रह्मचर्य व्रत लेने की भावना बनाई थी, वही आगे बढ़ते हुए आज आर्यिका गरिमामति बनकर रत्नत्रय की साधना कर रही है।

यहाँ से आर्यिकाश्री ने संघ सहित सागर की ओर विहार किया। गर्मी की अधिकता होने से गुरुवर के आशीर्वाद से यहाँ पर भी संघ लम्बे समय तक रुका था। यहाँ एक दिन पूज्य आर्यिकाश्री की भक्त अजमेर की एक महिला दर्शन करने आई। उसने आर्यिकाश्री से कहा—आप बहुत विदुषी हैं, आपकी पठन-पाठन की कला भी बहुत अच्छी है, आप सरल तरीके से विषय को सबके अन्दर उतार देती हैं, मेरी प्रार्थना है कि आप तत्त्वार्थसूत्र महाग्रन्थ पर कुछ छोटे-छोटे प्रश्न बना दीजिए। जिससे हमारे जैसे अल्पज्ञ जन भी तत्त्वार्थसूत्र के रहस्य को थोड़ा-थोड़ा समझ सकें। उस समय उन्होंने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन यह बात उनके दिमाग में घूमने लगी इसलिए वे एक दिन मुझसे (आर्यिका विज्ञानमति) से बोलीं—माता जी पूज्य गुरुवर ने जो कुण्डलपुर में अपन लोगों को सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ

पढ़ाया था, उसको आधार बनाकर कुछ प्रश्नोत्तर बना दो, जिसमें कनक (अजमेर की भक्त जिसने निवेदन किया था) की भावना पूरी हो सके। मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है इसलिए मैं यह श्रमसाध्य कार्य नहीं कर पाऊँगी। मुझे विश्वास है कि आप यह कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न कर लोगी। मैं उनकी बात सुनकर हक्की-बक्की रह गई। मैं उस समय कुछ समझती भी नहीं थी और बड़ों के सामने कुछ बोलने का साहस भी नहीं था, इसलिए यह कार्य न स्वयं उन्हें ही करने का निवेदन कर पाई और न ही इस कार्य को करने के लिए हाँ ही भर पाई, लेकिन गुरु की बात का विचार कर उनसे शुभाशीष लेकर परोक्ष में गुरुवर को नमस्कार कर तथा माँ जिनवाणी को हृदय में विराजमान कर प्रभु के स्मरण के साथ कार्य प्रारम्भ कर दिया। धन्य हो उस महानात्मा को जो स्वयं प्रश्नोत्तर बनाने में सक्षम होकर भी मुझ जैसी छोटी-सी आर्यिका को जिसको उन्होंने ही सब कुछ सिखाया था, इतना बड़ा कार्य सौंप दिया, यही उनके वात्सल्य एवं अपने से छोटों को भी आगे बढ़ाकर धर्म-प्रभावना करने रूप सम्यग्दर्शन का चिह्न था।

ग्रीष्मकाल समाप्ति की ओर था और वर्षायोग का संकेत कभी-कभी गगनतल से गिरने वाली पानी की बूँदों से मिल रहा था। पूज्या आर्यिकाश्री की आराधना से प्रभावित हो जाने के कारण सागर निवासियों की भावना थी कि आर्यिकासंघ का वर्षायोग भी यहीं हो, ताकि ग्रीष्मकाल में मिले हमारे सत्संस्कार पुष्ट हो जावें। तभी एक दिन रहली नगर से एक सज्जन आर्यिकाश्री के दर्शन करने आए। उनसे आर्यिकाश्री के दर्शनोपरान्त अपने नगर के समीप स्थित अतिशय क्षेत्र पटनागंज में विराजमान बड़े बाबा १००८ महावीर स्वामी, सहस्रफणी भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी और उसी क्षेत्र पर विराजमान लगभग ३० जिनालयों का इतिहास बताते हुए वहाँ पधारकर वंदना करने के लिए विनती की। उनसे अपने नगर में पधारकर धर्मलाभ देने की प्रार्थना भी कई बार की। क्षेत्र की महिमा सुनकर संघस्थ सभी का मन-मयूर नाच उठा। फलतः हम सभी ने भी पूज्य आर्यिकाश्री के चरणों में पटनागंज क्षेत्र के दर्शन करने की भावना रखी। हम लोगों की भावना

सुनकर आर्यिकाश्री बोलीं—भावना तो मेरी भी बहुत है, लेकिन वर्षायोग यहीं (सागर में) होने की सम्भावना है, इसलिए ४०-४५ किलोमीटर दूर रहली-पटनागंज जाकर वापस लौटना मेरे से कैसे हो पाएगा ? मैं अपने स्वास्थ्य को देखते हुए इतना श्रम नहीं कर पाऊँगी। इस प्रकार कहकर मानो उन्होंने रहली जाने के लिए मना ही कर दिया। जब हम लोगों ने बार-बार दर्शन की भावना रखी तो वे बोलीं—तुम लोग रहली जाकर दर्शन करके लौट आना, मैं तब तक यहीं रुकी रहूँगी। इससे तुम लोगों की भावना भी पूरी हो जाएगी और मेरा श्रम भी नहीं होगा। उनकी बात सुनकर हम सभी निराश हो गए, लेकिन हम लोगों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से रहली-पटनागंज जाने के लिए आर्यिकाश्री को मनाने का प्रयास जारी रखा। आखिर वे हम सबकी माँ थीं। भले ही हम उनके सामने हठ नहीं कर रहे थे, फिर भी माँ तो माँ ही होती है वह स्वयं परेशान होकर भी अपने बच्चों की भावना पूरी करती है अथवा उनके अन्दर भी पटनागंज में विराजमान जिनेन्द्रदेव के प्रति भक्ति उमड़ जाने से उन्होंने रहली (पटनागंज) की तरफ विहार किया। यहाँ कुछ दिन पहले ही ब्रह्मचारी जिनेश भैया (जबलपुर गुरुकुल अधिष्ठाता) ने शिक्षण-शिविर का आयोजन किया था, इसलिए समाज की नयी पीढ़ी में कुछ विशेष जागृति आ गई थी और उनके द्वारा आर्यिकाश्री की विशेषता के बारे में सुनने से आर्यिकाश्री के प्रति भी विशेष भक्ति उत्पन्न हो जाने से उनके दर्शन की ललक भी जागृत हुई थी। जब उन्होंने सुना कि आर्यिकाश्री ससंघ रहली की तरफ आ रही हैं तो उनका मन प्रफुल्लित हो गया, उन्होंने बड़ी भक्ति से उनको नगर प्रवेश करवाया। प्रवेश के २-३ दिन में ही यहाँ की समाज में आर्यिकाश्री का वर्षायोग करवाने की भावना बनने लगी। यहाँ पर परमपूज्य मुनि सुधासागर जी महाराज के भैय्या ऋषभ जी जो वहाँ सरकारी ऑफीसर थे, उन्होंने समाज में वर्षायोग की बात रखी और समाज के कुछ वरिष्ठ व्यक्तियों के साथ मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र पर विराजमान परम पूज्य आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज के चरणों में वर्षायोग का शुभाशीष लेने पहुँच गए। उनके पुण्य का उदय प्रबल था और गुरु की कृपा हो जाने से उन्हें वर्षायोग का आशीर्वाद मिल

गया। फलतः इस (१९९१) वर्ष का वर्षायोग यहीं रहली (पटनागंज अतिशय क्षेत्र) में स्थापित हुआ। यहाँ एक सज्जन श्री राजकिशोर मलैया जिनके अन्दर अहिंसा के प्रति विशेष प्रीति थी, इसलिए उनने पूज्य आर्यिकाश्री से निवेदन किया कि हे माता जी! हमारे नगर में और नगर के आस-पास कई लोग शराब पीते हैं, मांस खाते हैं और बलि चढ़ाकर महापाप करते हैं। मैं उनको आपके चरणों में लाकर त्याग करवाना चाहता हूँ। इस कार्य के लिए आप आशीर्वाद दे और आने वालों को मांस खाने के दुष्परिणाम और बलि चढ़ाने से होने वाले दुखों को बताकर उन्हें उपदेश देने की कृपा करें। मैं त्याग करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उपहार-सम्मान भी अपनी तरफ से वितरित करवाऊँगा। आर्यिकाश्री के हृदय में भी दया का स्रोत बह रहा था इसलिए उन्होंने उनको आशीर्वाद दे दिया।

वर्षायोग की स्थापना के साथ ही यह अहिंसा कुम्भ भी प्रारम्भ हो गया। वह सज्जन प्रतिदिन २-४-८ लोगों को लाते थे। पूज्य आर्यिकाश्री उन्हें शराब और मांस खाने से होने वाली हानि तथा उससे होने वाले नरकादि के दुखों को बताती जिनको सुनकर वे शराब और मांस खाने का त्याग कर देते। जब वे त्याग कर देते तो पूज्य आर्यिकाश्री को अतीव प्रसन्नता होती। जब कभी बहुत समझाने के बाद भी यदि कोई त्याग नहीं करता तो उन्हें थोड़ा खेद होता, लेकिन संसारी जीव जिह्वा की लोलुपता के कारण कितने पाप कर लेता है, ओहो नरकों के दुखों तक से नहीं डरता है पुण्य के उदय से इन्हें धर्म सुनने को मिल गया, फिर भी इनके पाप छोड़ने के भाव नहीं होते। इस प्रकार बोधिदुर्लभ भावना का चिंतन कर संतोष कर लेती थी। इस प्रकार ४ माह में लगभग २००-२५० लोगों को शराब और मांस का त्याग करवाकर उन्होंने जैनधर्म की मूल अहिंसा का ध्वज फहराया। एक दिन वह उस व्यक्ति को लेकर आया जो बलि के लिए लाए गए मुर्गी, बकरे, भैंसे आदि को काटता था। उसको आर्यिकाश्री ने एकत्व भावना समझाई कि भाई तुम जो बकरे, मुर्गे आदि को काटते हो उसका फल तो तुम्हें अकेले को ही भोगना पड़ेगा और उसका मांस सभी लोग मिल कर खा जाते हैं। तुम जिस प्रकार यहाँ बकरे को, मुर्गे को काटते हो, मारते हो



उसी प्रकार तुम एक बार ही नहीं हजारों बार काटे जाओगे उस समय ये कोई भी तुम्हारा दुख बँटाने के लिए नहीं आएँगे। इसको समझाने के लिए दृष्टान्त कहानियाँ और युक्ति देकर समझाया, जिससे उसका मन दुखों से भयभीत हो गया और पूज्या आर्यिकाश्री के आशीर्वाद से उसने आजीवन बलि चढ़ाने का त्याग कर दिया, फलतः वहाँ बलि चढ़ना भी बंद जैसा ही हो गया। उसका जीवन धन्य हो गया। वर्षायोग के अन्त में शाकाहार का सम्मेलन हुआ, उसमें सभी त्याग करने वालों को विशेष रूप से सम्मानित किया गया।



वर्षायोग के बीच में एक दिन किसी ने आकर पूज्य आर्यिकाश्री को बताया कि आज जो श्रावक अपने घर पड़गाहन करने वाला है, उसका अपने बड़े भाई से लगभग ३०-३५ वर्ष से बोलना बंद है अर्थात् दोनों की आपसी लड़ाई है। आर्यिकाश्री ने पूछा—उनके बड़े भाई कौन हैं ? उसने बताया माता जी—वे मास्टर साहब (अध्यापक जी) जो वर्षायोग स्थापना के पहले से ही सब कार्यों में आगे रहते हैं। उनकी आपके प्रति अच्छी श्रद्धा है। तब पूज्या माताजी ने उनको बुलाकर पूछा—मैंने आपके बारे में ऐसा—ऐसा सुना है, क्या यह सत्य है? आर्यिकाश्री की बात सुनकर उन्होंने गर्दन नीची कर ली, वे चुपचाप बैठे रहे तब आर्यिकाश्री पुनः बोलीं—यदि यह सत्य है तो जब तक तुम दोनों भाई एक साथ पड़गाहन करने के लिए खड़े नहीं होओगे मैं आहार करने नहीं आऊँगी। माता जी की बात सुनकर उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। थोड़ी देर बाद वे बोले—पूज्य माता जी मैं आपकी कोई भी बात टाल नहीं सकता। मैं आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करूँगा, लेकिन माता जी बोली तो क्या मेरा कहना आपको गलत लग रहा है? वे बोले—नहीं माता जी! आपका कहना बिल्कुल सही है कि छह महीने से अधिक वैर परिणाम रखने वाला मिथ्यादृष्टि है। मुझे मिथ्यादृष्टि नहीं बनना है, यह सब मुझे समझ में आ गया लेकिन मेरे मन में बहुत बड़ा विकल्प चल रहा है। आर्यिकाश्री बोलीं—तुम अपना विकल्प बताओ अपन उसका भी हल निकालेंगे। वे बोले—माता जी, मैंने आज से लगभग ३०-

३५ वर्ष पहले अपने बेटे के सिर पर हाथ रखकर यह संकल्प लिया था, कि मैं अपनी जिन्दगी में कभी छोटे भाई के घर की बात तो दूर वह जहाँ रहता है, उस गली तक में नहीं जाऊँगा। अब आप ही बताइये मैं अपना नियम कैसे तोड़ सकता हूँ ? यदि नियम तोड़ता हूँ तो महापाप लगता है और यदि आपकी आज्ञा का पालन नहीं करता हूँ तो और भी महापाप होगा। इसी दुविधा में फँसा मैं कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ। अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा मैं करने को तैयार हूँ। उनकी बात सुनकर आर्यिकाश्री बोलीं—अध्यापक जी, एक बात बताओ तुमने यह नियम कौन-से परमेष्ठी की साक्षी में लिया है, क्योंकि नियम तो हमेशा देव-शास्त्र-गुरु की साक्षी में ही लिया जाता है। वे कुछ नहीं बोले—क्योंकि इस बात का उनके पास कोई उत्तर नहीं था। आर्यिकाश्री पुनः बोलीं—देखो तुमने कषायों की अर्थात् क्रोधावेश में नियम लिया था, कषाएँ कभी किसी की गुरु नहीं होती इसलिए तुम अपने भैया के यहाँ आने-जाने लगोगे तो भी तुम्हारा नियम नहीं टूटेगा।

आगम ग्रन्थों में आचार्य महाराज ने कहा है—कषायावेश में लिया गया नियम कभी फल नहीं देता है, इसलिए यदि तुम अपने भाई के घर चले भी गए तो तुम्हारा नियम नहीं टूटेगा। अध्यापक जी मेरी बात मान लो तुम्हारा हित होगा। आर्यिकाश्री की बात सुनकर वे चुपचाप उठकर अपने भैया के यहाँ चले गये उस दिन से दोनों भाईयों का आना-जाना शुरू हो गया। सच है—देव-शास्त्र-गुरु रूपी पुलिस को देखकर कषायरूपी शराब का नशा उतर जाए तो इसमें कोई विस्मय नहीं है, यह थी आर्यिकाश्री की सबके कल्याण की भावना और वात्सल्य का भाव जिसने अध्यापक जी की गाढ़ी कषायों को भी समाप्त कर दिया और यह उनकी समझाने की कला का ही चमत्कारी प्रभाव था, जिसने अध्यापक जी के सभी आन्तरिक विकल्पों के ज्वार को समाप्त करके वस्तु-स्वरूप को समझा दिया।

पूर्व के समान यहाँ भी आर्यिकाश्री ने श्रावकों में त्यागी-व्रती बनने के संस्कार डालने के लिए दशलक्षण धर्म के अन्तिम दिनों में रत्नत्रयव्रत की आराधना का शिविर लगाया था। इसका उद्देश्य श्रावकों को पूजा, सामायिक,

एकाशन, उपवास, बेला-तेला आदि करना सिखाकर आचरण की ओर अग्रसर करना था। इसी शिविर की चर्या से प्रभावित होकर यहाँ की २-३ बालिकाओं ने ब्रह्मचर्य व्रत लेने की भावना रखी। आर्यिकाश्री ने तात्कालिक स्वदार संतोष व्रत देकर गुरुवर के चरणों में व्रत लेने की प्रेरणा दी। वे समाज के वरिष्ठ लोगों के साथ जब पूज्य गुरुवर के चरणों में पहुँची तो उनको देखकर गुरुवर ने पास बैठी हुई ब्रह्मचारिणी बहनों से कहा—देखो—आर्यिका विशालमति ने श्रावक-श्राविकाओं में कितने अच्छे संस्कार डाले हैं कि देव-शास्त्र-गुरु के पास श्रावकों को सिर खोलकर नहीं जाना चाहिए। इन लोगों ने अभी कोई व्रत नियम नहीं लिए हैं, फिर भी सिर ढककर आयी हैं। इस प्रकार आचार्य गुरुवर ने आर्यिकाश्री के संस्कारारोपण की सराहना की थी। ऐसे विरले ही शिष्य होते हैं, जिनकी प्रशंसा गुरुवर भी करते हैं उनमें से आर्यिकाश्री भी एक शिष्या थीं। आर्यिकाश्री का विचार था कि पूज्य पुरुषों के सामने सिर खोलकर जाना मतलब एक प्रकार से उनका अविनय करना है। इसलिए वे विशेष रूप से बालिकाओं में सिर ढककर ही देव-शास्त्र-गुरु के पास जाने के संस्कार डालती थीं।

इसी प्रकार एक बार संघस्थ बहनों आचार्य गुरुवर के दर्शन करने गईं। वहाँ वे लगभग डेढ़ बजे दोपहर में पहुँचीं। उन्होंने गुरु के चरणों की वन्दना करके आर्यिका संघ का नमोऽस्तु निवेदन किया और दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने के लिए कुँए से पानी भरने गईं। वहाँ उन्होंने पानी छाना और कड़े वाली बाल्टी से जीवानी की, इन सब क्रिया को एक मुनिराज देख रहे थे, जब बहनों भोजन आदि से निवृत्त होकर उनके दर्शन करने पहुँचीं तो वे बोले—तुम लोगों की पानी छानने, जीवानी करने आदि की क्रियाओं को देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। मैंने कई बार सुना था कि आर्यिका विशालमति श्रावकों में तथा संघस्थ बहनों में अच्छी क्रियाएँ करने के संस्कार डालती हैं, आज मैंने जब साक्षात् देखा तो बहुत अच्छा लगा। इस प्रकार कई साधु-सन्त उनकी प्रशंसा करते थे। उनमें जितना ज्ञान था, उससे अधिक विशिष्ट उनकी चर्याएँ थीं, इसलिए बड़े-बड़े प्रतिष्ठित-विशिष्ट लोग भी उनकी प्रशंसा करते थे।

□

यहाँ एक १३-१४ वर्ष के बालक ने रत्नत्रय का व्रत किया। जिसमें उसने त्रयोदशी तथा पूर्णिमा को एकाशन और चतुर्दशी के दिन उपवास किया। चतुर्दशी के दिन उपवास में उसको बहुत घबराहट होने लगी। उसे प्यास सताने लगी। उसका कोमल शरीर इस प्रकार मुरझा गया, मानो कमल को पानी से बाहर निकालकर धूप के ताप में रख दिया हो। उसकी हालत देखकर साधर्मियों ने उसे तत्काल अमृतधारा सुँघाई, घी में कपूर मिलाकर सिर में मालिश की, पानी की पट्टी लगाई। जब उपचार से उसको थोड़ी शांति मिली तो वे सब उसे पूज्या आर्यिकाश्री के पास लेकर आए। वे उसे देखकर शुभाशीष देती हुई बोलीं—बेटा रिकू! तुम्हें तो महाराज बनना है न, इतना घबराने से थोड़ी काम चलेगा, बस अब थोड़ा-सा दिन और बाकी है। अभी इसको मिट्टी की पट्टी लगा दो और घी धोकर इसके गले आदि में लगा दो ताकि इसका मुँह सूखना बन्द हो जावे तथा बेटा तुम जाओ भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के चरणों में बैठकर एक-दो माला फेर लो, सब ठीक हो जाएगा। उस बालक ने आर्यिकाश्री की आज्ञा का पालन किया। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के पास एक-दो माला फेरते ही उसको बहुत शांति मिली। उसी दिन से वह पूज्या आर्यिकाश्री के वचनों को प्रमाण मानकर मुनि बनने की भावना बनाने लगा। आज वह मुनि श्री निर्भीकसागर जी बनकर पूज्य गुरुवर आचार्य विद्यासागर जी महाराज के चरणों में रत्नत्रय की आराधना कर रहे हैं।

इस वर्षायोग में व्रत लेने वाली ब्रह्मचारिणी अर्चना आर्यिका आदित्यमति जी, ब्रह्मचारिणी संध्या आर्यिका पवित्रमति जी, ब्रह्मचारिणी सीमा (कर्रापुर) आर्यिका गरिमामति जी तथा ब्रह्मचारिणी ज्योति आर्यिका संभवमति जी बनकर रत्नत्रय की आराधना कर रही हैं।

इस वर्षायोग के बाद आर्यिकाश्री ने गढ़ाकोटा की ओर विहार किया। इस नगर से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर अतिशय क्षेत्र पटैरिया जी है, जहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान् का बहुत बड़ा जिनालय है। कहते हैं कि यह जिनालय एक सेठ ने अपनी एक दिन के कपास के मुनाफे से बनवाया था। पूज्या आर्यिकाश्री यहाँ लगभग ३०-३५ दिन तक रुकीं। यहाँ प्रातःकाल

लगभग साढ़े आठ बजे से तत्त्वार्थसूत्र की कक्षा लगती थी यहाँ की श्राविकाओं ने आर्यिकाश्री की प्रेरणा पाकर सामूहिक स्वाध्याय करने की परम्परा शुरू की थी, जो अभी तक चल रही है। तत्त्वार्थसूत्र के पाँच अध्याय ही हो पाए थे कि तभी गुरुवर का संकेत आ जाने से आर्यिकाश्री ने जबलपुर की ओर विहार कर दिया। यद्यपि गढ़ाकोटा से जबलपुर बहुत दूर नहीं है, किन्तु स्वास्थ्य ठीक नहीं होने से गुरु-चरणों में पहुँचने में १५-२० दिन लग गए थे। यहाँ पंच-कल्याणक महोत्सव में समूचा संघ एकत्रित हुआ था। दीक्षा कल्याणक के दिन पूज्य आचार्य भगवन् के कर-कमलों से २५ ब्रह्मचारिणी बहनों की आर्यिका दीक्षा सम्पन्न हुई थी। महोत्सव के उपरान्त पूज्या आर्यिकाश्री ने गुरु-आशीष से पनागर (जबलपुर) की ओर विहार किया था। यहाँ शहर के पास ही १००८ देवाधिदेव श्री शान्तिनाथ भगवान् का अतिशय क्षेत्र है। यहाँ श्री पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्वनाथ भगवान् का भी अतिशय है। यहाँ पर भी आर्यिकाश्री ने ग्रीष्मकाल में णमोकार महामंत्र का शिविर लगाया था। एक दिन यहीं के एक ब्रह्मचारी ने पूज्या आर्यिकाश्री से प्रार्थना की—हे माता जी, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किस प्रकार करना चाहिए। कोई स्वदार संतोषी, कोई बालब्रह्मचारी अथवा कोई मुनि बनना चाहता है तो उसे ब्रह्मचर्य का किस प्रकार अभ्यास करना चाहिए, उसे ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए किस-किस प्रकार की सावधानी रखनी चाहिए आदि बातों को समझने के लिए आप एक २-४ पृष्ठ का लेख लिख दीजिए, जिससे हम लोग व्रत का अच्छी तरह अर्थात् निरतिचार पालन कर पावें। आर्यिकाश्री को इस व्रत के प्रति बचपन से ही विशेष बहुमान था शायद इसी कारण वो बालब्रह्मचारी भगवान् पार्श्वनाथ की परम भक्त थीं। उनको ब्रह्मचारी जी की बात अच्छी लगी, लेकिन अपना स्वास्थ्य देखते हुए उन्होंने यह काम अपने हाथ में नहीं लिया और इसे करने के लिए यह आश्वासन देते हुए कि मैं इस विषय सम्बन्धी सामग्री इकट्ठी करने में आपका सहयोग दूँगी। आप यह काम करिए। मुझे सौंप दिया। वह लेख के रूप में प्रारम्भ हुआ। कार्य ने बढ़ते-बढ़ते एक पुस्तक का रूप ले लिया जिसका नाम स्वयं पूज्या आर्यिकाश्री ने ही “शील मंजूषा” रखा। जिसने

कई भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में बढ़ने को प्रेरित किया तथा कई गृहस्थों को ब्रह्मचर्य पालन करने का सम्बल दिया।

इसी शहर की कुछ दूरी पर एक कटंगी ग्राम है। एक दिन वहीं के २-३ नौजवान पूज्या आर्यिकाश्री के दर्शन करने आए। उन्होंने अपने गाँव के बिगड़े हुए माहौल को बताते हुए उसको सुधारने के लिए आपकी अत्यन्त आवश्यकता है इसलिए आप हमारे गाँव में वर्षायोग करके हमारे गाँव का उद्धार करें, इस प्रकार निवेदन करते हुए श्रीफल भेंट किया। शायद इन्हीं नौजवानों का संप्रेषण गुरुवर के पास पहुँच गया हो या आर्यिकाश्री के दिल में उत्पन्न हुई करुणा ने ही जाकर गुरुवर से कहा हो, जिससे गुरुवर ने आर्यिकाश्री को कटंगी में ही वर्षायोग करने का संकेत दिया। यहाँ आर्यिकाश्री के वात्सल्यमय प्रवचनों से गाँव का माहौल अच्छा बन गया, फलतः यहाँ के कई भाई-बहनों ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके अपने आपको धर्म की रक्षा के लिए समर्पित किया।

यहाँ एक दिन मंदिर जी के प्राँगण में धर्म सम्बन्धी सांस्कृतिक कार्यक्रम अर्थात् नाटक हो रहा था। श्रावकों के आग्रह से संघस्थ दो-तीन बहनों ने भी कुछ देर तक यह नाटक धार्मिक है, इसलिए इसको देखने में कोई दोष नहीं है, इस प्रकार सोचकर देख लिया। जब आर्यिकाश्री को मालूम पड़ा कि ब्रह्मचारिणी बहनों ने भी नाटक देखा है तो उन्होंने उन्हें पहले तो डाँटा उसके बाद समझाया कि ब्रह्मचारियों को पंचेन्द्रिय विषयों में रुचि नहीं होती है, चाहे वह धार्मिक नाटक, नृत्य, गीत आदि क्यों न हो उनमें राग-रंग तो होता ही है, जिससे उनको देखते समय भी पञ्चेन्द्रिय के विषयों में आकर्षण बढ़ने लगता है, क्योंकि नाटक आदि करने वालों की वेषभूषा, शृंगार आदि मन को आकर्षित करने वाले होते ही हैं, उनको देखने से ब्रह्मचर्य में दोष लगता है। ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा के लिए राग-रंग छोड़ना अतिआवश्यक है, इस प्रकार समझाकर ऐसा पुनः कभी नहीं करने का संकल्प करवाया। इसी प्रकार एक दिन एक जादूगर की यह बात सुनकर की वह साइकिल आकाश में उड़ाएगा और ट्यूबलाइट को खाकर बताएगा एक बहन का मन इन आश्चर्यजनक कार्यों को देखने का हो गया वह ५-

७ मिनट धर्मशाला की छत पर खड़ी-खड़ी उसे देखती रही, उसको भी आर्यिकाश्री ने साधु, त्यागी-व्रती सम्यग्दृष्टि जीव इन लौकिक चमत्कारों/जादुओं को देखकर आश्चर्यचकित नहीं होते हैं, ये सब कोई बड़ी बात नहीं है, मात्र हाथ की सफाई है, इन सबको देखकर हमें अपने धर्मध्यान के समय को आर्त-रौद्रध्यान में नहीं गँवाना चाहिए। इसमें अर्थात् इसको देखने में अच्छा-अच्छा लग रहा है, इसका अर्थ यह विशुद्धि नहीं है, ये तो संक्लेश ही है, क्योंकि इनको देखने से पाप का बंध ही होता है, इस मनुष्य पर्याय के अल्प समय में आत्म-कल्याण करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। आर्यिकाश्री के वात्सल्यपूर्ण समझाने की शैली से उसने जीवन भर के लिए इस प्रकार के अप्रयोजनभूत कार्यक्रम देखने का त्याग कर दिया।

यहाँ से पूज्या आर्यिकाश्री का विहार सिंग्रामपुर से होते हुए जबेरा की तरफ हुआ यहाँ एकान्त पक्ष का आग्रह रखने वाले लोग ज्यादा थे, फिर भी वे पूज्य आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की वन्दना करते थे, उनको मानते थे। उन्होंने कटंगी के वर्षायोग एवं आर्यिकाश्री की चर्या, ज्ञान आदि के बारे में अपने रिश्तेदारों से सुन रखा था, कुछ लोगों ने कटंगी जाकर पूज्या माता जी की चर्या को देखा भी था, इसलिए उनकी आर्यिकाश्री के प्रति विशेष आस्था बन गई थी। यहाँ पर माता जी ने छहढाला की कक्षा लगाई ५ ढाल की पढ़ाई हो पायी थी, कि आचार्य भगवन्त का संकेत/आशीर्वाद मिल गया, कि जबलपुर पूज्य गुरुवर के चरणों में पहुँचना है, वहाँ अन्य आर्यिका संघ भी गुरु-भक्ति में लगे हुए थे, पूज्या आर्यिकाश्री भी वहीं पूज्य गुरुवर की वन्दना करने पहुँची थी। कई आर्यिकाओं को आर्यिकाश्री के दर्शन की एवं उनसे मिलकर कुछ ग्रहण करने की अभिलाषा थी। साधु का ऐसा स्वभाव ही होता है, कि वह अपने से बड़ों के साथ रहने की भावना रखता है और उनकी चर्या, ज्ञान आदि से अपने जीवन को अलंकृत करता है।



एक दिन संघस्थ आर्यिका विद्युतमति माता जी ने अपनी भावना आर्यिकाश्री के सामने रखी कि मैं पूज्य दादा गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी

महाराज के समाधिस्थली नसीराबाद में ही अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों को व्यतीत करूँ अर्थात् वहीं पर समाधिमरण करूँगी। आर्यिकाश्री ने उनकी भावनाओं को यथावत् पूज्य गुरुवर के चरणों में रख दी। उनकी भावना को देखते हुए पूज्य गुरुवर ने राजस्थान की तरफ विहार करने का संकेत एवं आशीर्वाद दे दिया। आर्यिकाश्री ने छोटी माता जी का समाधिमरण अच्छी तरह हो, इसके लिए गुरुवर का आशीष लेकर राजस्थान की तरफ विहार किया। जबलपुर से शहपुरा, करेली, वनखेड़ी, बानापुरा आदि छोटे-छोटे गाँवों में विहार करते हुए १००८ श्री शान्तिनाथ-भगवान् के अतिशय क्षेत्र हरदा पहुँची। यहाँ छोटी-सी समाज है, पर जिनालय बड़ा विशाल और भव्य है। यहाँ मनमोहक, मनोहारी, मनोवांछित फल देने वाला भगवान् शान्तिनाथ स्वामी का जिनबिम्ब विराजमान है। यहाँ के श्रावकों ने आर्यिकाश्री का भव्य प्रवेश करवाया तथा उनके उपदेश को सुनकर पूज्या आर्यिकाश्री के वर्षायोग करवाने की अरजी लेकर गुरुवर के चरणों में पहुँचे। उनकी भावना देखकर पूज्य गुरुवर ने उन्हें वर्षायोग का आशीर्वाद दिया, फलतः १९९३ का वर्षायोग यहीं हरदा नगर में स्थापित हुआ। यहाँ के एक परिवार में चार भाई प्रतिदिन मिलकर लगभग १०० पान खाते थे। पान खाते-खाते उनके मुँह तक खुलने बंद-से हो गये थे। वे कभी मिर्च-मसाला आदि तो खा ही नहीं पाते थे। स्पष्ट रूप से बोल भी नहीं पाते थे, फिर भी उनके कभी पान छोड़ने के भाव नहीं होते थे। उन्हीं में से एक भाई ने पूज्या आर्यिकाश्री के शुभाशीष से एक साथ पूरे पान खाने का त्याग कर दिया था। यद्यपि पान छोड़ने पर उसे बहुत ही तकलीफ हुई थी फिर भी उसने पूज्य आर्यिकाश्री की साधना-तपस्या को देख-देखकर सारी तकलीफों को सहजता से सहन किया था, फलतः पान खाने की आदत छूट गई और धीरे-धीरे तकलीफें भी दूर हो गई। साथ ही वह धर्म मार्ग पर विशेष रूप से चलकर धर्म करना भी सीख गया।

वर्षायोग में यहाँ बच्चों की पाठशाला भी चलती थी, उसमें एक भूपेन्द्र नाम का बालक भी आता था, वह पाठशाला का सबसे बड़ा विद्यार्थी था, फिर भी उसे धर्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने की रुचि थी। साथ



ही उसको अपना आचरण सुधारने के प्रति जिज्ञासा थी, इस ओर रुझान भी था। कई बार उसके वैराग्य और आचरण को देखकर बच्चे उसे चिढ़ा देते थे, अरे ये हमारे महाराज बनने वाले भैया जी हैं। ये तो हमारे वैरागी जी हैं, आदि-आदि कहकर मजाक उड़ाते रहते थे, फिर भी वह बालक धर्म कार्य में कभी पीछे नहीं हटता था, पूरे वर्षायोग में उसने पाठशाला पढ़ी, अंत में उसको वास्तव में वैराग्य आ गया। उसने पूज्य गुरुवर से ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया आज वह पूज्य मुनि श्री आगमसागर जी महाराज बन गए हैं। पूज्य आचार्यश्री ने उनकी विशेष योग्यता देखकर उनका संघ बना दिया है। वे ससंघ धर्मप्रभावना करते हुए अपना कल्याण कर रहे हैं, उन्हें मेरा बारम्बार नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु।

इसी वर्षायोग में मेरे पहली बार पाँच उपवास करने के भाव हुए थे। आर्यिकाश्री ने सभी तरह से अनुकूलता मिलाकर उपवास के प्रति मेरा उत्साह बढ़ाया, जिससे उपवास अच्छी तरह हुए एवं आगे भी उपवास करने का उत्साह बढ़ा है। वर्षायोग के उपरान्त यहाँ के श्रावकों के भाव संघ को तीर्थयात्रा करवा कर पुण्य लाभ लेने के हुए, उन्होंने पूज्या आर्यिकाश्री से निवेदन किया कि हम आपके साथ सिद्धवरकूट, ऊन, बावनगजा आदि सिद्धक्षेत्रों की वन्दना करना चाहते हैं। सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र जहाँ से २ चक्रवर्ती और १० कामकुमार (कामदेव) अष्टकर्मों को नष्टकर अष्टम वसुधा पर विराजमान हुए थे। ऊन सिद्धक्षेत्र से स्वर्णभद्र आदि ४ मुनिराज निर्वाण को प्राप्त हुए थे तथा बावनगजा में ५२ गज अर्थात् ८४ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है, इसी कारण से इस गाँव का नाम ही बावनगजा प्रसिद्ध हुआ है इस पर्वत की चोटी से रावण के भाई कुम्भकरण तथा पुत्र इन्द्रजीत ने कर्मों का नाश किया था, यही संसार की विचित्रता है कि एक ही माँ की कोख से जन्मे भाइयों में से एक रावण नरक चला गया और विभीषण तथा कुम्भकरण परम निर्वाण को प्राप्त हुए। इन्हीं तीनों क्षेत्रों की वन्दना करवाने का अथवा आर्यिका संघ के साथ वन्दना करने का भाव यहाँ के श्रावकों ने बनाया था। पूज्य गुरुवर से वे आशीर्वाद भी ले आए थे। वर्षायोग पूरा होते ही जब पिच्छिका परिवर्तन का समय आया, तब आर्यिकाश्री की

पुरानी पिच्छी लेने के कई लोगों ने भाव बनाए थे, उनमें एक व्यक्ति वह था जिसे मधुमेह (शुगर) की बीमारी थी, उसके पिच्छी लेने के प्रबल भाव थे इसलिए उसने आर्यिकाश्री से एक दिन आकर कहा—पूज्या माता जी, मुझे आपकी पुरानी पिच्छी लेनी है, मैं आपके द्वारा बताए गए सभी नियम लेने को तैयार हूँ। लेकिन मुझे मधुमेह का रोग होने से एक अँग्रेजी गोली प्रतिदिन खानी पड़ती है, आप उसको छोड़ने का कुछ उपाय बताइये, जिससे मेरी भावना पूरी हो सके। उसकी आन्तरिक वेदना सुनकर आर्यिकाश्री बोलीं—भाई तुम एक काम करो, तुम्हारी बीमारी ठीक हो जायेगी। उसने कहा—माता जी, जैसी आपकी आज्ञा होगी, वैसा ही मैं सब कुछ करूँगा। आर्यिकाश्री बोलीं—तुम रसी करना शुरू कर दो अर्थात् रविवार को नमक, सोमवार को हरी सब्जी—फल आदि मंगलवार को शक्कर, गुड़, बुधवार को घी, गुरुवार को दूध, शुक्रवार को दही और शनिवार को तैल का त्याग करके भोजन करो और शक्कर आदि मीठी वस्तुएँ जिनसे बीमारी बढ़ती हो उनको नहीं खाया करो, सब ठीक हो जाएगा। उसने आर्यिकाश्री की बात को तत्काल स्वीकार करके उसी दिन से रसी करना शुरू कर दिया। वह रसी करने रूप तपस्या तथा पूज्या आर्यिकाश्री का आशीर्वाद उसके लिए वरदान बन गया। उसकी गोली छूट गई। वह ठीक हो गया। उसको पिच्छी भी मिल गई। आज वह ३ प्रतिमा के व्रत धारण कर श्रावक धर्म का पालन करते हुए मनुष्य पर्याय को सार्थक कर रहा है।



वर्षायोग के उपरान्त आर्यिकाश्री ने यात्रा के लिए १००८ देवाधिदेव श्री शान्तिनाथ भगवान् का आशीर्वाद लेकर विहार किया। सर्वप्रथम नेमावर सिद्धक्षेत्र जहाँ से त्रिखण्डाधिपति रावण के पुत्र आदिकुमार आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनिराजों ने मुक्ति ललना का वरण किया था। यहाँ वंदना करते समय हरदा के लोग बोले, पूज्या माता जी कुछ उपाय बताइये, जिससे इस क्षेत्र का विकास हो सके, यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है। पूज्या आर्यिकाश्री बोलीं, तुम लोग इस क्षेत्र का विकास करना चाहते हो तो पूज्य गुरुवर के चरणों में यहाँ पधारने का निवेदन करो। यदि एक बार भी गुरुवर यहाँ आ

गए तो निश्चित यह क्षेत्र चमन हो जाएगा। मैं भी पत्र के माध्यम से गुरुवर को अपनी चरण-रज से इस क्षेत्र को पवित्र बनाने की प्रार्थना करूँगी। पूज्या आर्यिकाश्री की भावना सफल हुई, कुछ ही वर्षों में आचार्य गुरुवर यहाँ पधारे, आज वास्तव में वह क्षेत्र चमन हो गया है। यहाँ से विहार करते हुए कुछ ही दिनों में आर्यिकाश्री सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र पर पहुँचीं, यहाँ २-३ दिन विश्राम करके ऊन के लिए विहार हुआ, यहीं पर आर्यिका पूर्णमति माता जी से मिलन हुआ। आर्यिकासंघ ने पूज्या माता जी को बहुमान पूर्वक वन्दामि किया। आर्यिकाश्री ने भी वात्सल्यपूर्वक उनसे प्रतिवन्दना करके अपने पद की गरिमा का निर्वाह किया। यहाँ से दोनों संघों का विहार बावनगजा के लिए हुआ। बावनगजा में आचार्य धर्मसागर जी महाराज से दीक्षित वयोवृद्ध आर्यिका गुणमति माता जी का संघ विराजमान था। यहाँ भी दोनों संघ की समाचार विधि आगम के अनुसार हुई। लगभग एक माह तक तीनों संघ अर्थात् आर्यिका गुणमति माता जी, आर्यिकाश्री तथा आर्यिका पूर्णमति जी का संघ एक साथ रहे थे। यहाँ से विहार कर आर्यिकाश्री गर्मी की ऋतु प्रारम्भ होने के पहले-पहले इन्दौर पहुँची। यहाँ के पण्डित रतनलाल जी तथा आश्रम की बहनों ने आर्यिकाश्री के साथ स्वाध्याय का २-३ महीनों तक लाभ लिया। यह समय उदासीन आश्रम में व्यतीत हुआ। यहाँ की ब्रह्मचारिणी बहनों एवं श्राविकाओं ने आर्यिकाश्री की सेवा-वैय्यावृत्य के साथ-साथ आहारदान एवं ज्ञानार्जन का लाभ लिया और आर्यिकाश्री की चर्याओं को सीखकर अपना चारित्र निर्मल बनाया।

यहाँ एक दिन संघस्थ ब्रह्मचारिणी माधुरी तथा अर्चना बहन ने बताया कि—माता जी आज हमें श्रावकों ने आइस्क्रीम परोसी थी, क्या हम आइस्क्रीम खा सकते हैं ? माता जी हमने खा तो लिया किन्तु अन्दर बार-बार ऐसे भाव उत्पन्न हो रहे थे कि हमने यह गलत किया है, अन्दर से आवाज आ रही थी कि ब्रह्मचारिणी को आइस्क्रीम आदि फ्रिज की वस्तुएँ नहीं खाना चाहिए। बहनों की बातें सुनकर वे आश्चर्यचकित होकर बोलीं—अहो तुमने आइस्क्रीम कैसे खा लिया ? अपन त्यागी-व्रती कैसे आइस्क्रीम खा सकते हैं, क्योंकि इन चीजों को खाने से रसना इन्द्रिय की

पुष्टि मात्र होती है, भूख-प्यास समाप्त नहीं होती। दूसरी बात यह शरीर और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नहीं है, अपितु हानिकारक ही है इसलिए हमें ऐसी वस्तुओं को नहीं खाना चाहिए। इस प्रकार जब आर्यिकाश्री ने बहनों को समझाया तो बहनों के साथ हम लोगों ने भी (यद्यपि कभी आइस्क्रीम नहीं खायी थी, लेकिन त्याग नहीं था सो) तत्काल ऐसी वस्तुओं को खाने का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग कर दिया। धन्य हो आर्यिकाश्री आपकी चिन्तन शैली एवं व्रतों की रक्षा करने की सतर्कता आपको बारम्बार प्रणाम-प्रणाम।

वर्षायोग का काल समीप ही था, इसलिए यहाँ के श्रावकों ने पण्डित जी तथा ब्रह्मचारिणी बहनों के साथ आर्यिकाश्री को वर्षायोग के लिए निवेदन किया, लेकिन आर्यिकाश्री यहाँ २-३ महीनों से रुकी हुई थीं, अब चार माह और रुकना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था, इसलिए उन्होंने नीमच की तरफ विहार कर दिया। यह वही स्थान था, जहाँ बालिका कुसुम चौरङ्गिया को परम पूज्य भव्यसागर जी महाराज ने आर्यिका बनने का नियम अपनी तरफ से दिया था। यहीं पर मोक्षमार्ग पर बढ़ते हुए उनके कदमों को मोह के वशीभूत होकर रोका गया था और यहीं रहने वाले जीजी-जीजा जी ने उसके वैराग्य में दृढ़ता को देखकर स्वयं ने पूज्य गुरुवर के पास छोड़ देने के लिए माता-पिता को तैयार किया था और दीक्षा के समय सराग धर्म को छोड़कर वीतराग दिगम्बर जैनधर्म को अंगीकार करके दीक्षार्थी कुसुम दीदी के धर्म के माता-पिता बनकर जीवन को सार्थक किया था। उनकी भावना थी कि पूज्या आर्यिकाश्री का वर्षायोग हमारे नगर में होवे। उन्होंने आर्यिकाश्री के नीमच की तरफ विहार के समाचार सुनकर नगर की समाज के सामने वर्षायोग की बात रखी। वैसे यहाँ के श्रावक पूर्व से ही आर्यिकाश्री से परिचित थे, जब उन्होंने आचार्यकल्प गुरुवर विवेकसागर जी महाराज का वर्षायोग करवाने का प्रयास किया था, लेकिन सही समय पर नहीं पहुँच पाने के कारण उन्हें वर्षायोग का योग नहीं मिल पाया था। तब से जब-जब नीमच नाम सामने आता था, कि बेचारे नीमच वालों को वर्षायोग का लाभ नहीं मिल पाया था, इसलिए मुझे एक बार उनके यहाँ

वर्षायोग करके उसकी पूर्ति करना चाहिए, इसी विचार से उन्होंने नीमच की तरफ विहार किया था। यहाँ के श्रावकों की भक्ति से इस १९९४ का वर्षायोग यहीं नीमच में हुआ। यहाँ आर्यिकाश्री ने मुख्य रूप से परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य गुरुवर (विद्यासागर जी महाराज) के द्वारा रचित मूकमाटी महाकाव्य की कक्षा लगाई थी और इसी के आधार से प्रवचन होते थे। कक्षा पूरी होने के बाद यहाँ के स्थानीय श्रावकों ने इसी पर अर्थात् मूकमाटी में समसामायिक विषयों से संदर्भित विषय लेकर अपने-अपने विचार व्यक्त किए थे अर्थात् संगोष्ठी हुई थी, कुछ बाहर के विद्वान् भी आए थे। यहाँ जिनालय में मूल वेदी पर कभी पूर्वजों ने किसी परिस्थिति विशेष के कारण मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी को आगे खिसकाकर पीछे मूल स्थान पर भगवान् शांतिनाथ स्वामी का बिम्ब स्थापित कर दिया था जिससे मूलनायक भगवान् की महिमा कम हो गई थी। इस वर्षायोग में इसका सुधार हुआ था अर्थात् आर्यिकाश्री की प्रेरणा से ऊपर एक नई वेदी स्थापित कर उसमें भगवान् शांतिनाथ स्वामी का बिम्ब स्थापित करने के लिए वेदी प्रतिष्ठा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ था। इसी समय पूज्या आर्यिकाश्री की जन्मस्थली के जिनालय के शिखर पर कलशारोहण और ध्वजदण्ड स्थापन का कार्यक्रम भी सानन्द सम्पन्न हुआ था।



इसी वर्षायोग के बीच में एक दिन जोधपुर से अनेक ग्रन्थों के सम्पादक पण्डित चेतनप्रकाश जी जैन पाटनी किशनगढ़ (वर्तमान निवास जोधपुर) अपने पुत्र की ससुराल में किसी कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए आए थे, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यहाँ आर्यिका श्री विशालमति माता जी ससंघ विराजमान हैं तो वे पूज्या आर्यिकाश्री के दर्शन करने के लिए आए। पूर्व से परिचित होने के कारण उनकी विशेष ही दर्शन की भावना थी। उस समय आर्यिकाश्री ने शीलमंजूषा की पाण्डुलिपि जो लगभग एक वर्ष से तैयार रखी हुई थी, पण्डित जी को दिखाई। पण्डित जी ने पाण्डुलिपि का अवलोकन करके प्रशंसा करते हुए उसे प्रकाशित करने की भावना रखी और आर्यिकाश्री का आशीर्वाद लेकर सम्पादन करने के लिए अपने साथ

ले गए। कुछ ही दिनों में उसका सम्पादन करके आर्यिकाश्री के पास भेज दी। आर्यिकाश्री ने कृति को चारों ओर से देखा और नमक का त्याग कर दिया। २-४ दिन तक तो किसी को मालूम ही नहीं पड़ा कि आर्यिकाश्री नमक नहीं ले रही हैं। जब १५-२० दिन निकल गए तो हम लोगों अर्थात् संघ के सभी लोगों ने मिलकर नमक नहीं लेने का कारण पूछा तो उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया और बात टालकर प्रसंग बदल दिया। २-४ दिन के बाद पुनः हम लोग हठ करके उनके सामने बैठ गए कि आज तो आपको नमक नहीं लेने का कारण बताना ही पड़ेगा। जब हम लोगों ने बहुत अनुनय, विनय, प्रार्थना की तब उन्होंने कहा “शील मञ्जूषा” आपने लिखी है, उसके ऊपर लेखिका के रूप में मेरा नाम लिखा है इससे मुझे चोरी का दोष लगेगा, इसलिए मैंने पुस्तक देखते ही संकल्प कर लिया कि जब तक पुस्तक में सुधार नहीं होगा मैं नमक नहीं खाऊँगी। उनकी बात सुनकर मैंने कहा—माता जी, पुस्तक लिखने की विधि और सामग्री पूरी आपने ही बतायी है, पुस्तक का नाम आपने ही रखा है, पुस्तक का आद्योपांत अवलोकन भी आपने ही किया है तथा पुस्तक अन्तिम निर्णय तक भी आपके हस्ताक्षर से ही पहुँची है, इसलिए इसमें आपको चोरी के दोष की कोई बात ही नहीं है, दूसरी बात कोई आप किसी लेखक की पुस्तक को छुपकर अपने नाम से नहीं निकलवा रही हैं, तीसरी बात आपको तो पता ही नहीं है कि किसी पुस्तक पर लेखक के रूप में आपका नाम भी लिखा गया है, इसलिए हम लोगों के विचार से तो आपको कहीं से कण मात्र भी चोरी का दोष नहीं लगेगा, इसलिए हम आपका नाम हटाने के पक्ष में नहीं हैं। हम लोगों की बात उनको बिल्कुल अच्छी और सच्ची नहीं लगी है। यह उनकी गम्भीर मुद्रा से समझ में आ रहा था। इसलिए हम लोग समझ गए कि आर्यिकाश्री नमक ग्रहण नहीं करेंगी। तब बड़ी मुश्किल से दोनों आर्यिकाओं का नाम लिखकर पुस्तक प्रकाशित करवाने का निर्णय संघस्थ सभी बहनों ने लिया। इस निर्णय के बाद भी एक प्रकार से मजबूरी से ही उन्होंने नमक ग्रहण किया। धन्य हो आर्यिकाश्री आपको आपने इतनी छोटी-सी बात में ही अपने व्रत को दूषित होता समझकर नमक का त्याग

कर दिया। हे माता जी! हमें भी ऐसा ही सम्बल देना कि हम भी अपने व्रतों का अच्छी तरह से पालन कर सकें। आपको कोटि-कोटिशः वन्दन।

नीमच वर्षायोग के पश्चात् आर्यिकाश्री ने सिंगोली, बोराव, बेगू, चेची आदि परिचित स्थानों पर विहार करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के उपसर्ग जीतकर केवलज्ञान प्राप्ति रूप ज्ञानकल्याणक तीर्थक्षेत्र का श्रेय प्राप्त करने वाले विन्ध्यावली (बिजौलिया) तीर्थक्षेत्र पहुँचीं। यहीं पर केवलज्ञान प्राप्त होने से भगवान् का प्रथम समवसरण लगा था। यह स्थान पहले भीमावन नाम का जंगल था। इसी स्थान पर एक सेठ को स्वप्न देकर जिनबिम्ब प्रकट हुआ था। पूर्व में सिंगोली वर्षायोग के समय भी आर्यिकाश्री का विहार यहाँ हुआ था, उस समय उन्होंने पूरी रात पार्श्वनाथ भगवान् के चरणों में बैठकर ध्यान किया था। पुनः इस बार आर्यिकाश्री का भाव इस क्षेत्र की वन्दना का हुआ था, इसलिए वे संघ सहित यहाँ पहुँची थीं। यहाँ से लगभग डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर गाँव है। यहाँ के पूर्वजों ने तन, मन, धन और जीवन का क्षण-क्षण समर्पित करके अनेकानेक विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए इस क्षेत्र की रक्षा की थी अर्थात् भगवान् की वीतरागता को बचाए रखने के लिए अनेक संघर्ष किए थे अन्यथा अब तक इस क्षेत्र की क्या स्थिति हो जाती, कहा नहीं जा सकता है, इसलिए यहाँ के श्रावक यहाँ आने वाले साधु-संतों का विशेष सम्मान करते हैं। आर्यिकाश्री के वहाँ थोड़े ही दिन के प्रवास में श्रावकों ने प्रभावित होकर यहीं वर्षायोग करने की प्रार्थना आर्यिकाश्री से की और उनके निर्देशानुसार पूज्य गुरुवर से आशीर्वाद भी ले आए। यह १९९५ का वर्षायोग सम्पन्न हुआ था। यहाँ एक दिन मूकमाटी की कक्षा के समय जहाँ आर्यिकाश्री बैठकर पढ़ाती थीं, उसके पीछे की खिड़की में पुस्तकों के बीच में एक काला नाग आकर बैठ गया। किसी को कुछ पता नहीं था। कक्षा लगने के लगभग ५-७ मिनट बाद ही किसी ने आकर पुस्तक उठाई तो वहाँ उसको वह नाग दिखा चारों तरफ नाग के बारे में खुसुर-फुसुर होने लगी। आर्यिकाश्री को भी अनुमान लग गया कि मेरे पीछे की खिड़की में कोई जहरीला जन्तु बैठा है, फिर भी उन्हें किंचित् भी भय नहीं लगा, वे सहजता से प्रतिदिन की भाँति कक्षा लगाती

रहीं। कक्षा अपने समय पर पूरी हुई। वास्तव में जिसको मौत का भय नहीं लगता, शरीर और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान हुआ हो, उसे कहीं पर भी डर नहीं लग सकता है। उस समय आर्यिकाश्री की निर्भीकता देखकर संघ और समाज वाले सभी स्तब्ध रह गए थे उन्होंने विशेष श्रद्धा से उनके साहस को सिर नवाया था। हम भी आत्मा अलग और शरीर अलग है इसका प्रयोग करते हुए अपने रत्नत्रय का विकास करें, इसी भावना के साथ आर्यिकाश्री को वन्दन-वन्दन-वन्दन।

यहाँ के वर्षायोग में पापोदय से संघस्थ सभी सदस्यों का स्वास्थ्य खराब हुआ लेकिन भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की कृपा तथा पूज्य गुरुवर के शुभाशीष से सब कुछ ठीक हो गया। आर्यिकाश्री ने श्रावकों को योग्य वैय्यावृत्य तथा औषधि करने की प्रेरणा और स्वयं ने सबको अपनी वात्सल्य रस से लबालब भरी हुई ममतामयी छाँव में सहेजकर धर्मामृत का पान कराते हुए सबको उभयतः नीरोग बना दिया अर्थात् सबका स्वास्थ्य ठीक हो गया। वर्षायोग के पश्चात् पूर्व में बोये गए धर्मरूपी पौधों को खाद-पानी देते हुए आर्यिकाश्री ने केकड़ी की तरफ विहार किया। यह केकड़ी वही स्थान है, जहाँ पण्डित जनों का बाहुल्य था अथवा समझो यह पण्डितों की नगरी थी, यहाँ के पण्डित स्पष्टवादी एवं कटु सत्य बोलने वाले थे, उन्होंने कई प्रसंगों पर सप्रमाण खुले लेख लिखे थे, उनके ऊपर एकान्त पक्ष का भी अच्छा प्रभाव होने से साधु-संत इस नगरी में सोच-समझकर ही जाते थे अथवा रास्ता पड़ जाने पर गाँव से बाहर होकर ही निकलने की कोशिश करते थे, लेकिन वर्तमान नई पीढ़ी में इस वर्ष कुछ विशेष जागृति आयी थी, जिससे यहाँ के युवा फेडरेशन के सदस्य साधुओं का वर्षायोग करवाने के लिए आतुर थे। वे सभी पूज्य सुधासागर जी महाराज का वर्षायोग करवाने का पुरुषार्थ कर रहे थे, परन्तु पूज्य गुरुवर ने उन्हें मुनि संघ के स्थान पर पूज्या आर्यिकाश्री के संघ को जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की प्रतीक मानों तीन आर्यिकाएँ आर्यिका श्री विशालमति जी (संघनायिका) आर्यिका विज्ञानमति तथा आर्यिका विद्युतमति का वर्षायोग करवाने का आशीर्वाद दिया था, इसलिए वे सभी पूज्या



आर्यिका संघ को चंचलेश्वर से सम्मानपूर्वक अपने नगर केकड़ी लाए थे। चंचलेश्वर में पूज्य मुनि श्री सुधासागर के दर्शन का लाभ भी सबको मिला था। यहाँ वर्षायोग की स्थापना से ही प्रवचन शृंखला प्रारम्भ हो गई थी। यद्यपि बिजौलिया के वर्षायोग के बाद से ही आर्यिकाश्री का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था, किन्तु उनका आत्मविश्वास धर्म-साधना एवं प्रभावना में सशक्त बना हुआ था। यद्यपि स्वास्थ्य को देखते हुए आर्यिकाश्री का प्रवचन १५-२० मिनट मात्र ही होता था, जो मानो प्रवचन दिन के स्वाध्याय का निचोड़ ही होता था। इसी के फल से यहाँ की विभिन्न भ्रामक और भ्रान्त धारणाएँ लुप्त प्रायः हो गई थीं। सभी को अनेकान्त धर्म की सच्चाई समझ में आने लगी थी। उनकी उल्टी धारणा थी कि पंचमकाल में भावलिंगी साधु नहीं होते हैं, वह धारणा बदलकर मुनि-चरणों की अनुरागी बन गयी थी अर्थात् सभी दिलो-दिमाग में मुनि, आर्यिका और उनका जीवन आदर्श बन गया था, वे सभी साधु को मानने लगे थे। यहाँ दशलक्षण पर्व में अद्वितीय श्रावक संस्कार शिविर लगा था, जिसमें सभी ने चारित्रपरक आचरण का प्रायोगिक अभ्यास किया था और शरीर-आत्मा की भिन्नता की चर्चा जो युगों-युगों से करते आ रहे थे। उसको आर्यिकाश्री की प्रेरणा और पूज्य आचार्य भगवन् के शुभाशीष से चर्या रूप परिणत करने का पुरुषार्थ किया था, उसमें उन्हें काफी हद तक सफलता भी प्राप्त हुई थी। इस वर्षायोग में पूज्या आर्यिकाश्री ने संघस्थ बहनों को आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिए दशलक्षण पर्व में समीपस्थ गाँवों (नसीराबाद, महुआ, निम्बाहेड़ा) में धर्म प्रभावना करने का शुभाशीर्वाद दिया था।

इस वर्षायोग में यहाँ का युवावर्ग विशेष रूप से आर्यिकाश्री से जुड़ा था। वे पहली बार आर्यिका संघ की आहारचर्या, वैय्यावृत्य आदि में निकट आए थे, जिससे उनका आर्यिकाश्री से विशेष लगाव था। उनमें से २-४ नवयुवक प्रतिदिन आर्यिकाश्री के आहार में औषधि-पथ्य आदि की अनुकूलता बनाने जाते थे, वे अपने घर से योग्य सामग्री भी आहारदान के लिए लेकर जाते थे, क्योंकि उन्हें पता था कि खाली हाथ कभी भी आहार देने नहीं जाना चाहिए। जो भी हो अपनी भक्ति अनुसार कुछ-न-कुछ लेकर ही

जाना चाहिए। उनमें से एक दिन एक नवयुवक के घर आर्यिकाश्री का पड़गाहन हुआ। आहार के बीच में वह अनार का रस लेकर आर्यिकाश्री से ग्रहण करने का निवेदन करने लगा। वह भक्ति के अतिरेक में बोला—पूज्या माता जी आप रस ले लीजिए, मैं जयपुर से स्पेशल मात्र आपके लिए अच्छे-अच्छे अनार छाँट-छाँट कर लाया था, क्योंकि मुझे पता है कि आप स्वास्थ्य की दृष्टि से अनार का रस लेती हैं। उसकी बात सुनकर उन्होंने अनार का रस नहीं लिया यद्यपि प्रतिदिन वे रस लेती थीं, लेकिन उस दिन नहीं लिया। उसने आर्यिकाश्री को बहुत मनाया, भक्ति की, हाथ जोड़े, बहुत गिड़गिड़ाया फिर भी आर्यिकाश्री ने उसका रस नहीं लिया तो वह आर्यिकाश्री से नाराज हो गया। उसने आर्यिकाश्री के पास आना-जाना बन्द कर दिया। जब ६-७ दिन तक वह नहीं दिखा तो मैंने कुछ खोज-बीन की, लेकिन जब कुछ पता नहीं चला तो मैंने आर्यिकाश्री से इसके बारे में पूछा तो आर्यिकाश्री बोलीं—शायद उसके घर मेरे आहार हुए थे, मैंने उसके यहाँ अनार का रस नहीं लिया था इसलिए शायद उसको विकल्प हो गया हो। मैंने पूछा माता जी, उसके यहाँ रस नहीं लेने का ऐसा क्या कारण बन गया था तो उन्होंने पूरी बात बतायी। तब समझ में आया कि आर्यिकाश्री का स्वास्थ्य इतना नाजुक होने के बाद भी वे अपनी समितियों का पालन करने में कितनी सजग हैं। श्रावक ने यह कह दिया कि मैं आपके लिए चुन-चुनकर लाया हूँ, यह संकेत एषणा समिति में दोष उत्पन्न करने वाला है इसलिए उन्होंने रस नहीं लिया था। धन्य हो आर्यिकाश्री आपको कि आहार करते समय भी आपका उपयोग शरीर की अनुकूलता बनाने की अपेक्षा भी समिति पालन की तरफ ज्यादा रहता है। हमारा उपयोग भी हमेशा समिति पालन करने में सजग रहे, इसी भावना से आपको वन्दामि-वन्दामि-वन्दामि।

एक दिन संघस्थ ब्रह्मचारिणी अर्चना बहन एक तरफ बैठी-बैठी रो रही थीं, तभी अचानक आर्यिकाश्री ने उसे देख लिया तो वे बोलीं—बेटी अर्चना, क्यों रो रही हो?

ब्रह्मचारिणी अर्चना—आँसू पोंछते हुए बोली कुछ नहीं माता जी। मुझे ऐसे ही रोना आ गया (वह चाहती थी कि व्यर्थ में क्यों आर्यिकाश्री को

विकल्प करवाए जाए) इसलिए उसने कारण नहीं बताया।

आर्यिकाश्री—बेटी, कुछ न कुछ कारण तो होना चाहिए। कारण के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता वह कारण चाहे छोटा हो या बड़ा होता अवश्य है।

ब्रह्मचारिणी अर्चना—माता जी मेरी मुक्तक और भजन और कविता आदि लिखी हुई कापियाँ ऊपर रखी थीं, पता नहीं किस ने लाकर नीचे रख दीं, सो उनको गाय ने खा लिया। मेरा सारा मैटर समाप्त हो गया। इस प्रकार कहते हुए वह पुनः रोने लगी। उसका रोना देखकर आर्यिकाश्री का मन भी थोड़ा दुखी हो गया।

आर्यिकाश्री—उसे समझाते हुए बोलीं—बेटी बताओ, तुम चेतन हो या अचेतन?

ब्रह्मचारिणी अर्चना—माताजी मैं चेतन हूँ।

आर्यिकाश्री—और बताओ तुम्हारी कापियाँ चेतन थीं कि अचेतन जड़?

ब्रह्मचारिणी अर्चना—माता जी वे तो अचेतन जड़ ही थीं।

आर्यिकाश्री—सुनो यदि वे जड़ थीं तो तुम जड़ के पीछे अपने चेतन को क्यों बिगाड़ रही हो ? इन जड़ पदार्थों के निमित्त से बंधे हुए कर्म भव-भव में दुखमय फल देंगे, उसे मात्र चेतन को ही भोगने पड़ेगा और ये जड़ पदार्थ यहीं पड़े रह जाएँगे, चेतन इन सबको छोड़कर परभव में चला जाएगा, इसलिए हमेशा ध्यान रखो, याद रखो कि जड़ के कारण मुझे अपने चेतन को विकृत नहीं करना है।

इस प्रकार आर्यिकाश्री की बात सुनकर बहन के आँसू अपने आप रुक गए। ऐसी युक्तिपूर्वक समझाने की शैली थी आर्यिकाश्री की, जो वर्तमान को ही नहीं वरन् भविष्य को भी उज्ज्वल बना देती थीं।

यहीं एक दिन एक बहन पूज्या आर्यिकाश्री से प्रायश्चित लेने पहुँचीं। उसने कहा—माता जी २-४ दिन पहले किसी ने मुझे कुछ औषधि की जड़ी-बूटियाँ लाकर दी थीं। मैं उनको रखकर भूल जाने के कारण उन्हें

व्यवस्थित नहीं कर पाई, इसलिए उन पर फफूँद आ गई। मुझे उन्हें उठाकर अलग करना पड़ा, पता नहीं उसमें कितने जीव होंगे, वे सब मेरे निमित्त से मर गए। अतः मुझे प्रायश्चित्त दे दीजिए, ताकि मेरा वह पाप समाप्त हो जाए। उसकी बात सुनकर आर्यिकाश्री दुख से लम्बी श्वास लेती हुई बोलीं—अहो यह तो बहुत बड़ा पाप हो गया। क्या तुम्हें पता नहीं है कि फफूँद के एक-एक कण में अनन्त जीव होते हैं, इस प्रकार बताते हुए पहले तो डाँटा फिर बोलीं—बेटी, सुनो चाहे तुम पूजा करने जा रही हो अथवा आहार देने जा रही हो या स्वाध्याय शुरू कर रही हो, सब कामों को छोड़कर पहले जिसमें हिंसा होने की संभावना हो, वह काम कर लिया करो, ताकि पापों से बच सको। देखो यदि तुम उन जड़ी-बूटियों को तत्काल धूप में सुखा देतीं अथवा उनका जैसा प्रयोग करना था, कर लेती तो आज इतना बड़ा पाप क्यों होता ? “वास्तव में कौन-सा काम किस समय किस विधि से करना चाहिए, इसका विवेक होना ही तो धर्म है।” अपन पूज्य विवेकसागर जी महाराज की शिष्याएँ हैं, हमें विवेकपूर्वक ही कार्य करना चाहिए। बेटी, पाप छोड़ देने वाला इस भव और परभव दोनों स्थान पर सुख प्राप्त करता है, इसलिए हमेशा पाप से बचने का पुरुषार्थ करो। इस प्रकार आर्यिकाश्री समय-समय पर हम लोगों को धर्म करना सिखाकर आत्मोन्नति करने के सूत्र दिया करती थीं।



यहाँ से वर्षायोग के पश्चात् आस-पास छोटे-बड़े गाँव-नगरों में आर्यिकाश्री का विहार हो रहा था। उनका स्वास्थ्य कभी अच्छा तो कभी ढीला हो जाता था। एक बार उनके बवासीर की तकलीफ हो गई। दिन में कब्जियत के कारण १०-१२ बार शौच के लिए जाना पड़ता था और प्रत्येक बार बवासीर से खून निकलता था। कई औषधियाँ करने के बाद भी कुछ लाभ नहीं मिल रहा था तो श्रावकों ने एक वैद्य जी को बुलाया। वैद्य जी एक औषधि देते हुए बोले—इसको घी में डालकर लगा देना ठीक हो जाएगा। बहनों ने औषधि तैयार करके आर्यिकाश्री से लगाने का निवेदन किया। आहार का समय था इसलिए सबने विशेष प्रार्थना की कि आप

औषधि लगाकर जाएँगे तो आहार करने में तकलीफ नहीं होगी। उन्होंने दवाई लगाने के पहले उसका प्रभाव देखने के लिए दवाई का स्पर्श मात्र करके बवासीर में लगा दी। दवाई लगाते ही बवासीर फूट गए आर्यिकाश्री को उसकी अपार वेदना होने लगी क्योंकि वैद्य जी ने सब कुछ बताया था हम लोगों ने भी उनसे सब कुछ पूछा, पर न उन्होंने मात्रा बतायी और न ही हम लोगों ने मात्रा पूछी इसलिए लगभग ३-४ चम्मच घी में चने की दाल के बराबर औषधि डालनी थी, उसके स्थान पर बहनों ने उसे मल्हम जैसा बना दिया था, इस प्रमाद के कारण ही बवासीर फूट गए थे, तत्काल शीतल उपचार करने के बाद भी शाम तक ही उनकी वेदना कम हो पाई थी, फिर भी आर्यिकाश्री ने हम लोगों को कुछ नहीं कहा और न ही वैद्य जी के लिए ही कुछ कहा कि वैद्यों को औषधि देने के पहले कम से कम मात्रा तो बता ही देना चाहिए आदि-आदि कोई विकल्प नहीं किए, हमारी गलती से हमारी आँखों में आँसू थे पर उनके चेहरे पर थी समता भरी मुस्कान। वास्तव में साधु का लक्षण ही सुख-दुख, शत्रु-मित्र, उपकारी-अपकारी में समता रखना है, वह सब आर्यिकाश्री में आज स्पष्ट दिख रहा था। दूसरे दिन प्रातःकाल ही किसी गाँव के श्रावक पूज्या आर्यिकाश्री के दर्शन करने आए जब उनको पता चला कि आर्यिकाश्री को बवासीर की इतनी भयंकर वेदना हो रही है तो वे स्वयं जंगल में जाकर शतावर की जड़ें लेकर आए और बहनों को देते हुए बोले-इसको पीसकर आर्यिकाश्री को आहार में दे देना, मात्र यह ख्याल रखना है कि नमक का संसर्ग भोजन में किसी भी प्रकार से नहीं हो, उनकी सद्भावनाओं से आर्यिकाश्री को इस औषधि से तत्काल लाभ मिला। दो-तीन दिन में ही उनके बवासीर पूर्ण रूप से ठीक हो गए। जब उन्हें यह औषधि दी गई तब भी औषधि लाने वालों के प्रति कोई विशेष प्रशंसा या बहुमान का भाव नहीं आया, यही साधु की समता होती है। हम लोगों को तो वैद्य जी के प्रति गुस्सा भी आया था और इन दवाई देने वाले श्रावकों के प्रति बहुमान प्रशंसा का भाव भी आया था, लेकिन आर्यिकाश्री को दोनों में कोई अन्तर नजर नहीं आया, धन्य हो आपकी समता को ऐसी समता हमें भी प्राप्त हो, इसी भाव से बारम्बार

वन्दन-वन्दन।

स्वास्थ्य ठीक होने पर पुनः आर्यिकाश्री का विहार शुरू हो गया था आर्यिकाश्री का लक्ष्य छोटी आर्यिका श्री विद्युतमति जी की भावनाओं का ख्याल रखना था, इसलिए वे नसीराबाद की तरफ विहार कर रही थीं। उनका भाव था कि नसीराबाद पहुँचकर मैं पूज्य आर्यिका माता जी की भावना पूरी करूँगी, लेकिन उन्हें क्या पता था, कि उनके पहले ही मैं इस मानव देह को छोड़कर चली जाऊँगी। वास्तव में किसको क्या पता है कि कब कौन मृत्यु की गोद में सो जाएगा अथवा किस निमित्त से किसकी आयु की उदीरणा होकर अकालमरण से परलोक चला जाएगा। सामान्य अल्पज्ञानी इसका निर्णय नहीं कर पाता है। आर्यिकाश्री विहार करते हुए नसीराबाद के पास ही स्थित विजयनगर तक पहुँची ही थीं कि उनका स्वास्थ्य अत्यन्त खराब हो गया। इस बार के रोग ने मानो आर्यिकाश्री के प्राण लेने के लिए ही कमर कस ली हो, सो वह बढ़ता ही गया और वैशाख शुक्ला चतुर्दशी २१ मई, १९९७ को दोपहर लगभग १२ बजे णमोकार मंत्र सुनते-सुनते वे इस नश्वर शरीर को छोड़कर प्रयाण कर गईं। नगर के बाहर ही उनके शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया। विजयनगर वालों ने वहाँ जिनालय, औषधालय आदि बनाकर उनकी स्मृति को स्थिर किया।

इसी प्रकार भारत की समृद्धशाली वसुन्धरा राजस्थानी भूमि के निम्बाहेड़ा नगर में श्वेताम्बर कुल में जन्म लेकर दिगम्बर सत्य धर्म की ध्वजा फहराते हुए दीक्षा ग्रहण करने वाली बेटी कुसुम विशाल व्यक्तित्व की धनी बनकर आर्यिका विशालमति बनीं। उनके चरणों में बारम्बार वन्दामि-वन्दामि-वन्दामि।



## आर्यिका श्री विशालमति जी का परिचय

जन्म स्थान	— निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़, राजस्थान)
पिता	— श्रीमान् बापूलाल जी चौरड़िया
माता	— श्रीमति मोहनीबाई जी चौरड़िया
कुल	— श्वेताम्बर (मंदिरमार्गी)
पूर्व नाम	— सुश्री कुसुम जैन चौरड़िया
भाई	— २ (श्री हस्तिमल, अनिलकुमार जैन)
बहनें	— ५ (श्रीमती विमला, श्रीमती सुशीला, श्रीमती शान्ता, श्रीमती पुखराज जैन)
ब्रह्मचर्य व्रत	— सम्पेदशिखर-पार्श्वनाथ कूट, स्वयं अपनी प्रेरणा से, १३-१४ वर्ष की उम्र में।
दीक्षा की प्रेरणा	— परम पूज्य १०८ श्री भव्यसागर जी महाराज
प्रतिमा के व्रत	— परम पूज्य आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज
आर्यिका दीक्षा गुरु	— समाधिस्थ परम पूज्य आचार्यकल्प श्री विवेक सागर जी महाराज
दीक्षा तिथि	— फाल्गुन शुक्ला पंचमी १९८४
दादागुरु	— समाधिस्थ महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	— पिड़ावा (भवानी मण्डी, राजस्थान)
प्रायश्चित्त गुरु	— संत शिरोमणि आचार्य गुरुवर विद्यासागर महाराज (पूज्य गुरुवर की समाधि के बाद)
रुचि	— आध्यात्मिक प्रवचन, पठन-पाठन, उपवास, ध्यान आदि।
संघस्थ साधु	— आर्यिका विज्ञानमति, आर्यिका विद्युत्मति, ब्र. कंचन भीलवाड़ा, ब्र. संतोष बहन कुचामन सिटी,

- ब्र. माधुरी बहन शाहपुर, ब्र. अर्चना बहन रहली,  
ब्र. संध्या बहन रहली।
- वर्षायोग — कुचामनसिटी (नागौर, राजस्थान), मारोठ (नागौर,  
राजस्थान), गुरुवर के साथ मदनगंज-किशनगढ़,  
अजमेर (सोनी जी की नसिया), सिंगोली (मंदसौर  
म.प्र.), रामगंजमण्डी (भवानीमण्डी, राजस्थान),  
शाहपुर (सागर, म.प्र.), रहली, पटनागंज (सागर,  
म.प्र.), कटंगी (जबलपुर, म.प्र.), हरदा, म.प्र.),  
नीमच (म.प्र.), बिजौलिया पार्श्वनाथ क्षेत्र (राज.),  
केकड़ी (राज.)।
- समाधि — वैशाख शुक्ला, चतुर्दशी २१ मई, १९९७
- स्थान — विजयनगर (अजमेर, राजस्थान)
- लेखन — लोकप्रिय कृति शीलमञ्जूषा
- संकलन कृतियाँ — स्तुति मंजूषा, नियम मंजूषा
- व्यक्तित्व — परिचित-अपरिचित सबके प्रति वात्सल्य एवं  
करुणा का भाव, लौकैषणा एवं पद ग्रहण के भाव  
से दूर।